जरासन्ध

किताब महल (होलसेल डिवीज़न) प्राइवेट लिमिटेड
रजिस्टर्ड आफिस : ५६ ए, जीरो रोड, इलाहाबाद
कलकत्ता * बम्बई * दिल्ली * जयपुर * हैदराबाद * पटना

इस उपन्यास का हिन्दी फिल्मीकरण बन्दिनी के नाम से श्री विमल राय प्रस्तुत कर रहे हैं और बंगला में विषकन्या के नाम से इसकी फिल्म पहले ही बन चुकी है।

अनुवादक : रामेश्वरप्रसाद मेहरोत्रा

प्रकाशक : किताब महल ५६ ए. ज़ीरो रोड इलाहाबाद

मुद्रक : द्वारका नाथ भार्गव, भार्गव प्रेस, इलाहाबाद

आवरण : ईगल ऑफसेट प्रिन्टर्स, १५, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

आवृत्ति : प्रथम १८८२ शकाब्द मूल्य : पाँच रुपया

दो शब्द

"अपराधों से घृणा करो अपराधियों से नहीं।" इस मूल मंत्र को लेकर आने वाले भारतीय उपन्यास-साहित्य में एक मात्र लेखक हैं चारुचन्द्र चक्रवर्ती। चारुचन्द्र चक्रवर्ती बंगला में 'जरासन्ध' के नाम से लिखते हैं। 'जरासन्ध' की अभी तक कोई भी रचना हिन्दी में नहीं आयी पर यह निर्विवाद है कि अपराधियों के मनोविज्ञान और जेल-जीवन पर उन जैसा सशक्त उपन्यासकार भारत में कोई दूसरा नहीं है। इनका जन्म पूर्वी बंगाल के फरीदपुर जिले में ४ मार्च १६०४ ई० को हुआ था। इनकी शिक्षा-दीक्षा मुख्यतः कलकत्ते में हेयर स्कूल और प्रेसीडेन्सी कालेज में हुई। यह अपने समय के बहुत ही मेधावी छात्र थे और इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय की मैट्रीक्यूलेशन परीक्षा में सातवीं पोजीशन हासिल की, फिर अर्थशास्त्र में आनर्स के साथ वे ग्रेजुएट हुए और १६२६ ई० में इसी विषय को लेकर एम० ए० की परीक्षा पास की। उसके बाद आप बंगाल सिविल सर्विस परीक्षा में उत्तीर्ण होकर बंगाल सरकार के गृह विभाग के जेल विभाग में नियुक्त किए गए। १६६० ई० में आप अलीपुर सेन्ट्रल जेल कलकत्ता से सुपरिन्टेन्डेट के पद से रिटायर हुए।

आपने शुरू के पचास वर्षों में केवल बच्चों के लिए कुछ कहानियाँ ही लिखी थीं—किन्तु मार्च १६५४ ई० में जब आपका पहला आत्मकथात्मक उपन्यास 'लौह कपाट' का प्रथम पर्व प्रकाशित हुआ तो बंगाल के साहित्य-जगत में आप चमक उठे। 'लौह कपाट' भारतीय उपन्यास साहित्य में लेखक की महान देन है।

लेखक की दूसरी लोकप्रिय रचना 'तामसी' है जिसका पहला संस्करण अगस्त १६५८ ई० में बँगला में प्रकाशित हुआ और अब

तक इसके सात संस्करण बँगला में समाप्त हो चुके हैं। इस उपन्यास की लोकप्रियता को ही देख कर बँगला में 'विषकन्या' के नाम से फिल्म भी तैयार हो चुकी है। हिन्दी में भी इसका फिल्मीकरण श्री विमल राय 'बंदिनी' के नाम से कर रहे हैं।

इस उपन्यास में लेखक ने एक बंदिनी 'हेना' जो हत्या के अपराध में जेल आती है उसके जीवन की मर्मस्पर्शी घटनाओं को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ प्रस्तुत किया है। एक सहज स्वभाव की साधारण लड़की किन परिस्थितियों में भावोन्माद में आकर विष देकर एक स्त्री की हत्या कर डालती है और फिर उसे स्वीकार कर कैद को स्वीकार करती है यह सब लेखक ने रोमांचक ढंग से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास की सभी घटनाएँ एक-एक करके चलचित्र की तरह आँखों के सामने आती हैं और कौतूहल अन्त समय तक बना रहता है। लेखक की यह दूसरी बड़ी सफलता है।

'जरासन्ध' अछूते विषय के उपन्यासकार हैं—जिसका भारतीय कथा-साहित्य में नितांत अभाव था। 'तामसी' बन्दिनों के जीवन पर भारतीय साहित्य में पहला उपन्यास है। हिन्दी में इस रचना को प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता है। अनुवाद कैसा बन पड़ा है इसका निर्णय आप स्वयं करेंगे—यदि उसमें कहीं कोई त्रुटियाँ रह भी गयी हों तो उसके लिए मैं क्षमा चाहूँगा। आशा है, हिन्दी जगत में भी इस रचना का बँगला की ही तरह स्वागत होगा।

—रामेश्वरप्रसाद मेहरोत्रा

श्रीघर (कारागार) में बैठ कर भी
जो घर-परिवार बाँधने का स्वप्न देखती
उन्हीं सब हत्‌भागिनों के लिए

१

अचानक धक्का लगने से नींद जैसे टूट गयी। नींद की खुमारी मिटी भी न थी कि फिर कठोर स्वर सुनाई पड़ा "हुजूर।" महेश ताल्लुकदार अब कुछ आश्वस्त हुए। बाज नहीं, बाघ भी नहीं उनका ही अनुगत अनुचर, चीफ हेड वार्डर महाबल सिंह था। दूसरे ही क्षण फिर मस्तक पर दुश्चिन्ताओं की रेखाएँ उभर आयीं। जब तक कोई बहुत बड़ी बात नहीं होती तब तक ऐसी अँधेरी रात में उनकी पुकार नहीं होती। हो सकता है कि जेलर साहब की नींद खुलने से पहले ही कोई आजीवन कारावास की सजा पाया हुआ खूँखार कैदी जँगले के सीखचों को तोड़ कर फरार हो गया हो अथवा बारह नम्बर के जूए के अड्डे में बीड़ी की नाल को लेकर झाड़ू मण्डल के दाँतों को छलि बहादुर ने घूँसे से तोड़ दिया हो। ऐसी ही चौंकाने वाली रिपोर्ट पेश करने के लिए ही उनके जंगले पर जमादार साहब ने जैसे आवाज़ दी है।

कर्कश कण्ठ से फिर कोई स्वर निकलने से पहले ही ताल्लुकदार ने पूछा—"क्या हुआ?"

नरम स्वर में जवाब मिला, "सलाम हुजूर! जनाने फाटक में हल्ला हो रहा है।"

"जनाने फाटक में हल्ला! क्या कोई भागी तो नहीं?"

"नहीं हुज़ूर, एक औरत बहुत बीमार हो गयी है।"

"डाक्टर को खबर दी ?"

"जी हाँ ! डाकदर बाबू आफिस में ही बैठल हैं ।"

गरज़ उठना ही पड़ा। 'स्विच को दबाते ही टेबिल के कोने में रखी हुई टाइमपीस पर नज़र पड़ी। रात को तीन बज कर पन्द्रह मिनट हुए हैं। आखिरी माघ की कड़कड़ाती सर्दी पड़ रही थी। पलँग पर वह लिहाफ के घेरे में पड़े थे। लिहाफ से निकलते ही उनके खुले शरीर पर कड़ी ठण्डक से सिहरन पैदा हुई। अलगनी पर से कपड़े उतारने के लिए आगे बढ़ने पर ड्रेसिंग टेबिल के आइने पर नज़र पड़ी। क्षण भर उसमें अपने को जेलर साहेब ने देखा। उनींदे चेहरे पर चिन्ता की कुछ रेखाएँ उभर आयीं। उसके बाद गरम कपड़ों को पहिन कर टेबिल के दराज़ को खींचकर उसमें से जनाने फाटक की चाभी निकाली।

जेलखाने का वास्तविक प्रतीक यही ताला-चाभी है। कैदी को इन्सान बनने का अवसर दो और उसके समाज-विरोधी मन को कल्याण की ओर बदलो, आदि सब कारातंत्र की किताबी बातें हैं। काम की बात तो यह है कि उसे गिरफ्त में रखो। इसमें कोई आपत्ति नहीं कि उसके उठने, बैठने, तकलीफ़, आराम और कामकाज को देखो किन्तु सदैव इतनी सजग दृष्टि रखो कि कहीं वह भाग न जाय। जेल के वेलफेयर के विषय में सोचना न सोचना तुम्हारा काम है किन्तु उसकी सिक्युरिटी को तो तुम्हें सोचना ही होगा।

जिस किसी कारागार की ओर देखिए चारों तरफ चौदह फीट ऊँची दुर्लंघ्य प्राचीरें होगीं। एक तरफ लोहे का एक-मात्र फाटक होगा। उसके सामने दिन-रात सशस्त्र सिपाही टहलता मिलेगा। इतने पर भी जेल के कर्त्ता-धर्ता निश्चिततापूर्वक उन पर निर्भर नहीं करते। इसके साथ ही साथ फाटक के भीतर भी हर फाटक पर बड़े-बड़े ताले पड़े रहते हैं। सूर्यदेव के अस्ताचल में जाने के पूर्व ही पूरा जेल 'लाक-अप पर्व' का आयोजन शुरू कर देता है। मेट और कैदी पहरा दल अपनी

सेना लेकर आ जाते हैं और लम्बी-लम्बी बैरकों एवं सेल-ब्लाकों के दर-वाजों पर दो-दो व्यक्ति तैनात कर दिए जाते हैं। फिर गिनती शुरू होती है दो, चार, छः, आठ।....इसके बाद सिलसिले से वे सब पूर्व निर्दिष्ट नम्बरों के विशाल गह्वर में घुस पड़ते हैं, साथ ही साथ सुनाई पड़ता है बन्द होते हुए लौह-कपाटों की झनकार और ताला बन्द होने का क्लिक-क्लिक। सुबह होने पर जो तालाबन्दी से मुक्त हुए थे उन्हें फिर शाम को मज़बूत तालों के आश्रय में लौटना पड़ता है। इसके बाद 'लाक-अप-पर्व' समाप्त होता है। चीफ हेड वार्डर बिना किसी उद्वेग के तेज कण्ठ से घोषणा करता है 'सब ठीक है।' सेन्ट्रल टावर के शिखर से 'तीन घन्टी' बजकर जैसे प्रतिध्वनि करती है 'सब ठीक है।'

दरवाज़ों पर तालों को डालने के बाद क्या अधिकारियों की जिम्मे-दारियाँ समाप्त हो गयीं? नहीं, यह तो केवल सूचना है। इसके बाद शुरू होगा तालों पर बल प्रयोग। पहर-पहर पर उनकी शक्ति की परीक्षा होगी। मज़बूत पहरेदारों का दल और चाभियों का बोझा लिए एक निशाचर दल गश्त लगाना शुरू करेगा। जेल-कोड में उनका नाम हेडवार्डर और सिपाही-कोड में जमादार साहेब कहा जाता है। कई बैरकों या वार्डों में इनका आंचलिक इलाका होता है और अपने-अपने अधिकार क्षेत्र के कुल चाभियों की जवाबदेही भी उन्हीं पर होती है। केवल एक छोटा सा राज्य उनके इलाके के बाहर होता है। वह है फीमेल-वार्ड अथवा जनाना-फाटक। वहाँ के चाभियों के गुच्छों के अकेले मालिक स्वयं जेलर साहेब होते हैं।

महेश को याद आयी, बहुत दिनों पहले की वह सन्ध्या जिस दिन लॉक-अप के बाद पहली बार उनके हाथ में आयी थी जनाने फाटक की चाभियों की थैली। उन्हें लगा था जैसे यह मामूली तालियों का गुच्छा ही नहीं वरन उसके साथ ही एक नारी-राज्य का गौरवमय अधिकार भी जुटा है। 'आज ही से रोज रात में अनेक असहाय बन्दिनों की मान-मर्यादा, सुख-दुख का भार हमारे हाथों में है। वे सब केवल मुझ पर ही निर्भर

करती हैं'—इस तरह उनके तरुण मन में पुलकमय अनुभूति का कोमल स्पर्श हुआ था और हुआ था एक मधुर स्वर का गुंजरन। उसके बाद एक दिन वह सब कहाँ लुप्त हो गया इसका उन्हें पता भी न लगा। आज इस रात के गहरे अन्धकार में इस लठधारी बड़े जमादार के साथ चलने पर पुरानी स्मृतियाँ अनायास जाग उठीं थीं। एक कौतुकपूर्ण मुस्कान ओंठों पर दौड़ गयी।

इतनी रात में शोरगुल की रिपोर्ट पाकर जेलर साहेब के मन में जिस दुश्चिन्ता की छाया पड़ी थी वह जनाने फाटक पर पहुँच कर मिट गयी। जमादार ने भूल की थी। यह शोरगुल नहीं नारी-कण्ठ के मधुर स्वर थे। सु-रसिक कहते हैं कि विधाता-पुरुष की ख्याति नहीं है, किन्तु एक क्षेत्र में उन्होंने रस-ज्ञान का परिचय दिया है। नारी-जाति के वाक्यन्त्र में बहुत शक्ति दी है किन्तु 'ब्रेक' नाम के किसी 'वलगर' संयोग को नहीं दिया। तभी देखा जाता है कि स्वजातीय के दर्शन मात्र से वे पुलकित हो उठती हैं और आमना-सामना होते ही मुहँ खुल जाता है। फिर उस मुक्त द्वारपथ से बातों का जो प्रवाह चल पड़ता है उसे रोक सकने की संसार में किसी को शक्ति नहीं है। स्त्रियों की जिस गोष्ठी में जाकर देखिए कहीं भी इसका व्यतिक्रम न होगा। रेल के जनाने डिब्बे से लेकर लेडी होस्टेल के कामन-रूम तक, गावों के पनघट से महिला समितियों के वार्षिकोत्सव तक में सभी जगह यही एक दृश्य दिखायी पड़ेगा। उनमें सभी वक्ता होती हैं, अभाव होता है केवल सुनने वालियों का। जेल के सीखचों में बैठी नारी बहुत कुछ भूल सकती है किन्तु इस सनातन जातीय विशिष्टता को नहीं भुला पाती।

कम्पाउन्ड-गेट खुलते ही फीमेल वार्डर सुशीला दत्त की तेज आवाज़ कानों में पड़ी। कोलाहल धीमा पड़ गया, किन्तु बन्द नहीं हुआ। जेलर और जेल डाक्टर अपने दल-बल के साथ वार्ड के सामने जा खड़े हुए। दरवाज़े का ताला खुलते ही तेजी के साथ एक

लड़की सामने आ खड़ी हुई। बगैर किनारे की जेल की साड़ी कमर में कसे हुए थी। अंग अंग से ऐसा लावण्य टपक रहा था जो तृतीय श्रेणी के जनाने फाटक में सुलभ नहीं। डाक्टर सीढ़ी पर चढ़ने के लिए जैसे ही आगे बढ़े कि उसने रोकते हुए कहा, "जरा ठहर जाइए डाक्टर बाबू, दरवाज़े के सामने ही गन्दा है, उसे मैं अभी साफ किए देती हूँ, तब चलिए।"

सुशीला को सुनाने के लिए फिर वह तेज स्वर में बोली, "मैं जा रही हूँ मासी माँ।" इतना कह कर वह तड़ातड़ सीढ़ी को बटोर कर नीचे उतर आयी और जमादार की ओर देखते हुए बोली, "लालटेन ज़रा ले लें ज़मादार साहेब। बहुत अन्धेरा है।"

जमादार लालटेन लेकर उसके साथ हो लिया। जब तक वह दोनों वार्ड के पीछे अदृश्य नहीं हो गए तालुकदार उन्हें देखते रहे। बाद में जिज्ञासु भाव से सुशीला की ओर मुड़े। सुशीला प्रश्न समझ गयी और साथ ही साथ उत्तर दिया, "उसका नाम हेना है और फरीदपुर ज़ेल से आयी है।"

महेश भौवों को कुंचित करते हुए बोले, "कितने दिन हुए?"

"कोई पन्द्रह दिन हुए।"

"याद तो नहीं पड़ता कि इसे मैंने देखा है।"

सुशीला मुस्कराती ही तुरंत बोली, "देखा क्यों नहीं होगा? रोज ही तो नम्बर पुकारते समय रहती है। हो सकता है आपने ध्यान न दिया हो?"

जेलर विस्मित हुए। ऐसो लड़की भी नहीं जिस पर नज़र न पड़ सके। फिर भी हो सकता है कि वह हमेशा भीड़ में रहती हो। काम पड़ने पर ही तो भीड़ से अलग पहचाना जा सकता है यह दूसरी बात है।

कोई चार मिनट में ही वह लौट आयी। एक हाथ में झाड़ू और दूसरे में पानी से भरी एक बड़ी बाल्टी थी। सुशीला ने एक बार

दूसरी कैदिनों की ओर देख कर तेज स्वर में कहा, "अरे, तुम सब के हाथों में मेहँदी लगी है क्या, अकेली यही कितना करेगी बताओ तो।" स्त्रियों के झुण्ड में यह सुन कर कानाफूसी हुई, फिर अनिच्छापूर्वक दो एक स्त्रियाँ आगे बढ़ीं। एक अधेड़ उम्र की स्त्री ने हेना के पास आकर कहा, "झाड़ू हमें दे दो बहिन और तुम एक तरफ से पानी डालो।" इतना कहकर उसने अपने मुँह पर कपड़ा लपेट कर फिर जेलर साहेब और डाक्टर साहेब को देखते हुए तेज स्वर में कहा, "आप सब बाबू लोग हट जाइए।"

"तुमसे नहीं होगा कानू की माँ।" हेना ने उसे रोकते हुए कहा। "मैं अभी चटपट इसे धो डालूँगी। तुम इतना करो कि उस कोने से फिनायल का टीन ले आओ।" इतना कहकर उसने पानी डालकर झाड़ू लगाना शुरू कर दिया।

कुछ ही क्षणों में सीढ़ी को साफ कर के झाड़ू और बाल्टी को नीचे रखकर डाक्टर की ओर देखकर बोली, "अच्छा, अब आइए। इस जाड़े में बहुत देर तक आपको तकलीफ दी।"

डाक्टर ने सीढ़ी पर पैर रखा। महेश ताल्लुकदार ने डाक्टर के पीछे पीछे पैर बढ़ाया। हेना तुरन्त ठिठकी और मुड़ कर कहा, "इस बीमारी-खमारी में आप न आइए सर! अच्छा हो आप हम लोगों के मसक्कत घर के बरामदे में ही खड़े रहें। यहाँ तो बहुत ओस गिर रही है।"

फिर वह सामने की कोठरी में खड़ी सुशीला के पास जाकर कुछ फुसफुसा कर बोली और तुरन्त ही लौट कर वर्कशेड के भीतर से बैठने के लिए एक मोढ़ा निकालकर बरामदे में रख कर उस पर जमी गर्द को अपनी धोती के आँचल से साफ कर दिया। इसके बाद जेलर साहेब के पास आकर विनयपूर्ण ढंग से उस पर बैठने का अनुरोध किया। ताल्लुकदार ने एक बार सुशीला जमादारिन की ओर, फिर उस मोढ़े की ओर कौतुकपूर्ण दृष्टि डाली फिर बगैर कोई उत्तर दिए

हुए ही धीरे-धीरे बढ़ कर उस पर जा बैठे।

डाक्टर तरुण थे। जेल की नौकरी भी बहुत दिनों की न थी। सच कहा जाय तो वह अभी तक जेल के डाक्टर भी पूरी तौर पर नहीं बने थे। रोगी को वह रोगी ही समझते थे, कैदी नहीं। लगभग दस मिनट के बाद गले में रबर की नली लटकाए हुए बाहर निकले। हेना भी उनके साथ थी। किसी प्रश्न का उत्तर देती हुई आ रही थी। "नहीं, खून की उल्टी इससे पहले कभी नहीं हुई। कुछ दिनों से तेज बुखार जरूर चल रहा है। साथ में खाँसी भी आती है। शरीर से पसीना खूब निकलता है और उसके बाद बुरी तरह से कमजोरी बढ़ जाती है। यह सारी बातें आपके आने से पहले ही मैंने पूछ कर जान ली थी।"

"जो भी हो पर इतने दिनों तक मुझे क्यों नहीं बताया?" डाक्टर अन्यमनस्क भाव से बोले।

"आप से उसने कुछ नहीं बताया इसका भी कारण है।"

"क्या कारण?" साग्रह [illegible] को देखते हुए डाक्टर बोले।

"कहीं आप खाना [illegible] कर दें।" गंभीर-मुद्रा के साथ हेना ने कहा।

हो....हो....हा....करते डाक्टर ठहाका मार कर हँस पड़े। आस-पास भी जो लोग खड़े थे उनके मुखों पर भी हँसी दौड़ गयी। इसके बाद डाक्टर ने सभी कैदिनों पर एक दृष्टि डाल कर आँखों को झुका लिया।

लालटेन की रोशनी निकट आयी। जेलर साहब ने उसके ही मद्धिम प्रकाश में नयी कैदिन को ठीक से देखा। बाइस-तेइस वर्ष की वह श्यामवर्णा युवती थी। उसके सुगठित शरीर के जिस अंग पर दृष्टि पड़ती ठहर जाती। उसके हर अंग-प्रत्यंगों की हर रेखाओं को जैसे किसी कुशल कारीगर ने बड़े मनोयोग से गढ़ा हो। न कहीं

स्थूलता थी और न कहीं अपूर्णता। सब मिल कर एक अनुपम शिल्प सृष्टि सी वह लगती थी। तालुकदार ने युवती के चेहरे पर नज़र डाली। उन्नत ललाट के नीचे दो ममता भरे स्निग्ध नेत्र थे। उभरे हुए दो गाल थे जिन पर बालों की कुछ लटें लापरवाही के साथ लहरा रहीं थीं। पतले किन्तु मधुर अधर अनायास अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे।

"क्या देखा?" डाक्टर की ओर दृष्टि घुमाते हुए तालुकदार ने पूछा।

"जब तक एक्सरे न हो जाय तब तक कुछ ठीक से कहा नहीं जा सकता। फिर भी उसे अब यहाँ रखना ठीक न होगा। यहाँ से उसे हटा देना अच्छा है। खून की उल्टी देखकर दूसरे भी नर्वस हो जाते हैं।"

"ठीक समझो तो उसे अस्पताल ही ले जाओ।"

साधारण वार्ड से कुछ दूर कम्पाउंड की दीवारों से सटे हुए नीबू के पेड़ों के पीछे जो एक कमरे का घर है वही फीमेल अस्पताल है। डाक्टर एक बार उधर की ओर दृष्टि फेंककर बोले, "ले तो जाऊँगा ही, पर एक मुश्किल है।"

"वह क्या?"

"अकेले वहाँ कोई भी जाने को तैयार नहीं है।"

"अकेले जाने की क्या बात है?" हेना बीच में ही बोल उठी, "मैं उसके पास रहूँगी।"

"आप?" डाक्टर जैसे विस्मित नेत्रों से एक बार उसके शरीर को देख माथे पर कुछ बल डालकर कहा, "ना...."

साड़ी के आँचल से शरीर को ढँकते हुए मधुर मुस्कान के साथ हेना बोली, "क्यों? क्या आप सोचते हैं कि मैं उसकी सेवा नहीं कर सकती? जरूर कर सकती हूँ।"

"उसकी सेवा नहीं कर सकेगी बात यह नहीं है।" डाक्टर ने

जवाब दिया। उसके बाद जेलर साहेब की ओर देख कर अंग्रेजी में कहा, "इस रोग का सबसे सहज शिकार यौवन है। थोड़े में ही दूसरे को छूत लग सकती है।"

"तब तो कीटाणु भी बड़े रसिक होते हैं?" मुस्कराते हुए तालुकदार ने कहा, "लेकिन एक तुम लोग हो जो बराबर उनकी निंदा ही करते फिरते हो।"

डाक्टर खिलखिला कर हँस पड़े। उसी समय वार्ड के भीतर फिर खाँसी की आवाज़ सुनायी पड़ी। हेना लपक कर चली गयी। डाक्टर भी उसके पीछे-पीछे आगे बढ़े। चन्द मिनटों में वापस लौटने पर बोले, "सन्देह की कोई विशेष बात नहीं है। खाँसी के साथ भी रक्त था, कल सुबह ही स्काथाग्राम लेना पड़ेगा।"

जेलर ने कहा, "तो उसे हटाने की व्यवस्था भी कल सबेरे ही करो। इतनी रात में उसे खींचकर ले जाना तो ठीक नहीं। उस अस्पताल के कमरे को भी तो साफ करना ही पड़ेगा। बहुत दिनों से वह वैसे ही खाली पड़ा है।"

फिर ठहर कर सुशीला की तरफ एक दृष्टि डाल कर वह बोले, "ऐसा लगता है खाली तो न रहता होगा। दिन में आराम की ड्यूटी होने पर किसी न किसी को वहाँ ले जाया ही जाता होगा। क्यों ज़मादार?"

महाबलसिंह की चमकती हुई भारी मूँछों के नीचे हँसी की रेखा खेल गयी। अफसर के मुँह से अपने नाम का उल्लेख सुनते ही अटेन्शन खड़े होकर साथ ही साथ बोला, "जी हुजूर!"

डाक्टर की ओर देखते हुए तालुकदार बोले, अच्छा तो अब चलिए। "ऐसी ठण्डक पड़ रही है कि कुछ समय तक इस खुले बरामदे में वायु सेवन करने पर हमको और आपको भी अस्पताल का आश्रय लेना पड़ेगा।" फिर मफलर के ऊपर ओवरकोट के कालर को उठा कर, जेब से रूमाल निकाल कर नाक को साफ किया।

चलते समय सुशीला को बुलाया और उसे आवश्यक निर्देश

देकर जैसे ही वे आगे बढ़े कि उसी समय तेजी के साथ हेना आयी और बोली, "अच्छा, रोगिन के साथ तो मैं ही रहूँगी न?"

डाक्टर का चेहरा गम्भीर हो गया। उसकी ओर एक बार देख कर वह बोले, "तालुकदार, रोग तो ठीक नहीं है यह देख ही रहे हैं। जरा सी लापरवाही से मुसीबत ही बढ़ेगी।"

मधुर कण्ठ से हेना ने तत्काल उत्तर दिया, "यह मुसीबत तो कभी भी, किसी भी समय आ सकती है?"

"हाँ यह तो ठीक है किन्तु इस उम्र में कुछ अधिक संभावना रहती है।"

"रहने दीजिए, मैं ही उसकी देखभाल करूँगी, आप यहाँ कह जाइए।"

जेलर ठिठक कर मुड़े। धुँधले प्रकाश में चेहरा तो स्पष्ट रूप से नहीं देख सके—पर उसके कण्ठ की दृढ़ता को सुन कर विस्मित हुए। किन्तु अपने भावों को अपने भीतर ही रख कर बोले, "मुसीबत है तुम यह जान कर भी इतनी बड़ी झक्की हो कि उसके पास जाना चाहती हो?"

हेना ने कोई जवाब न दिया। सिर झुका कर आँचल के कोने को उँगलियों पर लपेटने लगी। महेश कुछ देर तक इन्तज़ार करके बोले, "तुम वार्ड में जाओ। अस्पताल में कौन रहेगा—कल सुबह मैं ही सोच कर तय करूँगा।"

"कदाचित आप लोग नहीं जानते," सिर उठा कर मधुर किन्तु दृढ़ स्वर में हेना बोली, "किन्तु मैं जानती हूँ, कि यहाँ पर जितनी भी हैं सभी का घर परिवार है और उसमें उनके अपने लोग हैं। सभी किसी न किसी दिन उसमें लौट जाने की आशा रखती हैं। वे सब भला कब इस मुसीबत को अपने सिर पर ओढ़ना चाहेंगी? आपके हुक्म की बात दूसरी है पर क्या वह ठीक होगा?"

एक साधारण कैदिन जेलर साहब के सामने खड़ी होकर उनसे

बहस करे यह महाबलसिंह जमादार या सुशीला ज़मादारिन के बरदाश्त के बाहर की बात थी। पहला तो शुरू से ही कुछ खटपट कर रहा था दूसरी भी अब टोक बैठी। तालुकदार ने हाथ उठा कर उनको शांत करते हुए गंभीर स्वर में कहा "कौन ठीक होगा, कौन ठीक न होगा यह सोचने का काम मेरा है। फिर भी तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ कि तुमने जो सब के लिए कहा क्या वही बात तुम्हारे लिए नहीं है? तुम्हें भी तो एक दिन घर लौट कर परिवार का भार उठाना ही पड़ेगा?"

हेना एक क्षण मौन रह कर सोचती हुई बोली, "जी नहीं, मैं उस दिशा में निश्चिन्त हूँ।"

बात बहुत सहज स्वाभाविक थी, फिर भी बहुदर्शी जेलर महेश तालुकदार के दृढ़ हृदय को भी उसने जैसे छू लिया। उन्हें इस आश्चर्यमयी लड़की के पूर्व जीवन का कोई भी इतिहास नहीं मालूम था। ऊपरी दृष्टि से जो कुछ भी उन्होंने देखा उससे उनके मन में आया कि इस उम्र में जानबूझ कर मुसीबत में जो पड़ना चाहती है वह केवल परोपकार मात्र की ही प्रेरणा नहीं है।

जेलर साहब को निरुत्तर देख कर उसका उत्साह बढ़ा और वह लपक कर वार्ड के भीतर से क़ैदी टिकट लाकर उनके सामने करती हुई बोली, "तब आप लिख दीजिए इस पर।"

सुशीला धमकी भरे स्वर में बोली, "तू पागल हो गयी है क्या? क्या यह समय कोई काम तय करने का है? दे, अपना टिकट हमें दे दे।"

"आप ठहरिए तो मासी माँ," कुछ आग्रहपूर्ण शब्दों में हेना बोली, "अभी न कराने से पता नहीं कल इन्हें याद रहे या न रहे। फिर इस मामले में भड़काने वालों की भी तो कमी नहीं है।" इतना कह कर उसने एक नज़र डाक्टर पर डाली। ताल्लुकदार ने उसके हाथ से टिकट ले लिया। उस पर नज़र डालते ही अपराध की धारा

को देखते ही वे चौंक उठे। इस लड़की ने खून किया था! विष देकर। किसे? क्यों? दूसरे ही क्षण अपने को सम्हाला। इन मामूली बातों पर विस्मय प्रकट करना उनके लिए शोभा नहीं देता था। उनके अपने इस दीर्घ-जीवन में सैकड़ों बार इस प्रकार के प्रश्न मन में उठ चुके हैं। उत्तर भी वह न पा सके। यह एक आदि-अन्तहीन आदिम रहस्य ही उनके सामने रहा। इसी तरह और भी कितनों ही को वे देख चुके हैं। सहज स्वभाव के वे आदमी थे। बातचीत, चेहरा-मोहरा, हाव-भाव आदि सभी दस स्वाभाविक लोगों की ही तरह थे। कहीं भी कोई असंगति नहीं थी। हठात् टिकट उलटने पर देखा गया कि यह अति साधारण हाथ किसी के खून से कलंकित थे। जिन्होंने टिकट नहीं देखा है उनको इस बात का कभी भी परिचय या आभास भी नहीं मिल सकता। फिर भी दाग तो रह ही जाता है। भले ही दूसरों को पता न चले पर उनके हृदय में जो काली रेखा पड़ी रहती है वह जीवन भर घूमती रहती है। इस खूनी लड़की की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से तालुकदार देखते ही रह गए। वह उसी मृत्युहीन काली रेखा को खोजने की चेष्टा कर रहे थे—किन्तु दोनों प्रशान्त नेत्रों के बीच किसी प्रकार का आभास दृष्टिगत नहीं हुआ। मन में वही समाधानहीन चिरन्तन प्रश्न उठता रहा—यह कैसे संभव हुआ? एक दिन जिन हाथों ने किसी का प्राण लिया था आज वे ही हाथ किसी को प्राण देने के लिए व्याकुल हैं? बिना मूल्य भी नहीं अपने प्राणों की बाजी भी लगा कर? यह तो वह अपनी आँखों से ही देख रहे थे—इसमें कोई धोखा भी न था।

जेब से कलम निकाल कर तालुकदार बोले "मैं तुम्हारी बात मान तो लेता हूँ—पर तुमको भी मेरी एक बात माननी पड़ेगी?"

"क्या बात, बताइए? आप जो भी आदेश देंगे उसे मैं प्रसन्नता-पूर्वक पूरा करूँगी।"

"ठीक है, किन्तु आज नहीं, उसका भी एक दिन आएगा तभी

तुमको बताऊँगा।"

इतना कह कर उन्होंने बड़े-बड़े अंग्रेजी अक्षरों में लिख दिया—"सिक अटेन्डेन्ट, टी० बी० वार्ड।"

यक्ष्मा रोगी की नर्स के पद पर हेना मित्र बहाल कर दी गयी।

जेलर साहब के हाथों से टिकट वापस लेने के बाद उस पर लिखे गए अक्षरों पर कुछ देर तक ध्यान से देखती रही। उसके बाद उसे कपड़ों पर रख कर मिट्टी पर बैठ गयी। पैरों पर टिका कर दोनों हाथों से सिर को पकड़े रही। कुछ क्षणों के बाद उसने धीरे से उठ कर सिर उठाया तो तालुकदार ने देखा उसके दोनों आँखों में पानी छलछला आए हैं। उन्होंने अन्धकार से भरे आकाश की ओर दृष्टि फेंका। ऐसा लगा मानो कुहरे से भरी जाड़े की इस तामसी रात का इस आँसुओं से भरे हुए श्यामल मुख के साथ कहीं कोई जैसे मेल है।

दूसरे दिन भोर से ही हेना का काम शुरू हो गया। धोती का आँचल कमर में कस कर नींबू के पेड़ के पीछे वाले छोटे अस्पताल को धो-पोंछ कर उसने बिल्कुल साफ कर दिया। मेन-अस्पताल से डाक्टर ने दो लोहे की चारपाइयाँ, साथ में दो सेट नए गद्दे, तकिये, चादरें और मसहरियाँ भेज दीं। सभी चीज़ों को झटपट ठीक-ठाक करके यथास्थान लगा कर उसने रोगी को खिड़की के सामने सुला दिया। बेड साइड टेबिल को भी सजा कर रख दिया। उस पर था टेम्परेचर चार्ट, थर्मामीटर, खाने के बर्तन, और इसी प्रकार के छोटे-मोटे सामान। फिर मिट्टी की एक अँगीठी में कुछ कोयला जलाकर उसमें लोहबान डाल कर खाट के पास रख दिया। लोहबान का सुगंधित धुँआ कमरे में भर गया।

हेना ने कमरे की सफाई करके और सभी चीज़ों को यथास्थान

लगा कर स्नान किया और 'फीमेल कुरता' और धोती को सज्जी मिट्टी से साफ करके सूखने के लिए फैला दिया—और खुले हुए भींगे बालों को ऊपर बाँध कर वह बूढ़ी की खाट के पास रखे छोटे स्टूल पर आकर बैठी। इतने ही में डाक्टर आ गए। भीतर पैर रखते ही वे चारों तरफ एक नज़र दौड़ा कर अनायास बोल पड़े 'वाह !' फिर उनकी दृष्टि कुछ क्षणों के लिए हेना पर अटकी रही। हेना के मुख पर लज्जा की लालिमा दौड़ गयी। वह अपने मनोभावों को छिपाने के लिए सिर को नीचा किए थर्मामीटर को झटकारने लगी। डाक्टर ने भी अब तक अपने को सम्हाल लिया था, वे हँस कर बोले, "मैं देख रहा हूँ कि आपके हाथों में जैसे जादू है। यह सब छोटी-छोटी चीज़ें तो और अस्पतालों में तो देखी हैं; किन्तु...." हठात् उनकी नज़र बूढ़ी पर पड़ी और वे बात बदलकर बोले, "हमारा पेशेन्ट भी लगता है ताजा हो गया है। कैसी हो ? क्या नाम है तुम्हारा ?"

हेना खिलखिला कर हँसते हुए बोली, "इतनी ही देर में आप भूल गए ? इनका नाम मोना की माँ है।"

"हाँ-हाँ मोना की माँ ! आज कैसी हो ?"

फीकी हँसी के साथ बूढ़ी बोली, "ठीक हूँ बेटा, मेरे साथ बिटिया तो है ही, मुझे अब कोई डर नहीं है।"

"ठीक ! हाँ थर्मामीटर कहाँ है ?" हेना की तरफ हाथ बढ़ाते हुए डाक्टर ने कहा।

"हाँ बेटा, यह बिटिया तो हमारे पास ही रहेगी न ?" बीच में ही बुढ़िया ने टोका।

"क्यों, अकेली नहीं रह सकतीं ?"

"अकेली ! ना बाबा, तब तो मैं मर ही जाऊँगी।" काँपते हुए हाथों से उसने हेना का हाथ पकड़ लिया—जैसे सचमुच ही उसे कोई लिए जा रहा हो।

हेना ने उसके हाथों को अपने हाथों में लेकर दाबते हुए डाक्टर

की तरफ देखा और मुँह दाब कर हँसी। फिर सिर हिला कर कहा: "देखा तो आपने?"

डाक्टर के मुख पर भी मधुर मुस्कान खेल गयी। बूढ़ी को आश्वस्त करते हुए वह बोले, "अच्छा-अच्छा तुमको अकेले नहीं रहने दिया जायगा; यह भी तुम्हारे साथ रहेंगीं।"

रोगी को देखने के बाद नर्स को दो-चार आवश्यक निर्देश देकर डाक्टर ने बरामदे की सीढ़ी की ओर ज्यों ही पैर उठाया हेना आगे बढ़ कर बोली, "अपने मेट और दो आदमियों को भेज दीजिएगा।"

"क्यों?"

आँखों के इशारे से दूसरी चारपाई और बिछौने को दिखा कर वह बोली, "इनको वापस ले जाने के लिए।"

डाक्टर मुस्करा कर बोले, "उनका यहीं काम है, इसी से उन्हें यहाँ भेजा गया है।"

"उनका यहाँ क्या काम है? रोगी की अपनी एक चारपाई तो है ही?"

"हाँ, लेकिन रोगी को छोड़ कर और भी कोई नहीं है क्या?"

"लेकिन उसे तो इन सब की जरूरत नहीं।"

डाक्टर ने तुरंत कोई उत्तर न दिया। नर्स की ओर भरपूर दृष्टि से देखा, फिर बेग को उठाते हुए कहा, "देखो जेलखाने का नियम है कि जिसको जो मिलना चाहिए वही उसे दिया जाता है। न चाहने पर भी वह दिया ही जायगा।"

"किन्तु यह सब तो मुझे नहीं मिलना चाहिए—यह बात तो आप भी जानते हैं और मैं भी जानती हूँ। मैं एक साधारण कैदिन हूँ। बिछाने और ओढ़ने के लिए मुझे केवल दो कम्बल ही मिलना चाहिए।"

"जानता हूँ। इन सबको जान कर भी इन सामानों को आपके पास भेजा गया है।"

"क्यों ?"

"क्यों की क्या बात है ? इस टी० बी० मरीज के कमरे में केवल दो कम्बलों को लेकर जमीन पर ही लेट कर आप रह सकती हैं ?"

"क्यों नहीं रह सकती ? अगर और सभी रहते हैं तो मैं भी रहूँगी।"

"आपके रह सकने पर भी हम तो वह सब नहीं दे सकते।" कह कर बगैर किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए ही डाक्टर सीढ़ी के नीचे उतर गए। हेना कुछ क्षणों तक निःशब्द खड़ी रही—फिर तेजी से आगे बढ़ कर पुकारा, "डाक्टर बाबू।"

डाक्टर ठिठके और घूम कर बोले, "अब क्या बात है ?"

"एक बात पूछनी है ?"

"पूछिए।"

"आप मुझे 'आप', 'आप' क्यों कहते हैं ? मैं तो एक साधारण कैदिन हूँ। दूसरे बाबू लोग, सिपाही, जमादार सभी मुझे 'तुम' कह कर ही बोलते हैं।"

डाक्टर की दृष्टि गंभीर हो गयी। पूरे चेहरे पर गंभीरता छा गयी। वे बोले, "सभी की आँखें बराबर तो नहीं होतीं। कोई यदि यही सोचता है कि यह 'साधारण कैदी' है तो केवल इतने ही से किसी आदमी का पूरा परिचय तो नहीं हो जाता। फिर इसमें एतराज की ही क्या बात है, मनुष्य क्या सब समय अपने को देख सकता है या पहिचान सकता है, हेना ?"

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही डाक्टर धीरे-धीरे चले गए। हेना के दोनों पैर वहीं पर जैसे अचल से हो गए। वह वहीं भावमग्न सी खड़ी रही। उसे यह भी पता न चला कि इसी बीच में कहीं से सुशीला आकर उसके पास खड़ी है। "यहाँ खड़ी क्या कर रही है ?" हठात् सुशीला की आवाज़ सुनकर वह चौंक सी उठी और मुड़कर उसको देखने लगी।

"ओ माँ, दोनों आँखें भरी हुई हैं—कहीं बुखार तो नहीं चढ़ा ? देखें।" कह कर सुशीला ने उसके माथे पर हाथ रखा—फिर आश्वस्त स्वर में बोली, "नहीं, शरीर तो ठन्डा है।"

अधरों पर फीकी हँसी के साथ हेना ने कहा, "नहीं मासी माँ मैं कोई ऐसी नादान लड़की थोड़े ही हूँ जिसे बुखार आने पर भी पता न चले।"

"बाप रे, न होना ही अच्छा है। एक कांड तो कर ही बैठी हो। यहाँ कोई नई मुसीबत न बटोर लो यही अच्छा है। यह तो चिता में पैर रखे हुए है, इसे यहाँ रखने की जरूरत ही क्या थी ? यह बीमार थी तो सरकार जानती, जेलखाने के बाबू लोग जानते, तेरा इसमें क्या था ? तेरे सात पीढ़ी के कुटुम्ब की बूढ़ी तो यह थी नहीं जो उसे बचाने के लिए चली आयी। कहीं तुझे कुछ हो गया तब देखूँगी कौन तेरा देखभाल करेगा ?"

हेना ने फुसफुसा कर कहा, "धीरे बोलो मासी माँ। वह कहीं सुन न ले ?"

"सुनने भी दो ! मेरी भी उम्र कट गयी है ! बाप रे, मुझे यह सब बातें अच्छी नहीं लगतीं। फिर जेल के बाबूओं की भी क्या अक्ल है ! किसी के चाहने मात्र से ही उसे मुसीबत में क्या ढकेल दिया जाय ? यक्ष्मा रोगियों के लिए इतने अस्पताल किस लिए हैं, वहीं क्यों नहीं इसे भी भेज देते ?"

"ऐसा हो सकता तो वह कर ही देते।" धीमें और करुण स्वर में हेना बोली, "मुझे देख कर उन्हें दया आ गयी, तभी तो मुझे इस काम पर लगा दिया।"

"दया ! क्या इसी का नाम दया है ?" सुशीला ने जल-भुनकर कहा।

"हाँ मासी माँ ! पर इन बातों को अब यहीं रहने दो। यह सुनो बूढ़ी खाँस रही है। मैं जा रही हूँ...." कह कर वह हँसती हुई अस्पताल के

भीतर चली गयी। सुशीला मुँह बिचका कर बड़बड़ाती हुई वर्क्स वार्ड की ओर चल दी।

इसके बाद कई दिन बीत गए। एक्सरे की फोटो लेने के लिए मीना की माँ को बाहर सदर अस्पताल में भेजा गया। रिपोर्ट आने के बाद विशेषज्ञ आए। जेल के बड़े साहेब एवं मेडिकल आफिसर भी एक दिन आकर देख गए। डाक्टर को भी इन दिनों कामों के सिल-सिले में काफी देर तक रहना पड़ता। हेना को भी उनके साथ रहना पड़ता। पता नहीं कब क्या करना पड़े और क्या जरूरत हो। काम करने के दौरान में कई बार दोनों को एक दूसरे को निकट से देखने का अवसर मिला और कभी-कभी दोनों को एक दूसरे से सट कर भी खड़ा होना पड़ा। अँगुली से एक दूसरे का स्पर्श हुआ और बीच-बीच में शरीर का और श्वास का भी स्पर्श एक दूसरे को हुआ। अकस्मात् हेना के हृदय में रक्त का संचार बढ़ जाता और कभी-कभी दोनों हाथ काँपने लगते। किन्तु यह असंगत हृदयावेग उसमें अधिक समय तक न ठहर पाता और मुक्त चित्त को भी वह दबा देती। निरंतर सेवा में उसने अपने को बिल्कुल खपा लिया था।

कई दिनों बाद सुबह साढ़े आठ बजे डाक्टर रोगी को हमेशा की तरह देखने आए। बूढ़ी के मुँह में थर्मामीटर लगा कर प्रतीक्षा करने लगे। हेना ने उसी बीच जल्दी-जल्दी कमरे की सभी चीज़ों को यथास्थान रख कर रोगी के कपड़े धोने के लिए उठा कर बाहर जाने के लिए पाँव बढ़ाया ही था कि डाक्टर ने पुकारा, "सुनो।"

हेना ठिठक कर खड़ी हो गयी। दोनों के मुग्ध नेत्र एक दूसरे से जा टकराए। ऐसा लगा मानो अभी ही नहीं देर से एक दूसरे को देख रहे थे। उनके हृदय के अज्ञात कोने में कुछ हलचल सी हुई और दोनों के शरीर में न जाने क्यों एक सिहरन सी हुई। सीने पर

साड़ी को ठीक करती हुई वह बोली, "कहिए, क्या कह रहे हैं ?"

डाक्टर सलज्ज मुस्कान के साथ अप्रतिभ स्वर में बोले, "कुछ नहीं, रहने दो।"

"क्या कुछ चाहिए ?"

"नहीं, देख रहा था कि तुम यहाँ कितनी चटपट सब काम निपटा रही हो, इसी से मुझे ताज्जुब हो रहा था। तुम्हारे चलने-फिरने की भी एक सुन्दर भंगी है।"

"सिर्फ इतनी बात ? मैं तो समझ रही थी कि न जाने क्या जरूरी बात है।"

डाक्टर और कुछ बोलने ही जा रहे थे कि हेना बीच में रोक कर बोली, "ओ माँ, यह क्या कर रहे हैं ? वह बेचारी और कब तक मुँह बन्द किए रहेगी। मुँह से थर्मामीटर पहले निकालिए, फिर बैठे-बैठे भंगिमा देखिएगा।" इतना कह कर वह तेजी के साथ बाहर चली गयी।

बाहर जाने पर एकाएक वह ठिठकी। वह सोचने लगी उसने यह क्या किया। बात ही बात में वह यह स्पष्ट कर आयी कि उनकी प्रशंसा को वह मन-ही-मन चाहती है। उसका स्वाद भी उसे मधुर और प्रिय लगा। बाहर से जो भी भाव दिखाया पर अन्तर में खुशी हुई। छिः-छिः उसके मुँह से क्या निकल गया। उसका एकमात्र कर्त्तव्य था कि वह कड़ा उत्तर दे देती। उचित तो यह कहना था कि, 'डाक्टर बाबू, आप हमारी भंगिमा देखने नहीं आते, आपका और काम तथा जिम्मेदारियाँ हैं। आप उस ओर ध्यान दें।' एक बार उसने सोचा कि लौट कर इन बातों को सुना आये किन्तु वह ऐसा न कर सकी। डाक्टर भी क्या सोचेंगे। कपड़ों को धोने के लिए लेकर आगे बढ़ न सकी। जैसे किसी मधुर लज्जा ने उसके दोनों पैरों को जकड़ लिया।

दूसरे दिन फिर डाक्टर राउन्ड पर आये। अस्पताल के दरवाज़े के बाहर ही हेना टिकटों को लेकर मौन खड़ी है। मुख पर अवसाद की

बादल घिरे हैं। डाक्टर ठिठके और उद्विग्न स्वर में बोले, "यहाँ क्यों खड़ी हैं ? क्या खबर है ? बूढ़ी कैसी है ?"

हेना ने इन प्रश्नों का कोई भी उत्तर न दिया। टिकटों को आगे बढ़ाकर तेज स्वर में बोली, "हमारे टिकट पर आपने यह सब क्या लिख दिया है ? मैं तो कुछ बीमार हूँ नहीं।"

डाक्टर अपने लिखे हुए कागज़ पर एक नज़र दौड़ाकर हँसते हुए बोले, "अच्छा यह बात है ? मैं तो घबड़ा ही गया था। यह सही है कि तुम बीमार नहीं हो, फिर भी तुम्हारे लिए खाने के सामान बढ़ाने की जरूरत है।"

"क्यों ? कोई जरूरत नहीं।" उद्वेग भरे स्वर में हेना बोली, "जो सभी को मिलता है वही मेरे लिए भी काफी है। यह सब आप काट दीजिए।"

डाक्टर ने समझाते हुए कहा, "देखो तुम सब समझती हो पर इस सीधी बात को जैसे समझना ही नहीं चाहतीं। यक्ष्मा रोगी की सेवा करते समय 'रिज़िस्ट' अर्थात् रोग का मुकाबला करने के लिए शक्ति न दी जाय तो किसी भी समय सर्वनाश हो सकता है। इसके लिए यथेष्ट परिमाण में पौष्टिक पदार्थ पेट में न जायगा तो टी० बी० के जर्म्स से किस तरह लड़ा जा सकता है ?"

"मुझ में जो शक्ति है उसी से लड़ूँगी, नहीं तो मर ही जाऊँगी। पर रोगी की सेवा के नाम पर मैं अंडा और मक्खन नहीं खा सकती।"

"अरे, यह तो राज-रोग है। उसको रोकने के लिए राज-भोग के अलावा कुछ नहीं चलेगा। तुमने रोगी के खाने की लिस्ट तो देखी ही है, उसके मुकाबले में तो तुम्हें कुछ भी नहीं दिया गया है।"

"रोगी को आप जो भी चाहें दे सकते हैं पर मैं तो आपकी रोगी नहीं। मुझे किस लिए दे रहे हैं ? और देंगे भी तो मैं क्यों लूँगी।"

डाक्टर क्षुब्ध स्वर में बोले, "लेना न लेना तुम्हारी इच्छा है; पर डाक्टर होने के नाते मेरा भी कुछ दायित्व है, इसी से मैंने तुम्हें दिया। नहीं खाना चाहतीं न खाओ। इसमें मेरा क्या ?"

टिकटों को वापस देकर डाक्टर कमरे में घुसे। बूढ़ी की हालत कुछ ठीक थी। उससे दो-चार बातें हुईं। मीट सेफर के बीच उसका खाना सजा कर रक्खा हुआ था। रोटी, अंडा, दूध और दो तरह के फल। उस ओर देखकर बोले, "ठीक से खा-पी तो रही हो न ?"

"मैं तो खाती ही हूँ, पर वही कुछ नहीं छूती। दोनों वक्त दो दाना चावल जो 'फाइल' से आता है, वही खा कर रहती है। आप ही उसे समझाते जाइए न डाक्टर बाबू।"

"हमारी बात ही कौन सुनता है ?"

"सुनेगी, आपको वह खूब मानती है।"

चन्द मिनटों में डाक्टर का काम समाप्त हो गया। नींबू की झाड़ी के पास से रास्ता है। माघ समाप्त होकर फाल्गुन लगा है। नींबू के पेड़ों पर फ़ल आ गये हैं। सुबह की ताजी हवा मीठी सुगन्ध फैला रही है। पास में ही एक आम का घना पेड़ है। सभी डाल-पात बौरों के भार से झुक रहे हैं, उस पर मधु-मक्खियों का एक छत्ता भी है। आकाश गहरा नीला है। उसके नीचे चमकते ओस कणों पर सुबह का प्रकाश झलमला रहा है। कहीं कोई व्यस्त नहीं है। शोर-गुल भी नहीं है। केवल कुछ दूर पर मसक्कत घर से दाल दलने की आवाज़ आ रही है। साथ में किसी लड़की के मधुर कंठो से निकले गीत के सुर हवा के झोंके में सुनाई पड़ जाते हैं। इन सबसे डाक्टर के तरुण मन में भी मधुर रागिनी का सुर फूट पड़ा।

नींबू के पेड़ की आड़ से हेना शांत भाव से बाहर आई। डाक्टर के मन में बासन्ती प्रभात के इस अलौकिक छवि के साथ ही साथ वह भी उसके अंग-अंग के साथ जुट गयी। यदि यह श्यामल चिकना कोमल शरीर न होता तो यह सारा दृश्य जैसे अपूर्ण ही रहता।

"तुम यहाँ हो ?" विस्मय के स्वर में डाक्टर ने पूछा। इसी बीच उनके हृदय में स्वतः स्फूर्त चंचलता फूट पड़ी।

"ऐसे ही खड़ी थी।" गम्भीर स्वर में उत्तर मिला।

"आज का दिन तो बहुत सुन्दर है न ?"

"अच्छा डाक्टर बाबू, टी० बी० के रोगियों को जो नर्स करते हैं उन्हें सभी अस्पतालों में विशेष खाना देने की व्यवस्था है ?"

"सब अस्पताल की बात मैं नहीं जानता।" अचकचा कर सँभलते हुए डाक्टर ने कहा, "मैं अपने अस्पताल की बात जानता हूँ।"

"मैं पूछना चाहती थी कि सचमुच मुझे इसे खाने की जरूरत भी है या वह केवल मुझ पर ही आपने दया कर के भेजा है। अगर ऐसा है तो आप...." वह बात पूरी न कर सकी। कुंठा जड़ित नेत्रों को ऊपर उठा कर उसने डाक्टर की ओर देखा। उसके लज्जा-संकोच और माधुर्य भरे उस कंठ-स्वर को सुन कर डाक्टर के हृदय में पीड़ा हुई। कुछ क्षणों के मौन के बाद वे गम्भीर स्वर में बोले, "तुम्हें देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है हेना! कोई उपाय भी नहीं है। डाक्टर होने के नाते जो थोड़ा बहुत मैं खाना दे सका उसे भी अगर न लो तो मैं कर ही क्या सकता हूँ।"

हेना ने कोई जवाब न दिया और करुण नेत्रों से देखती रही। डाक्टर ने फिर कहा, "किस लिए तुमने इस मुसीबत को अपनी इच्छा से स्वीकार किया है मैं नहीं जानता। हो सकता है इसके पीछे कुछ गम्भीर कारण हों। किन्तु जहाँ तक मैं जानता हूँ और जिस तरह हो सकेगा तुमको मैं बचाऊँगा। यहाँ पर इस जेल में अपनी आँखों के सामने मैं तुमको आत्महत्या नहीं करने दूँगा।"

हेना की आँखों में बिजली कौंध गयी। आवेग कम्पित स्वर में वह बोली, "क्यों, मुझ जैसी तुच्छ लड़की को बचाने से क्या लाभ ?"

डाक्टर तुरंत कोई उत्तर न दे सके। हेना उनके निकट एकांत में खड़ी थी। दोनों ओंठ बार-बार फड़क उठते थे और तेज साँस से

सीना धौंकनी जैसा चल रहा था। दोनों नेत्र अभी भी तीव्र आवेग के साथ उसके चेहरे को देख रहे थे। डाक्टर के प्रशस्त हृदय में रक्त स्रोत तेज हो उठा। जैसे आज वह किसी भी बंधन को तैयार नहीं है। किन्तु नहीं, बाँध अटूट ही रहा। अपने को सयंमित करते हुए मृदु कण्ठ से डाक्टर ने कहा, "लाभ क्या है यह तो नहीं जानता। हो सकता है कोई भी लाभ न हो। किन्तु लाभ-नुकसान का हिसाब ही क्या मनुष्य के जीवन का सब कुछ है, हेना?...." कह कर जो कभी न किया था हठात् उसके दाहिने हाथ को अपने दोनों उत्तप्त हाथों से पकड़ लिया। दूसरे ही क्षण उसे छोड़कर तेज गति से वह आगे बढ़ गए।

एकांत में क्षणिक स्पर्श! हेना का सारा शरीर रह-रहकर सिहर उठता था। हाथ छूटते ही किसी तरह वह भाग कर अपनी खाट पर आकर पड़ गयी। इस जगह करीने से लगी सभी चीज़ों के साथ किसी एक के गम्भीर प्राण का स्पर्श जुड़ा हुआ है। तकिए पर मुँह डालते ही अपने नेत्रों की जलधारा को वह न रोक सकी।

बूढ़ी दीवाल की ओर मुँह किए सो रही थी। आहट मिलते ही उसने करवट ली और बोली, "क्या बात है बेटी, ऐसा क्यों कर रही हो?"

उसके बाद नियमित रूप से अस्पताल में आने पर भी डाक्टर ने नर्स को नहीं देखा। उसके स्थान पर एक दूसरी लड़की थी। उसका नाम कमला था। वह एक तरफ खड़ी रहती है। पता नहीं कब क्या आवश्यकता पड़ जाय। रोगी को देखने के बाद वही साबुन देकर हाथ धुलाती है और तौलिया हाथ पोंछने के लिए दे देती है। बस इतना ही काम उसके जिम्मे था। टेबिल पर दबा कर जो टेम्परेचर चार्ट रखा हुआ था वह हेना के ही हाथों तैयार होता था। उसके हाथ

से लिखा हुआ सुन्दर अक्षरों में एक संक्षिप्त नोट भी पास ही होता। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी जरूरी सामान थे वह सब यथास्थान करीने से सजे हुए थे। जिस तरफ भी दृष्टि पड़ती थी उसके निपुण हाथों का चिह्न दिखायी पड़ता था।

उस दिन सब काम निपटा कर डाक्टर जब लौट कर सीढ़ी तक पहुँचे तब हठात् ठिठक कर बोले, "तुम्हारी वह दीदी कहाँ हैं?"

कमला ने कहा, "अभी यहीं तो थीं। ऐसा लगता है स्नान करने गयी हैं। क्या उन्हें पुकारूँ?"

डाक्टर थोड़ी देर तक मौन रहे, फिर बोले, "अच्छा रहने दो।"

दूसरे दिन हेना डाक्टर के आने के समय सभी सामानों को यथा-स्थान पर रख कर जाने लगी। कमरे से बाहर निकलते ही सुशीला से भेंट हो गयी।

"कहाँ जा रही हो?"

"जरा उधर ही जा रही हूँ।"

"यह ले, डाक्टर बाबू आज नहीं आ सकेंगे। तुझे एक चिट्ठी दी है।"

"मुझे! कैसी चिट्ठी?" माथे पर बल डाल कर हेना ने जानना चाहा।

"मैं क्या जानूँ कैसी चिट्ठी? क्या करना-धरना है शायद यही कुछ लिखा होगा ऐसा लगता है। ले रख!"

वायलेट रंग का बंद लिफाफा था। ऊपर किसी का भी नाम न था। उसे लेते ही उसके हाथ काँप उठे। हृदय में भी एक हलचल मच गयी। पता नहीं इस चिट्ठी में क्या लिखा हो। खोलते-खोलते उसने अपने हाथों को रोक लिया। सिर झुका कर अपने मन में सोचने लगी वह इस चिट्ठी को नहीं खोलेगी। जैसी है, वैसी ही सुशीला के हाथों वापस कर देगी। जल्दी-जल्दी आगे बढ़ कर उसने सुशीला

को पकड़ना चाहा। फिर न जाने क्या सोचकर वापस लौट आयी। लिफाफे को एक बार फिर गौर से देखा। मन में किसी मृदु सौरभ ने स्पर्श किया--एक मोहमयी अनुभूति उसे हुई। फिर अनमने मन से उसने लिफाफे को एक कोने से फाड़ा। छोटे से एक कागज़ पर सुन्दर अक्षरों में लिखा था—

हेना,

तुम्हें कोई डरने की बात नहीं! मेरी तरफ से कोई भी मुसीबत तुम्हे स्पर्श भी न करेगी। तुम स्थिर हो। तुम्हारे रास्ते से मैं अपने को स्वयं हटा रहा हूँ।

—देवतोष

'देवतोष'! नाम कितना अच्छा है! डाक्टर बाबू का नाम हेना ने पहली बार जाना। कई बार वह जानना भी चाहती थी! पर किसी से पूछ न सकी थी। 'देवतोष'! मन में यह नाम गूँज उठा। उसके बाद उसने चिट्ठी को फिर से पढ़ा। मन को समझाने लगी चलो अच्छा हुआ। यही वह चाहती थी। इसीलिए तो वह रोज-रोज भाग जाती थी। उनके सामने वह एक बार भी सहज भाव में खड़ी नहीं हो पाती थी। दिन तो चटपट में समाप्त हो जाता था और रात भी जागते कटती थी। स्थिर नहीं, शान्त नहीं। हृदय पर एक बहुत बड़ा बोझ रक्खा हुआ था। वह बोझ आज हल्का हुआ। आज से वह निश्चिंत निरापद हुई। जिसे लेकर उसके मन में इतनी दुर्भावनाएँ थीं, उसी ने अपने हाथों से आश्वासन के साथ अभयवाणी भेज दी—'कोई भी मुसीबत तुम्हें स्पर्श नहीं करेगी। तुम स्थिर होओ।'

चिट्ठी को हाथ में दाब कर उसने एक इत्मीनान की साँस फेंकी। मन ही मन सोचने लगी मैं बच गयी! उसके बाद एक बार उसके मन में यह भी आया कि क्या उसके हृदय का बोझ हल्का हो गया? अन्तर के किसी गहरे कोने में कोई बैठा था, कोई लोभी तृषित दृष्टि से उसे देख रहा था। कई दिनों पहले किताब में पढ़ी बात उसे

याद आयी कि एक असभ्य जाति है। पंछियों के पर ही इनके लिए बहुमूल्य अलंकार हैं। जंगल में राह चलते वे गजमुक्ता पाने पर भी उसे वहीं पड़े रहने देते हैं। आज क्या वह भी उसी तरह की मूर्खता करके सहस्रों मुक्ताओं से भी अधिक मूल्यवान जीवन के उस परम रत्न को तो नहीं फेंक रही है!

सहसा उसने अपने भावावेग को मोड़ने के लिए जोर दिया। नहीं, नहीं, उसने यह क्या किया? इस सर्वनाशी मोहजाल की माया को काट कर उसे ऊपर उठना है। यह भूलने की बात नहीं है कि संसार में कुछ पाने लिए कुछ देना पड़ता है। पर उसके पास तो कानी कौड़ी का भी सहारा नहीं है। इस क्षुद्रजीवन में जो कुछ संचित था वह भी जल कर खाक हो चुका है, केवल एक कालिमा शेष रह गयी है। आज उसके चारो ओर अन्धकार है, किसी तरफ भी प्रकाश की एक क्षीण रेखा भी नहीं है। यद्यपि किसी दिन उसके पास सब था। नारी जन्म की परम सम्पदा जो देने से स्वयं सार्थक होती है और अन्य को भी सार्थक करती है। दूसरी दस लड़कियाँ वहाँ थीं, उनकी तरह वह भी उससे वंचित न थी। उसके बाद जीवन के बाइसवें वर्ष को पूरा करते-करते किसी ने उसे सहज पथ से निर्मम हाथों से ढकेल कर फेंक दिया। फिर भी आशा की मृत्यु नहीं होती, लोभ का भी कोई अन्त नहीं है। सब कुछ जा चुका है पर स्वप्न का घरौंदा नहीं गया। विधाता का यह भी कैसा निष्ठुर परिहास है!

—:o:—

२

कमला बीमार पड़ी। बीमार पड़ने की बात पहले से ही थी। बहुत चेष्टा के बाद भी आखिर में वह उसे छिपा न सकी। दर्द तो पहले पेट और कमर के जोड़ों में था। धीरे-धीरे बढ़ कर वह पूरे शरीर में फैल गया। पैरों की गाँठों में तो फोड़े जैसा दर्द था। ज़रा तेज चलने पर हाँफने लगती, दिल धड़-धड़ करने लगता। शरीर में रक्त न था, आँखों के नीचे कालिमा छा गयी थी, गाल भी पिचक गए थे। बाल रूखे से खड़े थे, शरीर का साफ रंग ढकता जा रहा था। उम्र में वह हेना से एकाध साल छोटी ही थी, किन्तु कहीं भी कोई लावण्य न था और श्रीहीन क्षीण शरीर पर तेजी के साथ यौवन रेखा मिट रही थी।

हेना की दृष्टि उस पर बहुत आगे पड़ी थी। दूसरी औरतों की नज़र से भी वह छिपा न सकी। कोई हँसी-मज़ाक करतीं तो कोई सस्नेह उत्कन्ठाओं के साथ सारी बातें जानना चाहतीं। कमला थोड़ा सा मुस्करा कर सभी को टाल देती या संक्षिप्त सा उत्तर, "पता नहीं जो भी हो" कह कर पिण्ड छुड़ाती। उस दिन हेना उसे एकांत में मिलने पर पूछ बैठी, "बात क्या है, बताती क्यों नहीं?"

"कैसी बात भाई?" कमला ने कहा।

"यही दिन-दिन सूखती क्यों जा रही हो?"

"सचमुच! क्या मैं दुबली हो गयी हूँ? लेकिन मैं तो नहीं

जानती। हेना दीदी यह तुम्हारी आँखों की भूल है। मोटी तो मैं कभी भी न थी।"

हेना तुनक कर चली गयी।

दो-तीन दिन बाद हेना शाम को मस्सकत घर के पास से जा रही थी। सुशीला की चिल्लाहटें सुन कर भीतर घुस गयी।

"क्या हुआ मासी माँ?"

"हुआ क्या मेरा सर! यह देखो इनका काम! सिर्फ आधा मन चना था। उसकी भी यह हालत है। इनके छिलकों को कौन अलग करेगा और इसे बीन कर कौन साफ करेगा? गुदाम बाबू को इसे क्या समझा कर दूँ, तुम्हीं बताओ? वह तो मुझे ही पकड़ेंगे।"

"यह किसका काम है?" दरे हुए चनों पर दृष्टि डाल कर हेना ने पूछा।

"और किसका? वही तुम्हारी कमला बीबी का।"

क्रोध में सुशीला प्रत्येक नाम के साथ एक सादर अलंकार जोड़ देती थी। कमला कमला बीबी और ज्ञानदा ज्ञानूरानी बन जातीं। हेना हँसी दबाते हुए बोली, "वह गयी कहाँ।"

जाँते पर बैठी कई लड़कियाँ दाल दर रहीं थीं। उनमें से एक ने कहा, "जायगी कहाँ? नंबर में जाकर लम्बी पड़ी होगी।"

हेना ने कहा, "ओ....हो,....बेचारी का शरीर ठीक नहीं है, वह उसी हालत में काम करती थी। ऐसा लगता है कि आज उसका शरीर न चल सका हो।"

सुशीला तुनक कर बोली, "शरीर अच्छा न होने पर "सिकमैन" में जाने ही से तो होगा। मैं इस ढेरी को लेकर अभी क्या करूँ?"

"आप ठहरिए, मैं अभी पूरी दाल दर दूँगी। इसमें देर ही कितना लगेगा।"

"रहने दो, अब यह सब तुम्हें नहीं करना है।"

"इतने दिनों तक मैंने भी तो यही किया है। नर्सगीरी पर मेरे

प्रमोशन को अभी हुआ ही कितना दिन है ? क्या मैं इतना चना भी दर-पीस नहीं सकती ?"

कई औरतों की आँखों में एक दबी-दबी सी हँसी खेल गयी। एक कोने से कोई बोल पड़ी, "उसे मना करो मासी माँ। डाक्टर बाबू को पता चल गया तो तुम्हारी भी खैर न रहेगी।"

शेड में सभी की ठहका भरी हँसी की आवाज़ गूँज उठी। सुशीला ने उस तरफ जलती हुई दृष्टि डाली और उसे डाँटने ही जा रही थी कि धीमें स्वर में हेना ने उसे रोकते हुए कहा, "जाने दो मासी माँ।"

आज की तरह स्पष्ट बात सामने आने से पहले औरतों में इशारों से जो बातें इधर कुछ दिनों से भीतर ही भीतर पक रही थी। हेना उससे अपरिचित न थी। वार्ड से अस्पताल आते-जाते, नहानघर की लाइन में, रसोईघर के शेड में, जहाँ कहीं भी दो-चार औरतें इकट्ठी होतीं, उसे देखते ही आपस में फुसफुसा कर हँस देतीं अथवा एक दूसरे के शरीर पर चिकोटी काट लेतीं। सारी बातें आँखों के इशारों से चलतीं। उनके इस नीरव कटाक्षों और आलोचनाओं का लक्ष्य किसकी ओर है हेना को समझने में दिक्कत न होती। वह जान-बूझ कर भी अनबूझी सी बन कर अपना काम निपटा कर चली जाती। किन्तु इन सब बातों को वह मामूली बात कह कर उड़ा भी नहीं सकती थी। बीच-बीच में उसे इच्छा भी हुई कि वह उन लोगों को कुछ जवाब दे। मौन रह कर सहने से बदनामी का मुँह नहीं बंद होता। फिर भी वह बहुत सोच-विचार कर आगे नहीं बढ़ी। इच्छा भी नहीं हुई। मन को समझाया कि कीचड़ में ढेला फेंकने से खाम-ख्वाह छींटे पड़ेंगे। आज भी वह कोई बात न करके सहज भाव से कमला के जाँता पर जा बैठी। किन्तु इसे सामान्य घटना समझ कर अपने मन से हटा न सकी। इधर कई दिनों से उसके अन्तर के किसी कोने में आनंद, वेदना, लज्जा और गौरव एक-एक करके इस

जाँते की तरह घूम-घूम कर उसे पीस रहे थे।

'स्टाप वर्क' अर्थात् दिन का काम समाप्त करने का घन्टा बजा। कुछ देर में ही खाना आवेगा और रात होने से पहले ही रात का खाना बाँट दिया जायगा। औरतें ऊँचे, टेढ़े-मेढ़े मस्सकत घर से निकल कर कुछ खुले मैदान में टहलने लगीं तो कुछ आराम करने लगीं। जो कम उम्र की थीं वह जमादारिन की नज़र बचा कर खिसकने के चक्कर में थीं। सूनी बैरक में कमला चुपचाप पड़ी हुई थी। हेना उसके पास जा बैठी। रूखे-सूखे बालों पर उँगलियाँ चलाते हुए वह बोली, "कई दिनों से कह रही हूँ कि खुल कर बताओ कि क्या हुआ है और डाक्टर को भी दिखाओ।"

कमला जैसे चौंक कर बोली, "डाक्टर! नहीं दीदी यह बात न कहो, मुझसे यह न होगा।"

"क्यों? क्या डाक्टर तुझे खा जायँगे?"

अपने दोनों कमज़ोर हाथों में हेना के हाथ को लेते हुए सलज्ज और मधुर स्वर में कमला बोली, "तुम नहीं जानती हेना दीदी, यह रोग ही ऐसा है जिसे मुँह खोल कर कहा नहीं जा सकता।"

हेना की आँखों के सामने से जैसे एक परदा हट गया। उसे थोड़ी देर तक वह बड़े गौर से देखती रही। फिर बोली, "किसी और से भले ही कुछ न कहो पर डाक्टर से लज्जा करने से कैसे काम चलेगा?"

"नहीं भाई, कोई दूसरे डाक्टर होते तो बात दूसरी थी किन्तु उनके सामने छिः।" कह कर कमला ने दाँतों से जीभ को दबाकर सिर हिलाया।

"क्यों उनसे तुझे किस बात का डर है?"

"डर नहीं भाई, उन्हें मैं ठीक अपना हाल ही न बता पाऊँगी। उनकी दोनों आँखों को तो देखती हो न? जब वह देखने लगते हैं तो सिर अपने आप झुक जाता है। बाप रे! उनके सामने कभी ऐसी

गन्दी और लज्जा की बात कही जा सकती है ?"

हेना ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी आँखों के सामने देवतोष का देवोपम चेहरा नाच उठा। उदारता से भरे उनके दो मोहक नेत्र ! कमला ठीक कहती है—सिर अपने आप ही झुक जाता है। यही इच्छा होती है कि उनके चरणों पर अपना सिर रख दे। 'अपना' कह कर कुछ भी न रह जाए। किसी अज्ञात वेदना ने हृदय में टीस दी। वह सींखचों के बाहर डूबते हुए दिन के रक्त रंजित आकाश की ओर मौन देखती रही।

"हेना दीदी," मीठी मुस्कान के साथ कमला ने पुकारा।

"क्या ?"

"एक बात कहूँ ? बुरा तो नहीं मानोगी ?"

हेना ने आँखें घुमायीं। उसके मुख को देखते हुए मृदु स्वर में बोली, "कहो न ? बुरा क्यों मानूँगी ?"

"तुम भूल कर रही हो हेना दीदी !"

कमला के हाथों में उसका हाथ काँप उठा। त्रस्त स्वर में वह बोली, "क्या माने ? कैसी भूल ?"

"मैं सब जानती हूँ दीदी। यह मत भूलो मैं भी तुम्हारी ही तरह लड़की हूँ।"

"तू क्या जानती है ? कितना जानती है ?"

"सब जानती हूँ। कई दिनों तक तुम उनके सामने नहीं गईं; उस समय उनकी हालत देखने लायक थी। मैं तो देखा करती थी उनके दोनों हाथ काम करते रहते थे और दोनों नेत्र तुमको ही खोजा करते थे। भला ऐसा दुःख देने और पाने से क्या लाभ ?"

"इसे तू नहीं समझेगी कमला।"

"खूब समझूँगी मैं। मैं कोई छोटी सी बच्ची नहीं हूँ। इसके अतिरिक्त····" हठात् कमला रुक गयी। कुछ देर शांत रहने के बाद वह बोली, "इस बात से मैं अनभिज्ञ भी तो नहीं भाई !" कमला

ने फिर हँसने की चेष्टा की। हेना की विस्मित दृष्टि उसके मुख पर गड़ी रही। कमला ने उसे देख कर फिर कहा, "तुमसे मैं कुछ न छिपाऊँगी दीदी, तुम मेरी सब बातें सुन सकती हो। लेकिन फिर किसी दिन। आज तो मैं तुम्हारी ही बातें सुनूँगी। बताओ उत्तर क्यों नहीं देतीं; तुम्हारे मार्ग में कहाँ कौन सी बाधा है?"

हेना ने इस पर भी जवाब नहीं दिया। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद हथेलियों को दबा कर कमला ने फिर प्रश्न किया, "क्या किसी और के बंधन में बँधी हो क्या?"

हेना ने मुस्करा कर कहा, "नहीं रे नहीं! अब भला किसके बंधन में पड़ूँगी?"

धीरे-धीरे करके उसके मुख की हँसी लुप्त हो गयी। अस्फुट स्वर में बोली, "मैं अपने आप में ही बँधी हूँ। केवल इस जेलखाने के काले सींखचों के बीच ही नहीं, मैं अपने जीवन के काले नागपाशों से भी बँधी हूँ—जिन्हें मैं पीछे छोड़ आयी हूँ। मैं जवाब ही क्या दे सकती हूँ?"

"क्या जानूँ भाई," मीठे स्वर में कमला बोली, "तुम्हारी यह सब बातें मैं नहीं समझ पातीं। मैं तो केवल इतना जानती हूँ कि जो दिन गुज़र गए हैं उनकी तरफ बार-बार देखने से क्या लाभ? जो गुज़र गया सो गुज़र गया। उन पर अब किसका जोर। और यदि कोई नया आमंत्रण मिला तो उसे वापस करने से क्या लाभ? किसकी चिन्ता है और किसके अभिमान की रक्षा का प्रश्न है? तुम्हारे मार्ग में देखने वाला तो कोई बैठा नहीं है।"

हेना चिबुक को हाथों पर रख कर मौन बैठी रही। कमला के प्रश्न का कोई भी जवाब नहीं दिया। केवल आखिरी बात सुन कर उसके अधरों पर फीकी सी मुस्कान फूट पड़ी। कमला ने फिर कहा, "आज हो या कल कभी न कभी इस जेल के बंधन से तुम मुक्त होगी। उसके बाद? जीवन भर यों ही डूबी रहोगी? तुम्हारी यह उम्र

यह रूप, यह प्राण और यह प्रेम सब वृथा हो जायगा ? ऐसा करके किसका क्या उपकार कर सकोगी वह भी तो सुनूँ ?"

"किन्तु तू जिस दृष्टि से जितनी बातें देख रही है वह सब तो मुझमें है नहीं, पगली ! मेरे पीछे जो है उस पर मैं पर्दा कैसे डाल सकती हूँ ? यह कैसे भूला जा सकता है कि मैं यहाँ किस राह से आयी ? मैं अगर भूल भी जाऊँ तो दुनिया नहीं भूलेगी और भूलने भी न देगी।"

"चूल्हे में जाय तुम्हारी यह दुनिया। जिसे भूलना है वही यदि भूल गया है तो बाकी सबको लेकर फिर तुम क्यों सोचती हो ?"

"इसीलिए तो और भी अधिक सोचने की बात है। इतना ही नहीं, भय भी है।" कहते-कहते हेना की आँखों और मुखमंडल पर जैसे किसी आतंक की छाया ने आ घेरा। उसने धीमे स्वर में कहा, "इसी से तो भागती फिर रही हूँ। पास भी नहीं जा पाती।"

कमला के चेहरे पर विस्मय फूट पड़ा। रुद्ध कण्ठ से उसने पूछा, "हेना दीदी, किसका भय ?"

"नहीं, नहीं, मेरे अपने लिए नहीं। भय उनके लिए है। आशंका मुझे उनके सम्मान और उनकी मर्यादा के लिए है। मेरी समझ से यह सोचना भी उनका अपमान करना है।"

कमला इसका कोई उत्तर न दे सकी। वह मौन, विस्मित और मुग्ध सी उसके नेत्रों की ओर देखने लगी। स्नेह एवं उत्कण्ठा से भरे हुए उन सुन्दर दोनों नेत्रों को देखती रही। हेना लज्जित हो उठी। जल्दी से अपने को सम्हाल कर सहज स्वर में बोली, "अच्छा मेरी बात तो जाने दो, पर तू यदि मेरी जगह पर होती तो ऐसा कर सकती थी ? इतनी बड़ी-बड़ी जो बातें बघार रही है सो तू क्या करती वही बता ?"

"मैं !" कमला हँस पड़ी, "मेरा क्या है ? कौन है ? मैं तो समाप्त हो चुकी दीदी ! मुझमें अब कुछ नहीं है। अगर ऐसा न होता और

तुम्हारी जगह पर मैं होती और हमारे जीवन में कोई आता तो क्या तुम सोचती हो कि तब मैं तुम्हारी तरह पीछे की ओर देख कर बड़ा-बड़ा निःश्वास फेंकती ? कभी नहीं ! लड़की होकर जन्मी हूँ। मुझे जो चीजें चाहिए—उसमें घर चाहिए, आश्रय चाहिए, तथा कोई एक ऐसा सहारा चाहिए जिसे पकड़ कर मैं खड़ी हो सकूँ और जिसका हाथ पकड़ कर चल सकूँ। उसके आने पर मैं मुँह फेर लेती ऐसी मूर्खता तो मैं कभी न करती।"

दुर्बल शरीर से एक साथ इतनी बातें कहने पर कमला हाँफने सी लगी। हेना ने भी बातों को आगे न बढ़ाया। केवल चुपचाप उसके कमज़ोर हाथों को धीरे-धीरे सहलाने लगी। इसी स्पर्श मात्र से जैसे उसने अनुभव किया कि इस रोग-जीर्ण वंचिता नारी के एकांत अन्तर की अति उग्र और गोपनीय कामना कदाचित चिरकाल तक अपूर्ण ही रहेगी। काफी समय खामोशी में कट गया। कमला की दशा भी अब ठीक हो गई। तब हेना ने स्नेह के साथ मधुर कण्ठ से कहा, "घर-परिवार बनाने की तेरी बड़ी कामना है, क्यों कमला ?"

"वाह, कामना होगी क्यों नहीं ?" कमला ने तत्काल उत्तर दिया, "घर-परिवार बनाने के लिए ही तो घर छोड़ा था और बाद में मिला यही कारागार।" वह कह कर हँस पड़ी।

हेना ने उस हँसी में साथ नहीं दिया। गंभीर निगाहों से वह सीखचों के बाहर देखती रही।

बूढ़ी बहुत कुछ ठीक हो रही थी। बुखार आना बन्द हो चुका था। खाँसी थी, किन्तु उसमें रक्तकण नहीं थे। वज़न बढ़ा था शरीर में कुछ शक्ति भी आ गयी थी। कभी-कभी चारपाई से उठ कर वह टहलने लगी थी। इस पर भी मौत का परवाना लेकर जिन नन्हें नन्हें महारथियों के दल ने उसके फुसफुस पर हमला किया था, कुछ ह

जाने पर भी उन्होंने अपना दखल नहीं छोड़ा था। डाक्टर यथावत् लड़ाई चला रहे थे। वे अब रोज न आकर बीच-बीच में आते और शत्रुओं के विरुद्ध 'सिरिंज' चलाया करते थे। हेना के साथ बहुधा भेंट न होती। उनके आने से पहले ही वह अस्पताल के सभी कामों को निपटा कर मस्सकत घर में चली जाती थी। किसी के हाथ से जाँता खींच कर मटर या अरहर दरने लगती तो कभी किसी नई लड़की को पकड़ कर उसे दाल पछोड़ना सिखाती। सुशीला झुँझला भी उठती, "तू यहाँ क्या कर रही है? भाग! जा, अपना काम कर।"

"हूँ, बहुत बड़ा काम है न मेरा! उसे कभी निपटा आयी।"

किसी-किसी दिन आने पर जाँता न चला कर सुशीला की नातिन के लिए कच्चो सिलाई करती या उसके नाती को पहनने के लिए स्वेटर बुनने बैठ जाती।

उस दिन भी सुबह-सुबह आठ बजे से पहले ही हेना ने अस्पताल के सभी कामों को निपटा दिया। मोना की माँ के सीने पर तेल की मालिश कर रही थी। ठीक उसी समय हाँफती हुई सुशीला आयी और बोली, "अपना टिकट तो दे देना!"

"टिकट क्या होगा?"

"दे न? वह बोड जायगा।"

"तो उससे क्या होगा?"

"बोड! बोड नहीं सुना है? भला उसे क्यों सुनेगी? छोटे जेल में थी न। वहाँ तो यह सब रहा न होगा। केवल हमारे सेन्टर जेल में ही बोड बैठता है।"

उत्साह में सुशीला ने जो कभी नहीं किया था वही आज किया। स्कर्ट को चढ़ा कर यथासंभव छूत से बचाते हुए चौखठ पार करके वह बूढ़ी के कमरे में घुस पड़ी।

हेना बोली, "बैठो न इस चेयर पर।"

इस बात का जवाब न देकर खड़ी-खड़ी ही हाथ चलाती हुई

जमादारनी ने समझाना शुरू किया बोर्ड क्या है। "कलकत्ते से जेनरल साहेब आते हैं। यहाँ से कलक्टर साहेब, जज साहेब और कई लोग आते हैं। हमारे साहेब भी रहते हैं। सब मिलकर टिकट और सब कागज़-पत्र देख कर किसी-किसी कैदी को मुक्ति देते हैं।"

"मियाद खत्म होने से पहले ही?" हेना ने विस्मय के साथ प्रश्न किया।

"पहले क्या? बहुत पहले ही। बहुत से लोगों को आधी मियाद भी जेल में नहीं सड़ना पड़ा और बाहर कर दिए गए।"

बूढ़ी उत्सुकता और कौतूहल के साथ जमादारिन से बोर्ड के मर्म की व्याख्या सुन रही थी। साग्रह बोल उठी, "हाँ माँ, सभी को छोड़ेगें तो मैं भी छोड़ी जाऊँगी?"

"हाँ, भला तुम क्यों न छोड़ी जाओगी।" मुँह बना कर कटाक्ष करती हुए सुशीला ने कहा, "आराम से लेटी पड़ी रहती हो और बढ़िया-बढ़िया अण्डा, गोश्त, दूध और मक्खन का श्राद्ध करती हो। सरकार का यह बहुत बड़ा उपकार ही तो कर रही हो न तुम। तुम्हें भला वह न छोड़ेगी तो किसे छोड़ेगी?"

मोना की माँ बहुत लज्जित हुई। सूखा मुँह काला पड़ गया। एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर चुपचाप पड़ी रही। हेना को यह अच्छा न लगा, बूढ़ी के साथ इस प्रकार के कटाक्षपूर्ण व्यवहार के लिए वह दुखित भी हुई। किन्तु कैदी के सामने जमादारिन के आचरण-व्यवहार को लेकर कुछ कहा भी नहीं जा सकता। पल भर में ही सुशीला ने पिछली बात का सिलसिला पकड़ कर फिर कहना शुरू किया, "सीधी बात है न! जो लम्बी मियाद के कैदी हैं, बराबर पूरा काम करते हैं, अच्छी तरह रहते हैं, टिकट पर एक भी खिलाफ़ रिपोर्ट नहीं है उन्हें ही केवल यह सुविधा है। इसमें भी कुछ लोग बाद कर दिए जाते हैं, जो डकैती, जाल-फरेब, तथा बलात्कार आदि केस में सजा पाते हैं, वे बोर्ड के सामने नहीं जा सकते।"

हेना अन्यमनस्क हो उठी थी। आखिरी बात ही उसके कानों में गयी थी—वह तुरंत ही बोल उठी, "तब मैं क्यों जाऊँगी?"

"बात सुनो! तू क्या डकैत है या जालिया...." इस बात को पूरा न करके सुशीला ने फुसफुसा कर कहा, "डेपुटी बाबू ने तो तुझे अलग ही कर दिया था। हमारे वार्ड से अकेली फूलबानों का नाम छोड़ कर और किसी का नाम नहीं दिया था। बाद में जेलर बाबू ने हुकुम दिया कि हेना का भी टिकट लाना होगा।"

इतना बड़ा चौंका देने वाला शुभ सवांद गुप्त रूप से हेना को सुना कर उससे कम से कम कुछ कृतज्ञता की आशा सुशीला कर रही थी। मुँह से भले ही कुछ न कहे, पर सामने मुक्ति की संभावना से उसका मुख चमक उठेगा इसमें कोई सन्देह नहीं। यह तो स्वाभाविक ही है। किन्तु यह क्या? उत्साह का कोई भी चिन्ह वहाँ नहीं दिखायी पड़ा। हेना को वह सचमुच स्नेह करती थी। इससे सुशीला विस्मित ही नहीं, व्यथित भी हुई। हेना उठकर गयी और अपना टिकट लाकर उसके हाथों में दे दिया। वह चुपचाप यही सोचती हुई चली कि संसार में दुर्बोध यदि कुछ है तो इन पढ़ी-लिखी कम उम्र की लड़कियों का मन-मिजाज़।

सुशीला का स्कर्ट जैकेट पहिने हुए विशाल शरीर धीरे-धीरे झाड़ियों के पीछे अदृश्य हो गया। हेना दरवाज़े पर ही मौन खड़ी रही। उसके अन्तर में जमादारिन के उस 'बोड' और संभावित मुक्ति का आतंक छाया हुआ था। उसे लगा यह तो मुक्ति नहीं, अन्तहीन शून्यता है। उस तरफ देखने पर उसे केवल पाताल सा खड्ड दिखायी पड़ रहा था—जहाँ न कोई आश्रय है और न अवलम्ब। जेल गेट के उस पार के संसार में सभी द्वार जैसे उसके लिए बन्द हो चुके हैं। खुला है तो केवल प्रज्वलित अग्नि का मार्ग। उसके दाहिने-बाएँ हाथ बढ़ाने पर न कोई स्नेहनीड़ है और न है कोई उसके लिए आँचल बिछाकर प्रतीक्षा ही करने वाला। उससे कहीं अधिक अपनत्व

उसे प्राचीरों से घिरे इस 'जनाने फाटक' में मिल रहा था। वह सोचने लगी, 'क्या यहाँ इन नींबू के पेड़ों की छाया में इसी तरह स्वच्छन्द, निर्विवाद जीवन क्या नहीं काटा जा सकता ?' यदि ऐसा संभव हो सके तो उससे बढ़कर और दूसरी कोई कामना उसको नहीं है। किन्तु यह बात तो किसी से कहीं नहीं जा सकती। कौन विश्वास करेगा ? साथिनें समझेंगी नहीं,—कोई हँस कर उड़ा देंगीं, कोई मुँह बिचका कर कहेंगी 'फालतू बकती है।' सुशीला उसको चाहती है और उससे कहने पर उसे केवल फटकार ही मिलेगी। और जेलर साहेब से ? वह निश्चय ही दुःखित होंगे। हो सकता है वे यह भी सोचें कि यह उसकी ज़िद है, केवल अवज्ञा करती है और मिथ्या मर्यादा का धुआँ खड़ा कर स्नेह के दान को ठुकराती है। प्रकारान्तर से कहा जा सकता है 'जेल काटने आयी हूँ, काटने दो। आप सबकी दया नहीं चाहती, और न कोई एहसान ही चाहती हूँ।' नहीं, नहीं, वह वहाँ तक जा नहीं सकती। किन्तु क्या 'उनसे' नहीं कहा जा सकता ? हो सकता है वह उसके मर्म की वेदना को समझ सकें। लेकिन उनसे कहेगी कैसे ? छिः क्या-क्या सोचेंगे वह ?

इसी समय पेड़ों के पीछे से तेज़ी के साथ फूलबानो आयी। चेहरे पर हँसी दौड़ रही थी। हेना ने झटपट अपने को सम्हाला और आगे बढ़कर फूलबानो का हाथ पकड़ कहा, "देख रही हूँ आज तुम बहुत खुश हो।"

"खुश क्यों न होऊँगी ? अपने दिल से पूछो। एक साथ ही तो दोनों छूटेंगीं।"

"ठीक है; तो तुम्हारे ही घर पर चल कर रहूँगी।"

"यह तो बड़े भाग्य की बात होगी दीदी ! किन्तु हम लोगों का तो बहुत गरीब घर है।...."

"तो क्या मैं बहुत बड़ी हूँ ?" कहकर हेना खिलखिलाकर हँस पड़ी।

फूलबानो भी हँस पड़ी। फिर हठात् दबे स्वर में बोली, "अच्छा! हम लोगों को कब छोड़ा जायगा? दोनों बच्चों को बहुत दिनों से नहीं देखा है। मन बहुत तड़प रहा है।"

"केवल बच्चों के लिए? क्यों उनके बाप के लिए नहीं?"

फूलबानो के चेहरे पर एक फीकी हँसी फूट पड़ी और तुरन्त ही वह मिट भी गयी। भरे हुए कण्ठ से वह बोली, "पता नही वहाँ जाकर क्या देखूँगी। इतने दिन हो गए कौन जाने किसी से निकाह ही कर लिया हो। देश में जवान लड़कियों की कमी तो है नहीं। हमारी किस्मत में तो अब वही झाड़ू लाठी ही है।"

हेना सान्त्वना देती हुई बोली, "नहीं, नहीं तुम्हारा यह सोचना गलत है, फूलबानो! क्या ऐसे ही निकाह हो जाता है?"

"करने से रोक ही कौन सकता है? उन लोगों के लिए तो हम लोग हाँडियों की तरह ही हैं—पुरानी होने पर उसे फेंक कर नई ले आवेंगे।"

"यदि ऐसा भी हो तो तुमको लाठी-झाड़ू खाकर दुःख उठाने की क्या जरूरत? बच्चों का हाथ पकड़कर चल देना; और किसी नए आदमी का घर बसाना। तुम्हारे समाज में यह बुरा भी तो नहीं मानते। कोई कानूनी बाधा भी नहीं है।"

फूलबानो ने निःश्वास फेंककर कहा, "बाधा न होने से ही क्या सब कुछ किया जा सकता है दीदी? वह पुरुष हैं, वे कर सकते हैं; पर हम नहीं कर सकतीं।"

फूलबानो को वार्ड में वापस जाने पर हेना के हृदय में रह-रहकर उसकी आखिरी बात चक्कर लगाने लगी कि—'वे कर सकते हैं, हम नहीं कर सकतीं।' 'क्यों नहीं कर सकतीं?' हेना ने अपने आपसे प्रश्न किया। अबला होने के कारण? असहाय होने से? देखा तो यही जाता है। किन्तु उसका मूल कारण जुड़ा है नारी नामक विधाता की इस अजब सृष्टि, एंव उसकी प्रकृति और उसके हाड़-मांस के साथ।

हो सकता है कभी ऐसा भी हो कि यह सब बाहरी अक्षमताएँ न रह जाएँ। अर्थ में, सामर्थ्य में, ज्ञान में, गरिमा में, सामाजिक प्रतिष्ठा में वह पुरुष के समान हो जाय। तब हो सकता है फूलबानो की तरह निःश्वास फेंक कर उसे न कहना पड़े कि 'वह कर सकते हैं, हम नहीं कर सकतीं।' कितना ही प्रेम क्यों न हो स्वामी के सामने स्त्री उसकी कोमल सहचरी ही है किन्तु स्त्री के सामने उसका स्वामी मर्म सहचर है। एक दूसरे को जब छोड़ देते हैं, पुरुष के नेत्रों से जल झरने लगता है और स्त्री का हृदय फटकर रक्त झरता है। पुरुष का प्रेम उसके लिए आत्मदान और नारी का प्रेम उसके लिए आत्म-विलोप है। अपने को भूल कर फूलबानो जैसी औरतें बहुत दिनों से रो रही हैं और बहुत दिनों तक रोती रहेंगी।

३

रात आकर जब दिन से मिलती है, जेल में वह समय अत्यन्त स्पष्ट रहता है। सन्ध्या धीरे-धीरे रात से वहाँ नहीं मिलती; अचानक रात आकर वह उसे प्रणाम करती है। एक की विदाई जिस तरह अचानक होती है, उसी प्रकार दूसरे का आगमन भी आकस्मिक होता है।

दिन का रूटीन समाप्त हो चुका है। जेल के भीतर की सड़कों पर चारों तरफ लोगों की चिल्ल-पों पुकार और भाग दौड़ शुरू हो गयी। कुछ देर में ही आतिशबाज़ी तरह यह सब समाप्त हो गया। सड़कें सूनीं, मैदान निस्तब्ध और रास्ते जनशून्य हो गए। विशाल वर्कशाप आदि प्रेतपुरी की तरह खड़े हैं। रसोईघर, भोजनालय, और नहानघर भी साँय-साँय कर रहा है। सन्ध्या का कोलाहल समाप्त होकर रात्रि की निस्तब्धता उतर आयी है।

लम्बी बैरकों के भीतर से किसी-किसी के गुनगुनाने के स्वर सुनाई पड़ते हैं। निर्जन रास्तों पर इधर-उधर लाठियों को पटकते हुए रात के सिपाहियों का पहरा शुरू हो गया है। बीच-बीच में वे आवाज़ भी लगा देते हैं, 'आहिस्ते'। कोई-कोई मुँह बंद किए हुए ही हुंकार लगा देता। साथ ही साथ गुनगुनाने का स्वर भी बन्द हो जाता। नीरवता का साम्राज्य छा जाता है। बीच-बीच में सिपाही बाबू की तेज-गरज ही सुनायी पड़ती है।

किन्तु आफिस की शक्ल ही दूसरी है। जेलर और सुपर के कमरे में ताला लटक रहा है। गेट से भीतर घुसते ही कटघरेनुमा बरामदे में जहाँ पर डेपुटी और दूसरे क्लर्क बाबू बैठे हैं वहाँ यथारीति चहल-पहल है। तेज बिजली की बत्तियों के नीचे हर टेबुल पर तरह-तरह के आकार के रजिस्टर खुले रखे हैं। उनके पास जो जमे बैठे हैं, उनके हाथ में कलम, मुँह में सिगरेट है और बीच-बीच में उनमें आपस में ही कोई न कोई चुटकुला छिड़ जाता है। बाहर के लौह कपाट को पार करके भीतर जो बड़ा लकड़ी का गेट है, उसकी छाती पर रात की तरह ताला पड़ा है। आवश्यकता पड़ने पर बगल का छोटा दरवाज़ा जिसे वीकट गेट कहते हैं—खुल जायगा। वह दरवाज़ा देखने में जरूर छोटा है पर उसका प्रताप छोटा नहीं है। उसके खुलने और बन्द होने की ध्वनि के साथ ही पूरा आफिस सजग हो उठता है।

मजलिस खूब जमी थी। उसी समय वीकट गेट खुलने की ध्वनि हुई। उसमें से कई लोग निकले। यद्यपि सभी प्रत्याशित व्यक्ति थे। गले में स्टेथेस्कोप डाले हुए डाक्टर देवतोष घोष, फिर उनके पीछे कम्पाउन्डर निकले। कुछ बाबुओं के चेहरे पर नीरव हँसी खिल उठी। भाटे की तरह बातचीत दब गयी। सामने का गेट खुलने और बन्द होने का झन्कार सुनने के बाद ही वे इत्मीनान से बैठ गए। आमदनी दफ्तर के सादिक हुस्सैन ने मौन भंग किया और बोले, "ऐसा लगता है कि चूहे बहुत आ गए हैं!"

कोने की तरफ से किसी ने उनकी बातों को सहारा दिया, "लेकिन ऐसा मालूम होता है कि उनकी दाल नहीं गल पा रही है।"

"अरे नहीं, नहीं। सब ठीक ही है। अभी तो मान-अभिमान चल रहा है—इसके बात ही तो प्रणय सम्मेलन होगा। वैष्णव कविता नहीं पढ़ी है?" गजेन बाबू ने उत्तर दिया।

दो नम्बर के डेपुटी वरेन राय बोले, "उनके विवाह की शीघ्र व्यवस्था करो दादा। नहीं तो वह कहीं कोई बात न कर बैठे।"

सीनियर डेपुटी रीलीज़ डायरी लिख रहे थे। रजिस्टर पर से बगैर मुह हटाए हुए ही बोले, "क्या आपके हाथ में कोई जानी-पहचानी लड़की है?"

"माफ करो, होने पर भी उसके हाथ में देने से पहले ही मैं उस लड़की को पानी में डूबो देने की राय देता। भले आदमी का टेस्ट भी क्या है? एक कनफर्मड क्रीमिनल जिसे रास्ते की लड़की ही कह सकते हैं। उसको लेकर·······छिः-छिः तू एक डाक्टर है, पढ़ा-लिखा सरकारी काम करता है, वंश की एक मर्यादा है।"

गजेन बाबू बोले, "अरे महाशय, इसका नाम है लव, कवि लोग इसे 'प्रेम तृषा' कहते हैं—इसमें पड़ने पर आदमी नाली की कींच को उठाकर मुँह में लगाता है, फिर तो यह—"

"नाली को झरना में बदलने में कितनी देर लगती है।" बीच में ही सीनियर बोल उठे, "आप लोग जानते तो हैं नहीं यही तो चेष्टा हो रही है।"

बात किसी की समझ में नहीं आयी। सभी के जिज्ञासु नेत्र उठ गए। सीनियर ने समझाते हुए फिर कहा, "एडवायज़री बोर्ड में नाम भेजा गया है। मुक्त होने पर कौन उसे पा सकता है? कैदी के चेहरे पर तो कुछ लिखा नहीं रहता।"

"क्या सोचते हैं बोर्ड छोड़ देगा?" वरेन बाबू ने प्रश्न किया।

"मैं तो समझता हूँ, नहीं। और कहने पर भी गवर्नमेंट सुनेगी कि नहीं इसमें भी सन्देह है। इस तरह का हीनियस आफेन्स! फिर जेल का रिकार्ड भी अच्छा नहीं है। प्रेसीडेन्सी से डिस्ट्रिक्ट जेल में भेज दी गयी। वहाँ भी कई पनिशमेंट हैं।"

"किन्तु यहाँ तो वह अच्छी तरह से है—उसके खिलाफ तो कोई रिपोर्ट नहीं हुई।" कोई बोल उठा।

"इसका कारण भी सुशीला जैसी बुद्धू औरत है। सभ लड़कियाँ उसके कन्धे पर चढ़ कर नाचती हैं, वह किसी से कुछ नहीं कहती। वहाँ की फीमेल वार्डर कड़ी है। उसके साथ तो जरा भी नहीं बनती थी। तभी तो यहाँ भेज दी गयी।"

"किस जेल की?"

"फरीदपुर की।"

"फरीदपुर! हो हो! वहाँ की जमदारिन भी एक ही विचित्र प्राणी है।"

"कैसी?" सुनने वालों को कौतुहल हुआ।

गजेन बाबू ने कहा, "डियुटी पर आते ही मजे से बिछाना बिछा कर लेट जाती है। उसके बाद उसकी अंग सेवा शुरू होती है। एक साथ दो लड़कियाँ रहती हैं। एक पैर दबाती है तो दूसरी सिर। उसके सामने कोई बहाना किसी का नहीं चलता। कम उम्र हो और देखने-सुनने में अच्छी होना चाहिए बस। इसके अतिरिक्त पसंद की लड़की पाकर...."

"कहिए न? क्यों रुक गए?" एक कम उम्र के जैसा क्लर्क ने आगे बढ़ कर साग्रह पूछा।

"यह सब बातें यहाँ क्या कहा जाय? दादा बैठे हैं?"

"दादा के लिए बाकी क्या छोड़ दिया है वह भी सुनाओ?" सीनियर ने पूछा, "केवल फरीदपुर में ही क्यों, यह सब प्रेम लीला तो सभी जेल में है। पुरुष-पुरुष में जैसे चलता है, औरतों-औरतों में भी वैसा ही होता है। जमादार-जमादारिनें भी अपना हिस्सा उसमें लगाती ही हैं।"

सादिक ने कहा, "तब तो ऐसा लगता है कि इसी तरह से कुछ हुआ होगा। जमादारिन को सुविधा नहीं मिली होगी, यह भी तो कम नहीं है।"

"कम नहीं, तुम कैसे जानते हो? कभी परख-बरख कर देखा है

क्या ?" अर्थपूर्ण दृष्टि से देखते हुए गजेन बाबू बोले।

"नहीं दादा ! भला मैं ऐसा सुयोग वहाँ पा सकता था ? सुयोग मिलता तो सच कहने का साहस ही न होता। फिर जहाँ पर 'रूई कातला' जैसे घायल हो चुके हैं वहाँ मेरी क्या बिसात है।"

"मैं अब चल रहा हूँ दादा।" बातों के बीच में ही वरेन बाबू अचानक उठ खड़े हुए और बोले, "थोड़ा बाहर जाऊँगा, गुडनाइट !"

रजिस्टर में आँखें गड़ाए हुए सीनियर बोले, "गुडनाइट।"

सादिक हुस्सैन को सभी ने घेर लिया। गजेन बाबू ने कहा, "तुम तो बड़े जबर्दस्त आदमी हो। एक तो हाथ पर हाथ धरे बैठे हो। वह हेयाँली-टेयाँली को छोड़ कर सीधी बँगला में बताओ कातला क्या है ?"

सादिक एकाएक आतंकित हो उठा। "सर्वनाश ! यह तो बिल्कुल स्ट्रिक्टली कान्फिडेन्शियल बात है। खुलने पर तो नौकरी भी चली जायगी।"

"अच्छा नाम-धाम रहने दो। बात तो बताओ।"

"बात कुछ भी नहीं है—इस लड़की को यहाँ आये शायद दो-तीन दिन हुए थे। किसी काम से उसका टिकट हमारे टेबुल पर आया था। कातला की नज़र उस पर पड़ गयी। वह उसका नाम ही पढ़ते रह गए। उस पर से उम्र ने तो उन पर गज़ब ही ढा दिया। मैं समझ गया कि कातला बाबू की नज़र में वह चढ़ गयी है। मैं भीतर ही भीतर खबर रखने लगा। जो सोचा था वही निकला। एक दिन शाम को कुछ इधर-उधर करके वह फीमेल वार्ड में जाकर हाजिर हुए। कायदे से सजे-सवँरे हुए। सुशीला उस समय वहाँ नहीं थी। छोटी जमादारिन रानीबाला की वहाँ ड्यूटी थी। उसी के साथ मालूम होता है कोई साँठ-गाँठ पहले से ही हो गयी थी। हेना को बुलाया गया गेट खुलते ही पर्दे के पास।

"वह जगह भी खूब है—उन लोगों की यह बातें सुनायी पड़ीं।

"हेना के आते ही रानीबाला खिसकने लगी—पर उसने रोक कर कहा, 'आप अभी मत जाइए।' बात का टोन अनुरोधपूर्ण नहीं हुक्म की तरह था। रानीबाला को रुकना पड़ा। कातला भी उसे हटाने का साहस न कर सके। बहुत फारवर्ड लड़की है। सामने देख कर वह बोली, 'मुझे आपने बुलाया था क्या?' कातला नर्वस हो गए। हकलाते हुए बोले, 'तुम्हें एक बात बताने आया था। पता लगाने पर मालूम हुआ कि तुम्हारा केस झूठा है। वकील से भी मैंने राय ली है। मोटा तौर पर कई एक फैक्ट्स जानने पर तुम्हारी मुक्ति की चेष्टा करूँगा।'

'तत्काल उन्हें उत्तर मिला 'धन्यवाद! केस झूठा नहीं है और मुझे मुक्ति दिलाने की भी जरूरत नहीं है।'

"कातला और भी नर्वस हो गए। हिम्मत करके किसी तरह बोले, 'खैर हटाओ, तुम्हें दाल दरने के कठिन काम की जगह पर कोई हल्का-फुल्का काम दिया जाए इसके लिए साहब से कहूँगा। सोचता हूँ....'

'जरूरत पड़ने पर मैं खुद कह सकती हूँ आपकी जरूरत नहीं।' बात काटकर बीच में ही उसने जवाब दिया।

"आखिर में कातला वापस हुए। किन्तु बात यहीं खत्म नहीं हुई, फिर एक दिन लॉक ट्राई करने के बहाने वे वहाँ पहुँचे। रविवार को दोपहर का वक्त था। उसी दीवाल की ओट में वे प्रतीक्षा करने लगे। खबर मिलने पर हेना बाहर आयी। नमस्कार करके बोली, 'वहाँ क्यों खड़े हैं, इधर आइए न?' उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। वह उन्हें वर्कशेड के बरामदे में ले जाकर एक मोढ़े पर बैठाया। वर्कशेड का काम समाप्त हो चुका था, सभी लड़कियाँ वार्ड में घूम रही थीं। आस-पास कोई भी न था। कातला बाबू मन-ही-मन गद्गद् हो रहे थे। हेना ने पूछा, 'कहिए कैसे कष्ट किया?'

"सेंट लगे हुए रेशमी रूमाल को झलते हुए कातला बाबू बोले, 'तुम्हें देखता हूँ तो ऐसा लगता है कि लड़की कैदिनों की पोशाक

बदलने की जरूरत है। इतना मोटा कपड़ा उस पर से इतनी बेढ़ंगी कटाई-छटाई, इस विषय में मैं लिखूँगा। कम-से-कम तुम्हारी जैसी सुशिक्षिता और भद्र परिवार की लड़की को तो ऐसा कपड़ा नहीं देना चाहिए।'

"बीच में ही हेना बोल उठी, 'आप हमें क्या भद्र घर की लड़की समझते हैं?'

"कातला प्रतिवाद के स्वर में बोले, 'नहीं, सभी को नहीं, पर तुमको तो समझता ही हूँ।'

"हेना ने शान्त भाव से गम्भीर-स्वर में कहा, 'किन्तु किसी और अपरिचित भद्र घर की लड़की से 'आप' न कह कर यदि 'तुम' कह कर बात शुरू करते हो तो आपको किस तरह वापस होना पड़ता, जानते हैं?'

"कातला की आँखों के सामने जैसे अन्धेरा छा गया। उत्तर भी हेना ने ही दे दिया, 'आपको अपमानित होना पड़ता।' और नमस्कार कह कर तेजी से वार्ड में चली गयी।"

सादिक की बात समाप्त होते-होते सभी खिलखिला कर हँस पड़े और उसकी पीठ पर सभी शाबासी देने लगे। कुछ क्षणों में जब हल्ला-गुल्ला शांत हुआ तब सीनियर ने गंभीर स्वर में पूछा, "क्या यह सरस कहानी सादिक-साहेब की लेटेस्ट रचना है?"

"आपका पैर छू कर कह सकता हूँ दादा, कि यह सारी बातें बिल्कुल सही और सच्ची हैं। इसमें झूठ या कल्पना कुछ भी नहीं है।"

"पर यह सब बातें तुम्हें कैसे मालूम हुई?"

"बी. क्लास की मीना नाम की एक लड़की उस दिन मुक्त हुई थी न, वह प्रायः जेल में आती है। उसी से मैंने सुना था। रानी, बाला भी इसे स्वीकार करती है।"

"तो यह कहो," सिर झुकाए-झुकाए ही सीनियर बोले, "अब मैं

समझा की डाक्टर के ऊपर वरेन बाबू इतने नाराज़ क्यों हैं।"

"और तभी तो उन्हें अंगूर खट्टे लगे?" गजेन बाबू ने भी साथ दिया।

कमरा एक बार फिर ठहाके से भर उठा।

यह कहानी जिस समय की है उस समय भी सब जेलों में कैदियों के लिए एक लायब्रेरी थी। किताबें उसमें जो रहतीं उनमें दो-चार धर्मग्रन्थों को छोड़ कर अधिकतर इतने निम्न स्तर की होती थीं कि वह सभी के पढ़ने लायक भी न रहतीं। उस जेल की लायब्रेरी का कैटलाग लाकर एक बार हेना ने उलट-पलट कर देखा था। भूत-प्रेत, जिन्नों और परियों की कहानियाँ, तीन आना सीरीज़ की जीवनियाँ अथवा तृतीय श्रेणी के एडवेंचरों की किताबों से वह भरा था। कुछ किताबें उसमें ऐसी थीं जिन्हें वह बचपन में ही पढ़ चुकी थी और कुछ ऐसी भी थीं जो उसकी समझ के बाहर की थीं। किताबें सभी बिल्कुल नई थीं। जेलखाने की हालत उस समय ठीक नहीं थी। उसी ने एक दिन खुद ही सुपर साहेब की साप्ताहिक फाइल में अपनी बात पेश कर दी। वह जेलर साहेब का मुँह देखने लगे और जेलर साहेब पानडब्बा की ओर देखने लगे। इस साल किताबों की खरीद का भार उन्हीं पर पड़ा था और उन्होंने ही बाजारू किस्म के किस्से-कहानियों को खरीद कर आलमारी को भर दिया था। हेना के आरोप के उत्तर में ऊँची हँसी के बाद वे बोले, "जेल के भीतर ज्यादातर निरक्षर लोग हैं, बाकी प्रायः सभी देहाती किसान। वे भी नाम मात्र को ही पढ़ना लिखना जानते हैं। उनकी जरूरत को ही देख कर हम लोग किताबें खरीदते हैं। दो-चार शिक्षितों या शिक्षिताओं के हितों को देखकर तो यहाँ नहीं चला जा सकता।"

हेना ने बात खत्म होते ही उन्होंने तत्काल उत्तर दिया, "जो निरक्षर

दूँगा। इतना कह कर सभी किताबें हमारे हाथ से वापस ले लीं। आज फिर जाने पर यही बण्डल दिया। लोग ठीक ही कहते हैं कि डाक्टर बाबू का दिमाग भी विचित्र है।"

है भी ऐसा ही। किन्तु इस 'विचित्रता' के पीछे और भी कुछ है जिसे सुशीला नहीं जानती—पर हेना के सामने यह अस्पष्ट नहीं है। उसे याद हो आया देवतोष की वही चिठ्ठी—"मेरी तरफ से तुम्हें कोई भय नहीं। मैंने स्वयं ही अपने को तुम्हारे रास्ते से हटा लिया है।" पीछे हेना के हृदय में किसी कोने में उसकी अपनी 'प्रियवस्तु' का रूप लेकर 'भय' आता दिखायी पड़ा था। पीछे उसका सन्देह जागा, यह तो अपने को खींचना नहीं हुआ वरन् कौशल से अपने को और भी फैला दिया है। उनकी यह किताबें आयीं, किन्तु वह उनके पास से नहीं। उन्होंने अपने हाथों से भी इन्हें कहीं स्पर्श भी नहीं किया है—उलट-पलट कर किताबों को हेना ने देखा। इनके किसी भी पन्ने पर रोशनाई का थोड़ा सा भी दाग नहीं था। क्या दोष होता यदि पहले पन्ने के बीच में कहीं उसका छोटा-सा नाम लिखा होता और उसके नीचे सम्हाल कर उनका हस्ताक्षर होता—देवतोष। संसार में किसी का क्या नुकसान होता? उसके मन में यह बातें चक्कर लगाने लगीं। क्षण भर बाद उसका मधुर बंधन टूट गया। अपनी स्पर्धा को देख कर हेना को आश्चर्य हुआ। उसने अपने को सम्हाला और फिर अपने को शासन के दृढ़ बंधन की ओर लौटा लायी।

बूढ़ी कमरे में नहीं थी। जँगले के पास स्टूल को खींचकर किताब के प्रथम खण्ड को खोल कर वह बैठ गयी। उसने अपने को कवि-गुरु की इस अनुपम रचना में—जिसके लिए उसका मन-प्राण बहुत दिनों से तृषित था—डूबो दिया। उसके बाद एक बार उसने अनुभव किया कि किताबों के अक्षर उसकी आँखों के सामने से मिट गए हैं। मन उसके कानों में कह रहा था न वहाँ कभी कलम चली थी और न वहाँ रोशनाई का चिन्ह है। इसी सादे कागज़ पर अदृश्य लिपि

में उन्होंने जो कुछ लिख दिया है—उसका प्रत्येक अक्षर उसके सामने स्पष्ट है। दिखाई न पड़ते हुए भी वह दृश्यमान हैं, सुनाई न पड़ते हुए भी वह सुरमय हैं।

उसने फिर किताब को परम श्रद्धा के साथ उठा कर मस्तक पर लगा लिया और फिर किसी गंभीर आवेग के साथ उसे सीने से कस कर चिपका लिया।

—:०:—

४

बूढ़ी की हालत ठीक होते ही उसके दोनों पुराने नशे फिर जाग उठे—एक जगह से दूसरे जगह पर बैठ कर अड्डा मारना और तम्बाकू खाना। पहले के लिए उसे साधारण वार्ड में जाना पड़ता और दूसरे के लिए चाहिए रानीबाला का अनुग्रह। इस दाक्षिण्य-लाभ के लिए कुछ दक्षिणा की जरूरत पड़ती। इसकी व्यवस्था के लिए बूढ़ी का गोपन सञ्चय अभी तक खत्म नहीं हुआ था। इधर रह-रह कर वह हेना से छुट्टी माँगती और उसे मंजूर भी करा लेती। असली बात से हेना अपरिचित न थी। बीच-बीच में वह टोकती भी कि 'बूढ़ी हो गयी हो अब तो तुमको इस बुरे नशे को छोड़ देना चाहिए।' पोपले मुँह से बूढ़ी हँसती जैसे वह आकाश से गिर पड़ी हो। फिर कहती, 'क्या कहती हो दीदी रानी, मैं तुम्हारी क़सम खाकर कहती हूँ कि नशा-टशा तो मैंने कभी का छोड़ दिया है। अब वह सब खाक-पत्थर नहीं खाती। वह बेचारी काली की माँ बड़ी भली औरत है। उसी के पास जाती हूँ। दो-चार सुख-दुःख की बातें वह कहती है और मैं भी कहती-सुनती हूँ। जरा मन बहल जाता है, और क्या ?'

हेना के साथ बूढ़ी का विचित्र संयोग था। रोगशय्या पर जब पड़ी थी तब वह माँ कहती थी और स्वस्थ होने पर वह दीदी रानी कहने लगी थी।

आज भी वह दोपहर ही से निकली थी। हेना अन्यमनस्क सी

कुछ सिलाई का काम लेकर उसी में डूबी हुई थी। सारा दिन कब बीत गया हेना को पता ही न लगा। एकाएक बरसाती हवा के लगते ही सीखचों के बाहर उसने देखा—आकाश में काले-काले बादल छा गए हैं। पानी गिरने ही वाला है। बूढ़ी के लिए चिन्ता हुई। सीने की ख़राबी अभी तक ठीक नहीं हुई थी। कहीं ठण्डक लग जायगी तो फिर मरने लगेगी। देखते ही देखते पानी की बूँदें पड़ने लगीं। बूढ़ी की खोज में वह जाय कि न जाय अभी यह सोच ही रही थी कि इसी समय दरवाज़े पर किसी के आने की आहट हुई। हेना ने काम पर ही नज़र गड़ाए हुए कहा, "हाँ ठीक है भीगो, अब अगर पड़ीं तो देखभाल नहीं करूँगी, कहे देती हूँ।"

"नहीं देखोगी तो कहाँ जाऊँगी?"

हेना एकाएक चौंक पड़ी—यह स्वर बूढ़ी के नहीं कमला के थे। उसने विस्मय से पूछा, "ओ माँ, तू, इस पानी में एकाएक कैसे?"

"क्या करती तुम तो कोई खोज-खबर लेतीं नहीं, इसी से मैं ही आ गयी।" कमला ने उत्तर दिया।

"खोज-खबर लेने से भी क्या लाभ?" हेना ने कटाक्ष किया, "मेरी बात तो तू सुनेगी नहीं। डाक्टर आकर चले भी गए। एक बार उनसे मिली भी नहीं।"

"वाह! मैं तो ठीक भी हो गयी; यह देखो न।" कह कर कमला ने अपना दोनों हाथ उसकी तरफ आगे बढ़ा दिया।

हेना एक तिरछी नज़र उस पर डाल कर बोली, "क्या कहना है, अच्छे होने का क्या यही एक नमूना है?"

"अच्छा, हटाओ इन सब बातों को।" हेना की खाट पर बैठते हुए कमला ने कहा, "तुम अपनी इस किताब से कोई कहानी-वहानी पढ़ कर सुनाओ न?"

हेना ने कपड़े में सुई को खोंस कर कहा, "नहीं आज तो मैं तुम्हारी ही कहानी सुनूँगी।"

"हमारी कहानी ?"

"हाँ, हाँ तुम्हारी ही अपनी कहानी। उसी दिन तो तुमने कहा था फिर कभी सुनाऊँगी।"

"उ-उहूँ! ठीक ही तो कहा था। वह सब बातें बिल्कुल कहानी ही की तरह हैं। यदि सम्हाल कर वह लिख दी जाय तो वह तुम्हारे इन नामी लेखकों की बनायी हुई कहानियों से खराब न होंगी। लेकिन मैं लेखिका तो हूँ नहीं। यह भी नहीं कह सकती कि तुम्हारा मन मेरी कहानी में लगेगा कि नहीं।"

"ठीक है तो परीक्षा अभी ही हो जाय।"

अविरल गति से वर्षा होने लगी। बहुत दिनों की अनावृष्टि के बाद यह बहु-आकांक्षित वर्षा थी। प्यासी धरती इसी की प्रतीक्षा में व्याकुल थी। पेड़-पौधों के पत्ते-पत्ते पानी से नहा कर आनन्दित होकर झूम रहे थे। चारों तरफ मिट्टी की भीनी-भीनी सुगन्ध फैल रही थी। सीखचों के भीतर भी पानी के कुछ छींटे आ जाते थे। थोड़ी देर तक दोनों ही बाग की तरफ इस वर्षा-मंगल समारोह को निष्पलक आँखों से देखती रहीं। प्रकृति के इस आकर्षण में उन दोनों का हृदय इतना रम गया कि वह एक दूसरे का भी ध्यान कुछ समय के लिए भूल गयीं। कुछ देर के बाद कमला ने मौन भंग किया और मृदु कण्ठ से अपनी कहानी शुरू की—

माँ-बाप की बुढ़ौती की संतान थी। भाई-बहिन और कोई न था। जब संतान होने की कोई आशा न रही तब माँ ने जाति की एक विधवा बहिन की एक लड़की को रखकर पाल-पोस कर बड़ा किया। मेरी वह मासी मेरे जन्म से पहले ही मर चुकी थीं। दीदी माँ के पास ही रह गयीं। जिस समय मेरी उम्र ६ साल की थी तभी उनका विवाह हुआ। इसके बाद ही पिता रिटायर हुए। वे स्कूल में मास्टर थे। थोड़ी सी आमदनी में घर-परिवार का काम नहीं चलता था। इसके लिए लड़कों को पढ़ाना पड़ता। पर वे किसी के घर जाकर नहीं

पढ़ाते थे—लड़के ही उनके पास आते थे। वे पढ़ाते रहते, मैं पास ही बैठी देखा करती। कुछ बड़ी होने पर मैं भी सब देखने-सुनने लगी। छात्रों के चले जाने पर पिता जी मुझे लेकर बैठते। पिता के साथ ही खाना खाती, पिता का ही हाथ पकड़कर घूमने जाती और उनके पास ही सोकर कहानियाँ सुनती। मेरी समझ से पिता का इतना साथ और उनका इतना स्नेह सभी लड़कियों को नहीं मिलता। माँ के मैं इतना निकट न आ सकी। हमारी शादी की बात सोचते ही उनका सारा स्नेह, सब आदर गायब हो जाता था। बचपन से ही मैं तेजी के साथ बड़ी होने लगी थी। वह मन ही मन सोचा करतीं 'इसे आना भी था तो कुछ साल पहले ही क्यों नहीं आयी। पिता की उम्र बढ़ती जा रही है। शरीर टूट रहा है। इसे पार करने से पहले ही कहीं आँख न बंद कर लें।' इन सब संशयों और चिन्ताओं से मेरी माँ की आँखों में नींद न आती थी।

देखते ही देखते मैं सयानी हो गयी। अधिकतर समय मैं पढ़ने लिखने में ही काटती। पिता के सभी छात्रों में मुझसे कुछ ऊपर की कक्षा में पढ़ते थे और कुछ मेरे साथ थे। गणित में मेरा कोई भी मुकाबला न कर सकता था। उनकी गल्तियों को मुझे सुधारने के लिए देकर पिताजी बहुत प्रसन्न होते थे। जब वह किसी को कोई कठिन हिसाब देते—और चेष्टा करने पर भी जब उसे वह न लगा पाता तब उसकी कापी को हमारी तरफ बढ़ा कर कहते, 'देखो तो कमल, तुम इस हिसाब को कर सकती हो?' मैं उसे आसानी से कर देती। मैं देखती भूल करने वाले लड़के का मुँह काला पड़ जाता। कापी हमारे ही सामने आएगी, इसलिए कोई-कोई तो जानबूझकर भी हिसाब गलत कर देते थे। पिताजी इसे नहीं समझते थे और मैं भी उन्हें यह समझाने की आवश्यकता नहीं समझती थी। जिसकी कापी होती वह उसे समझता और भूल ठीक पकड़ी जाती। रोज-रोज गल्तियाँ बढ़ती ही गयीं—और उनकी गल्तियों को सुधारने में भी

मुझे भी कोई बुरा न लगता था।

नीरस अंकों के साथ ही साथ बीच-बीच में एकाध सरस काव्य भी आ जाता था। एक दिन एक लड़के की हिसाब की किताब देखते-देखते कोने पर नज़र गयी। कोने में छोटे-छोटे अक्षरों में लिखा था, "कमल, तुम्हारे बिना हमारा हृदय विदीर्ण हो रहा है।" मैंने 'विदीर्ण' शब्द के नीचे दाग लगा कर लिख दिया "भूल है ठीक करो।" यह सब खेल था—किन्तु खेल ही खेल में मैं एक दिन जकड़ गयी। वह दिन कब आया उसकी बात मुझे अच्छी तरह से याद है। उम्र में वह मुझसे कई साल बड़ा था। शरीर का रंग कुछ ढँका सा था किन्तु उसका गठन बहुत ही सुन्दर था। कुछ मानों में तो तुम्हारे जैसा ही वह था।

हेना हँस पड़ी और बोली, "धत्, हमारी तरह क्या रे।"

कमला ने अप्रतिभ स्वर में कहा, "मान लो यदि तुम लड़का होतीं...."

"अच्छा तो अब मैं समझी कि मेरी तरफ तुम्हारा स्नेह इसीलिए है न ?" हेना ने बीच में ही बात काट कर कहा।

"नहीं दीदी, तुम्हारी तरफ मेरा खिंचाव कुछ पिछले जन्म का फल है। नहीं तो किस तरह दोनों मिलतीं ?"

हेना ने कोई उत्तर न दिया और कमला का एक-हाथ स्नेह से खींच कर अपनी गोद में रख लिया।

कमला फिर लौट आयी अपनी कहानी पर—सब से सुन्दर उसकी भौंहें थीं। जैसे तूलिका से किसी ने आँका हो। किन्तु पढ़ने-लिखने में वह बहुत ही पीछे था। दो-दो बार मैट्रिक फेल कर चुका था। बाप बड़ा रोजगारी था। पास न करने से लड़के का मान नहीं रहता। ट्यूशन के लिए मेरे पिता तय किए गए। उसने आकर मेरे दरवाज़े पर धरना दिया और बोला, "मुझे जैसे भी हो पास कराना ही होगा।" उस समय भला मैं यह क्या जानती थी कि इसी के हाथों मेरा मरण-वाण

आया है। पिता के इतने छात्र थे, किसी को देखने में मुझे कभी इतना संकोच नहीं हुआ। वे भी मुझे बराबर देखते थे। किन्तु उस दिन हमारे घर के बाहर आकर वह जो पहली बार बैठा था, खिड़की से उससे नज़र मिलते ही मैं वहाँ से अपने को हटा न सकी। हृदय के भीतर एक तूफान चलने लगा। पिता के बुलाने पर किसी तरह मैं उनके पास जाकर बैठी किन्तु वहाँ न जाने किस लज्जा और संकोच ने मुझे इतना जकड़ लिया था कि इच्छा होने पर भी मुझमें अपना सिर उठाने की शक्ति न थी।

इधर-उधर की कुछ बातों के बाद पिता ने उसे अलजबरा का एक हिसाब करने को दिया। बहुत ही आसान हिसाब था। कुछ देर तक कापी पर लिखने के बाद वह बोला, "नहीं होता मास्टर साहेब।"

पिता ने हँस कर कहा, "नहीं हुआ? अच्छा।" फिर हाथ बढ़ा कर उसकी कापी अपने हाथ में लेकर मेरी तरफ बढ़ा दी। मेरा हाथ काँपने लगा। आँखों के सामने से सभी अक्षर मिटने लगे। एक भी फारमूला याद नहीं आ रहा था। इतने दिनों बाद मेरी हार हुई। उसके सामने मैं हार गई। पहली बार उसी समय मैंने समझा कि जीवन में हार मानने में भी कितना सुख है।

उसी दिन से पिताजी के स्कूल में मेरी पढ़ाई समाप्त हुई। किसी ने नहीं छोड़ा पर मैं छोड़ आयी। तुम हँस रही हो हेना दीदी, किन्तु उस दिन यदि मेरी अवस्था को देखतीं तो तुमको मुझ पर दया आती। हमारी हालत उस समय देखने लायक थी। सुनने में यह बात बहुत मामूली लगती है और मन की दरिद्रता की द्योतक है। फिर भी मैं कोशिश करने पर भी उसके सामने जा कर नहीं बैठ पाती थी। तुम पूछोगी कि 'क्या उसकी भी यही दशा थी?' अगर उसकी दशा भी ऐसी न होती तो एक घंटे पढ़ने को होता तो तीन घंटे खड़ा क्यों रहता? उसमें इतना मनोयोग कहाँ से आया? लिखता तो वह ग्रामर के सवाल का जवाब था पर नज़र उसकी खिड़की पर लगी

रहती थी। मैं भी किसी न किसी काम के बहाने उसके सामने से ही आया-जाया करती। पिता जी भी शायद समझ गए थे। शायद मन ही मन खुश भी हुए थे। प्रायः वह यही कहते, "सनत् अच्छा लड़का है। इतने लड़कों को पढ़ाया पर ऐसा प्यारा लड़का नज़र नहीं पड़ा।" उसके बाद एक दिन दरवाज़े की ओट से सुना खाना खाते समय पिता जी माँ से बातें कर रहे थे। किसी बात के उत्तर में माँ ने कहा, "तुम्हारा दिमाग तो खराब नहीं हो गया है? वे सब बड़े आदमी हैं। लड़का तुम्हारी लड़की का रूप देख कर मुग्ध हो सकता है किन्तु बाप तुम्हारा रुपया न पाने से भूलेगा नहीं। यह सब कुछ ठीक सोच-विचार कर हिसाब कर लेना तब आगे बढ़ना।"

किन्तु हिसाब पूरा न हो सका। मेरी निकासी का हिसाब उलटते-पलटते वह एक दिन बिस्तर पर पड़े और फिर उठ न सके। हम लोगों का सम्बल था—कुछ कनस्तर, बक्से, पटरे, और मेरे हाथ में दो-हल्की चूड़ियाँ, गले में एक पतला हार, सूटकेस के नीचे छिपाकर रखे गए उनके कुछ पत्र जिसमें उच्छ्वास अधिक और भरोसा कम था। तब भी माँ के कहने-सुनने से कुछ दिनों तक प्रतीक्षा किया गया, कदाचित कहीं से कोई बुलावा आये। उसके बाद एक दिन सब कुछ सामानों को बेंच कर जो कुछ थोड़े से रुपये हाथ लगे उन्हें लेकर हम दोनों कलकत्ते में दीदी के घर जा पहुँचे।

शादी के बाद दो-एक बार छोड़ कर दीदी हमारे घर पर नहीं आयी थीं। दामाद के साथ मेरे पिता का संबंध अच्छा न था। आज जब सब भुला कर हम लोग उनके आश्रय में पहुँचे तो उनका मुँह गंभीर हो उठा। मैं थी माँ के पीछे। आगे बढ़ कर प्रणाम किया तो दीदी ने मेरी तरफ इस तरह देखा जैसे कोई भूत देख कर वह डर गयी हों। मैं पास के कमरे में चली गयी। बाद में मैंने सुना दीदी माँ से कह रहीं थीं 'अभी तक इसे भी घर में ही बैठा रक्खा है? उसकी तरफ तो देखा भी नहीं जाता।'

माँ ने निःश्वास फेंक कर कहा, "न देखूँ तो करूँ क्या तुम्हीं बताओ ? वह भला हमारी बातें कब सुनते थे ? तुम तो सभी जानती हो। अब हम तुम लोगों के आश्रय में आए हैं। विनोद से कह दो जितनी-जल्दी हो सके कोई कैसा ही घर इसके लिए खोज दे। मेरे गले से तो खाना भी नहीं उतरता।"

"मैं क्या कहूँगी ? घर आने दो जो कहना-सुनना हो उन्हीं से कह देना।" इतना कह कर दीदी अपने काम-धाम में लग गयीं।

कुछ ही देर में जमाई बाबू की आवाज़ सुनायी पड़ी। वह अभी ही आए थे। सास की बहुत सी बातों का उत्तर रुखाई से उन्होंने दिया था कि 'सब समझ गया। जानती ही हो आजकल कैसा ज़माना लगा है। उस पर से कुल ढाई कमरे ही हैं यह भी तो देख ही रही हो। हम लोगों का ही गुज़र नहीं हो पा रहा है।'

"क्या करूँ बेटा, बरामदे के एक कोने में हम माँ-बेटी पड़ी रहेंगी। इस लड़की को लेकर....अरी ओ कमला कहाँ है ? तुम्हारे जीजा जी आ गए हैं—प्रणाम नहीं किया ?'

मैं बाहर आयी। मेरे बहनोई का रूखा मुँह अचानक खिल उठा। एक गाल से हँस कर बोले, "वाह ! काफी बड़ी हो गयी है कमला ! आओ, आओ, शर्माने की क्या बात है ?" क्या कहूँ दीदी, मनुष्य की इतनी कुत्सित हँसी मैंने पहली बार देखी, और उनकी दोनों आँखें मुझ पर ऐसी गड़ी हुई थीं जैसे वह निगल जाना चाहते हों। उन्हें एक बार देखते ही मेरी आँखें बरबस नीची हो गयीं। सिर से पैर तक मैं सिहर उठी, भय से नहीं, घृणा से। याद आया कि ऐसी आँखें मैंने कहाँ देखी थीं। उस समय मेरी उम्र सात-आठ साल की थी। हमारे घर के पीछे की तरफ बस्ती में एक आदमी था। उसका नाम था गनी मियाँ। उसके पास बहुत सी मुर्गियाँ थीं। मोहल्ले की लड़कियों के साथ खेलते-खेलते मैं उस तरफ गयी तो देखा गनी मियाँ के यहाँ मुर्गियों के खरीददार आए थे। वे कुछ मुर्गियों

को एक झाबे में रख कर लेजा रहे थे। उसमें एक मुर्गी सुन्दर थी। और नटखट भी खूब थी। टग-बग करके चलती थी। मैं उसे 'रानी' कहती थी। मैंने गनी मियाँ से कहा, "क्यों जी मैंने एक दिन तुमसे कहा था उसे मत बेचना।" गनी ने सिर झुका दिया। फिर जोर का ठहाका मार कर वह बोला, "देख न खोकी, बिल्कुल तैयार माल है। उसकी चिन्ता क्यों करती है। फिर कोई पर्व-टर्व आने दो, दो-चार मेज़बान को बुलाऊँगा फिर...." कह कर उसने जलती हुई आँखों से मुर्गी की ओर देखा। इतने दिनों बाद जीजा के कपाल के नीचे वही गनी मियाँ की आँखें दिखायीं पड़ीं। हृदय में पता नहीं क्यों एक हलचल सी मच गयी। माँ की फटकार पड़ने पर मैंने धीरे-धीरे आगे बढ़ कर प्रणाम किया। उन्होंने मेरे कन्धों को पकड़ कर झक-झोर दिया। मेरा सारा शरीर झनझना उठा।

मेरे बहनोई पता नहीं क्या करते थे। सुबह चाय पीकर खाना खाकर निकल जाते थे। फिर बारह-एक बजे तक लौट आते थे। खा-पीकर सो जाते। फिर शाम होने पर वही बारह बजे रात तक के लिए निकल पड़ते थे। किसी-किसी दिन रात में लौटते भी न थे। 'कहाँ थे?' पूछने पर बगैर उत्तर दिए ही दीदी के कमरे में घुस जाते थे। मेरे आने के बाद उनका रूटीन बदल गया। सुबह देर से निकलते और शाम को फिर निकलना ही न चाहते थे। समय-असमय जब देखो तब 'कमला यह ले आओ, वह ले जाओ' फर-माइशें चलतीं रहतीं। पास जाने पर आदर के नाम पर जो मुझे सहना पड़ता था, उसे याद करने से आज भी मेरे पैर नहीं उठ सकते। अकेले में मैं उनके पास जाने को टाल भी जाती पर सब के सामने मुक्ति न मिलती। ऐसा प्यार दिखाते थे जैसे मैं नासमझ लड़की हूँ, मुझे लेकर जो मन में आता करते। माँ देख कर भी न देखतीं। दीदी चुप रहतीं। बीच-बीच में यही इच्छा होती कि उनके साँप जैसे हाथों को मरोड़ कर तोड़ दूँ। किन्तु यह भी जानती थी

कि इसके साथ ही मेरा सिर भी टूटेगा। केवल मेरा ही नुकसान न था, मेरे साथ में माँ की भी मुसीबत थी। यह बात उन्हें अच्छी तरह से मालूम थी और हमारी असहाय अवस्था से लाभ उठाने में उसे दुविधा न हुई। रोकते-रोकते आखिर में मैं थक गयी। सोचने लगी मेरा यह शरीर जैसे रक्त-मांस का नहीं है पत्थर का है। पत्थर को तो कोई बोध-शक्ति होती नहीं, मान-अपमान, लज्जा, संभ्रम कह कर भी उसे कुछ नहीं होता। धीरे-धीरे करके मैं भी पत्थर जैसी हो गयी।

"एक बात सोच कर देखोगी दीदी? लड़कियों के लिए यह शरीर ही उनके जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप होता है। कुछ बड़े होने पर इसे लेकर भय भावना का कोई अन्त नहीं और कदम-कदम पर मुसीबत और कलंक का सामना करना पड़ता है! इसे सम्भाल कर, रोक कर और बचा कर रखना ही जैसे उसकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी है। इस पर भी सबकी टेढ़ी दृष्टि क्या अपने हों क्या पराए सभी स्त्री-पुरुषों की रहती है। पुरुष का शरीर तो उसका सम्पद है और लड़की होती है बोझा। तभी तो पृथ्वी पर वह शुरू से ही आज तक कोई बड़ा काम नहीं कर सकी। इसी बोझ को ढोने ही ढोने में सारा जीवन कट जाता है।"

"यह तो तेरी गुस्से की बात है।" मधुर मुस्कान के साथ हेना ने प्रतिवाद किया। "अपने ही को देखती है, पर यह भूल क्यों जाती है कि तेरी अवस्था में पड़ती कितनी हैं?"

भाषा में रमणीय, लोभनीय करने की प्राणपन साधना कहते हैं। उसके लिए कितने आयोजन, कितने उपकरण और उसके पीछे कितने समय, कितने अर्थ, और कितने परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है ! पुरुष के लिए तो यह सब बला नहीं रहती। तभी तो कहती हूँ लड़कियों का शरीर ही सब कुछ है।"

"अच्छा होगा ! वक्तृता छोड़कर अपनी बात पर आओ।" कह कर हेना तकिया रख कर आराम से बैठ गयी। कमला ने उठ कर कमरे के एक कोने में रखे घड़े में से जल उड़ेल कर पिया, फिर अपनी जगह पर वापस आकर कहना शुरू किया, "तो मैं पत्थर हो गयी थी। यह बात मुझे उस दिन और भी अच्छी तरह से मालूम हुई जिस दिन मेरा सर्वनाश हुआ। उस दिन भी इसी तरह से पानी बरस रहा था। दीदी अस्पताल में थीं। पाँचवाँ बच्चा होने को था। आगे के चारों जा चुके थे। कोई पहले और कोई कुछ दिनों बाद। माँ जीजा के साथ लड़की को देखने गयीं थीं। वहाँ से और भी कहीं जाने की बात थी। मैं घर में अकेली कोई किताब पढ़ते-पढ़ते सो गयी थी। अचानक जब मेरी नींद खुली तब मैंने देखा मेरे बहनोई कमरे के भीतर आकर दरवाजे को बन्द कर के उसकी सिटकनी को चढ़ा चुके थे। मैं क्या चिल्ला नहीं सकती थी ? नतीजा कुछ भी होता पर चेष्टा तो कर ही सकती थी। किन्तु मैं चिल्ला न सकी। अगर तुम पूछो क्यों ? तो उत्तर न दे सकूँगी। केवल मेरे इस शरीर पर ही नहीं मन पर भी असाढ़ लगा था। सचमुच मैं पत्थर हो चुकी थी।"

माँ और दीदी से मुँह खोल कर मैं इस घटना के संबंध में कुछ कह भी न सकी। दो महीने बाद ही मेरा शरीर भारी होने लगा। दीदी लौट आने पर भी बिस्तर पर पड़ी थीं। उसी जगह बैठ कर माँ बेटी में घुसुर-फुसुर कई दिनों तक कुछ परामर्श चलता रहा। बाद में एक दिन रात में कोई बारह बज चुके थे। मैं पहले से ही सो रही थी। अचानक करवट लेने पर माँ की जगह खाली देख कर नींद खुल

गयी। ठीक उसी समय माँ भी कमरे आयीं। कुछ देर तक हमारे पास खामोश बैठी रहने के बाद वह बोलीं, "बहुत कह सुन कर विनोद को मैंने राजी कर लिया है। तुम्हारी दीदी की भी राय है। अब तू अड़गेंबाजी न करना।"

बात क्या है मैं जानना चाहती थी। माँ कुछ देर तक मेरे मुख की ओर देखती रहीं, फिर एक निःश्वास फेंक कर बोलीं, "आखिर में तेरे भाग्य में यही था। लेकिन किया क्या जाय। विवाह करने के अलावा अब कोई दूसरा रास्ता भी तो नहीं है।"

"जानती हूँ माँ", झुँझला कर मैंने कहा। इसके अतिरिक्त मेरे मुँह से और कोई भी बात न निकल सकी। उसके बाद प्रायः सारी रात मेरे शरीर पर हाथ और सिर रख कर पता नहीं क्या-क्या बातें माँ ने कहीं मुझे कुछ याद नहीं हैं।

माँ ने ठीक कहा था कि अब मेरे लिए कोई दूसरा रास्ता न था। जीजा जी राजी हो गए यही मेरा परम सौभाग्य था। मैं भी राजी हूँ केवल यही बताना था और कदाचित रजामन्दी देती भी। किन्तु सुबह होते ही एक ऐसी घटना घटी जिससे हमारी सारी व्यवस्था ही नष्ट हो गयी।

मैं नीचे काम कर रही थी। डाकघर का पियुन आया और चिठ्ठियाँ देकर चला गया। ऐसे ही वह रोज दे जाता था। सभी जीजा की चिठ्ठियाँ होतीं। माँ को या मुझे कोई चिठ्ठी लिखता न था। उससे मुझे कोई कौतूहल भी न था। उस दिन भी मेरा कोई ध्यान उस ओर न था। एक पुराने बिस्कुट के टीन का बक्स दीवाल पर टँगा था। यही लेटर-बक्स था। उसमें से मैंने चिठ्ठियाँ निकाल कर देखा। यह क्या? यह तो हमारे नाम की चिठ्ठी है। लिखावट भी मेरी पहिचानी हुई थी। मैंने उसे कपड़े के भीतर सीने में छिपा कर धड़ाधड़ ऊपर चढ़ गयी और कमरे बन्द कर के लिफाफे को खोला। दिल धड़क रहा था। कौन जाने वह न हो कागज़ का मोड़

खोलते ही हृदय भर उठा।

बहुत बड़ी चिट्ठी थी। पहली तरफ मुझे खोज निकालने की मज़ेदार कहानी थी, फिर पुराने दिनों के रंगीन सपनों को नए ढंग से सँजोश्रा गया था। आखिर में जो लिखा था—वह जैसे समाप्त नहीं हो रहा था। मैं बार-बार उसे पढ़ने लगी, "जानती हो कमल आज की तरह मैंने तुम्हें कभी नहीं समझ पाया था। तुम न मिलोगी तो मेरा नहीं चल सकेगा। तुमको पाने के लिए जितनी भी अड़चनें मेरे मार्ग में थीं वह अब नहीं हैं। तुम भी अभी तक नहीं बँधी हो इसकी खबर मुझे लग गयी है। किन्तु तुम्हारे मन में क्या है? उसमें क्या मैं कुछ जगह पा सकूँगा? तुम्हारे पत्र की मैं प्रति क्षण प्रतीक्षा करूँगी।"

मैंने उसी दिन जवाब दिया। मैंने लिखा, "मुझे मालूम था सनत् दा कि तुम मुझे कभी न कभी अवश्य याद करोगे। यह सही है कि अभी तक मैं बंधन में नहीं बँधी हूँ फिर भी मैं जहाँ पर पड़ी हूँ वहाँ पर मेरे मार्ग में बहुत सी बाधाएँ हैं। तुम आओ। जिस तरह बन सके मुझे बचाओ।"

सनत् ने क्या समझा नहीं जानती। कुछ दिनों बाद फिर चिट्ठी आयी। अमुक दिन अमुक समय तैयार रहो। मैं तैयार हो गयी। अन्धेरी रात में सनत् टैक्सी लेकर आया। हार्न सुनते ही मैं चुपचाप बाहर आ गयी। सोती हुई माँ के चेहरे की ओर देख कर मेरी आँखों में पानी भर आया। जल्दी से मैंने उसे पोंछ डाला। आज तो मेरे लिए रोने का दिन नहीं है। एक बार सोचा था माँ को सब बता कर जाऊँगी। सनत् को अपनी लड़की देने में उन्हें कोई आपत्ति भी न थी। पर आखिर में भरोसा न हुआ। अगर वह राजी न हुई? अगर सब पथ बन्द हो जाय? इसी से मैं अन्धेरी रात में निकल भागी। सभी ने जाना कि कमला कहीं डूब मरी। किन्तु जिस नरक में थी उससे तो मरना ही अच्छा था। यदि कहो कलंक! तो जो मिल चुका था उसके आगे यह तुच्छ था।

सनत् के साथ बैठ कर मैं उसके कालीघाट के निवासस्थान पर पहुँची। वह उतार कर मुझे जिस घर में ले गया वह बहुत ही अच्छा था। तरह-तरह के कीमती सामानों से सजा था। उस पर एक नज़र डालते ही समझा जा सकता था कि किसी के कितने यत्न और कितनी साधें उसके साथ जुड़ी हुई थीं। दरवाज़े पर ठिठक कर वह बोला, "यह घर तुम्हारा ही है। आज से केवल तुम्हारा। जब तक हम दो नहीं थे तब तक हमारा प्रवेश निषेध था!" उसके बाद हँसकर गला साफ करके बोला, "अब वह दिन भी दूर नहीं है।"

दूसरे दिन सचमुच वह दिखायी न पड़ा। उसके बाद भी नहीं। कभी-कभी आहट मिलती। इसी से समझती कि वह घर में है। नौकरों-चाकरों और नौकरानियों के हाथों मेरे ज़रूरत की सभी चीज़ें आ जाती थीं। केवल उससे ही भेंट नहीं हो पाती थी। तीन दिन लगातार बुलाने के बाद उसके आने पर मैंने कहा, "क्या बात है? एक बार भी नहीं आ सकते थे?"

उसने हँस कर कहा, "एक बार क्या एक सौ बार आने का ही तो आयोजन कर रहा हूँ। तब तुम कहोगी एक बार भी क्या बाहर न जाओगे?"

मैंने तुनक कर कहा, "यह सब बेकार की बातें हैं। जब तक मैं दूर थी तभी तक बस खिंचाव था। करीब हाथ में आ जाने पर जैसे वह सब खत्म हो गया।"

कुछ सोचकर सनत् फिर बोला, "तुम्हारी यह बात उसके लिए ही ठीक हो सकती है जो हाथ में हो—पर मैं तो और भी आगे बढ़ चुका हूँ। मैं तो तुम्हारे मन के पास ही हूँ। काम बिगड़ने का भय नहीं है, उसकी चौकीदारी की भी जरूरत नहीं है।" इतना कहकर हँसते-हँसते चला गया।

असली कारण तो समझ गयी थी। पीछे मन में कुछ सन्देह हुआ, उसके आश्रय में हूँ इसी से वह अन्याय का सुयोग ले रहा है—

उसने अपने को एक बार दूर खींच लिया था। एक दिन बात ही बात में उसने कह भी दिया था कि "तुम अपने घर पर जिस तरह से थीं यहाँ भी उसी तरह से रहो। समझ लो मास्टर साहेब जीवित हैं। वे हमारे पास ही हैं और हम दोनों को आशीर्वाद दे रहे हैं।"

वह यदि इतना भला न होता तो मैं वहाँ कहाँ ठहर सकती थी। मेरा जो सर्वनाश हो चुका था उसे सनत् नहीं जानता था। पर मेरे लिए जो नई नौकरानी रक्खी गयी थी उसकी नज़र से यह बात छिपी न रह सकी। हमारे मन में जो तूफान चल रहा था—उसका भी उसे अनुमान लगाने में भूल नहीं हुई। उसने मुझे सलाह दी "चुप रहो दीदी रानी, विवाह तो हो जाने दो।" आगे ढाढस बँधाती हुई, वह बोली, "तब यह कोई पाप नहीं समझा जायगा।"

किन्तु मैं ऐसा न कर सकी। बार-बार मन में यही आता कि नहीं यह एक पाप है। और कहीं तो यह सब चल सकता था—पर सनत् के सामने नहीं। विवाह से पहले ही उसे सारी बातें खोल कर कहना ठीक होगा। उसके बाद जो भाग्य में होगा देखा जायगा। इसी नौकरानी से एक दिन सन्ध्या के बाद उसे बुलाया और किसी तरह निःश्वास फेंकते हुए मैंने सारी बातें कह डाली। उसका उज्वल मुख कागज़ की तरह सफेद पड़ गया। खड़ा था, हठात् बैठ गया। उसके बाद टहलते-टहलते अपने कमरे में चला गया। मैं भी उसके पास दौड़ कर गयी और पैरों को पकड़ कर कहने लगी, "मैंने अपनी पूरी बात तो तुमसे कहा ही नहीं सनत् दा। दया करके उसे सुन लो, फिर फैसला करो। मैं किस हालत में पड़ी थी...."

इतना कहते ही पैरों को झटक कर कहा, "जितना सुना है, वही काफी है, अब और सुनना नहीं चाहता कमल। मुझे क्षमा करो।"

दूसरे दिन उठते ही सुना कि सनत् कहीं चले गए हैं। हमारे लिए एक चिठ्ठी छोड़ कर गए हैं। तीन लाइन की चिठ्ठी थी—

कुछ दिनों के लिए मैं बाहर जा रहा हूँ। तुमसे मिल कर न

जा सका। अन्यथा न समझना। तुम जैसे रहतीं थी वैसे ही रहो। जब तक मैं ज़िन्दा रहूँगा तब तक तुम्हारा सम्पूर्ण भार मेरे ऊपर ही रहेगा। मुझे बगैर बताए तुम कहीं न जाना।

तुम्हारा ही

सनत्

पुनश्च : करके फिर लिखा था—यहाँ तुम्हारी सब व्यवस्था है। फिर भी कोई आवश्यकता पड़े तो उसे बताने में संकोच न करना। पता नीचे है—

पता काशी का था। इस चिठ्ठी का उत्तर मैंने लिखा था—"मैं तुम पर भार बन कर नहीं रहना चाहती। मुझे मुक्त करो। जहाँ भी भगवान ले जायगा चली जाऊँगी।"

सनत् ने जवाब में लिखा था—"हमारे ऊपर विश्वास करके तुमने अपने को सौंप कर उस अँधेरी रात में अपना सब कुछ छोड़ कर चली आयी थीं। उस विश्वास की मर्यादा मुझे रखने दो, कमल! इसके अतिरिक्त तुम यह क्यों भूल जाती हो कि हम एक दूसरे को प्रेम करते हैं। उसका आखिरी नतीजा जो भी होगा उसे कैसे अस्वीकार किया जायगा?"

इस बात का उत्तर मैं खोज न सकी।

सनत् के माता-पिता कुछ दिन पहले मर चुके थे। सिर पर कोई अभिभावक न था। आत्मीय-स्वजन कोई-कोई बीच-बीच में उसके घर पर आते थे। मैं उनके सामने निकल नहीं पाती थी और छिपी भी नहीं रह सकती थी। इन्हीं सब बातों को लेकर मैं चिन्ता में थी कि इसी बीच चिठ्ठी आयी कि हमारे लिए नवद्वीप में मकान ठीक कर लिया है। नौकरानी हमारे साथ जायगी। सरकार महाशय हमें पहुँचा आवेंगे। मुझे अपने पर दुःख हुआ और हँसी भी आयी। सोचा अब ठीक जगह पर जा रही हूँ। महाप्रभु के देश में। मुझ जैसी कलंकिनी जो संसार से बाहर हो चुकी है उसके लिए नवद्वीप

ही एकमात्र गति है।

वहाँ जाकर जो मैंने देखा उसे तुम्हें पहले ही बता चुकी हूँ कि यह शरीफ लड़कियों के लिए एक अभिशाप है। एक दल मेरे पीछे लगा। वे गुण्डे नहीं, शरीफ सम्मानित लोग कहे जाते थे। किसी-किसी ने तो नौकरानी को भी मिला लिया। अपने को कैसे बचा सकती थी? एक बार सोचा सनत् को लिखूँ किन्तु फिर ध्यान आया इसके लिए वह क्या कर सकता है? अधिक होगा तो दूसरी जगह भेज देगा। किन्तु वह भी तो दुनिया के बाहर की तो जगह होगी नहीं। आखिर में कोई उपाय न सूझने पर मैंने नौकरानी को विदा कर दिया। वह बिगड़ गयी और बदला लेने की धमकी दे गयी।

फिर एक दिन असमय ही पेट में भयंकर पीड़ा शुरू हुई। जब वेदना असह्य हो उठी तब नई नौकरानी को डाक्टर को बुलाने के लिए भेजा। डाक्टर के आने के पहले ही मैं बेहोश हो चुकी थी। आठ दस-घन्टे बाद जब होश में आयी तो देखा पुलिस खड़ी है। सुना मरे हुए बच्चे को नई नौकरानी फेंकने गयी थी, उसे बीच में ही मुहल्ले के बाबूओं ने पकड़ लिया। उसी अवस्था में उसे थाना ले गए। डाक्टर छोड़ दिए गए, नौकरानी की भी जमानत हो गयी और मुझे हिरासत में लेकर जेल भेज दिया गया।

पहले तो सोचा चलो छुट्टी मिली। निश्चिंत होकर अब रह सकूँगी। किन्तु दो दिनों में ही मालूम हुआ कि वह मेरी भूल थी! बोलने की शक्ति नहीं थी, फिर भी हजारों प्रश्नों का उत्तर देना पड़ा। मेरी कही हुई बातों पर कोई भी विश्वास नहीं करता था। कैदिनें मुँह दबा-दबा कर हँसती थीं और जमादारिनी कटाक्ष करती थी। जेलर बाबू ने एक दिन जानना चाहा कि क्या हुआ था। मैंने कहा, "मैं कुछ नहीं जानती। मैं उस समय बेहोश थी।" वह मुँह बिचका कर हँसते हुए चले गए। जैसे वह सब बातें मेरी जानकारी

में ही हुई थीं। एक बूढ़े डाक्टर आते थे। उन्होंने कहा, "हाकिम के सामने सही सही बात बता देना, छोड़ दी जाओगी।" तारीख पर तारीख पड़ने लगी। एक दिन भी उन्होंने मुझे कोर्ट में नहीं जाने दिया। जब बहुत कुछ ठीक हो गयी तब मैंने कहा, "अब क्या मैं जा सकूँगी ?" डाक्टर बाबू ने नहीं सुना। धीरे से वह बोले, "अरी बेवकूफ लड़की। यदि छोड़ दिया गया तब यह सब दवाइयाँ और पथ्य कहाँ पाएगी ?"

डाक्टर बाबू भरोसा दे रहे थे। मैंने भी यही विश्वास किया था कि मैं निर्दोष हूँ सजा क्यों पाऊँगी ? जो कुछ भी हुआ है उसे साफ कह दूँगी। किन्तु ऐसा न हो सका। जिस समय मैं अभियुक्तों के कटघरे में खड़ी की गयी उसी समय मैं चौंक पड़ी। मेरा सिर चक्कर खाने लगा। वकील के पीछे हमारे बहनोई खड़े थे। हमारी तरफ से एक वकील साहब ने अजीब कहानी गढ़ना शुरू किया। मैं समझ गयी कि वह मुझे बचा लेना चाहते हैं। वह अपनी बहस चला ही रहे थे कि मैं उनके बीच में टोक कर बोल पड़ी, "यह सब झूठ बात है। जो कुछ भी हुआ है उसका दायित्व मेरा है।"

हाकिम ने पूछा, "क्या तुम अपने बच्चे को अकाल ही मार डालना चाहती थीं ?"

मैंने कहा, "जी हाँ।"

हेना ने उसी समय प्रश्न किया, "तब उन महाशय को तुम्हारा पता कैसे लग गया ?"

कमला ने कहा, "यही बात मैंने भी बहुत सोचा, पर आज तक मैं कोई बात ठीक से समझ न पायी।"

"सनत् की कोई चिट्ठी तो उनके घर में नहीं छोड़ आयीं थीं ?"

"हो सकता है, जल्दी-जल्दी में सभी चिट्ठियाँ न ली हों।"

"अच्छा फिर ?"

"और फिर क्या ? छोटे हाकिम के बाद बड़े हाकिम के सामने

पेश हुई। वहाँ भी बस इतना ही बयान दिया। विपक्ष में भी गवाहियाँ कम न थीं। पुराना नौकरानी ने आकर बयान दिया कि मैंने उससे अपने इस जघन्य काम में मदद माँगी और साथ न देने पर नौकरी से निकाल दिया। मोहल्ले के भी कई बाबुओं ने हलफ लेकर बयान दिया कि पहले ही वह नौकरानी से यह सब बातें सुन चुके थे, इससे वह मुझ पर नज़र रखे हुए थे—इत्यादि। नई नौकरानी तो हमारे बयान के बाद ही मुक्त हो गयी। मुझे जज साहब ने जेल भेज दिया। कुछ दिनों बाद छोटे जेल से इस बड़े जेल में आ गयी। फिर तुमसे मिली।"

काफी देर तक एक ही तरह से बैठे-बैठे कमला का सिर दर्द करने लगा। बहुत थक भी गयी थी। हेना के बिस्तर पर लेट कर वह चुप-चाप पड़ी रही। हेना उसके सिर के नीचे तकिया लगा कर धीरे-धीरे रूखे बालों पर उँगलियाँ फेरने लगी। कुछ देर तक इसी प्रकार चुपचाप पड़ी रहने के बाद कमला फिर बोली, "यह बात कितने मजे की है दीदी, कि मैं सभी कुछ छोड़ आयी, सभी ने मुझे छोड़ दिया किन्तु अपने पूज्यनीय बहनोई महाशय के हाथों से रिहाई न पा सकी। उनके आदर का शेष चिह्न व्याधिरूप में हमारे शरीर में अभी भी अक्षय रूप में है।"

हेना ने दृढ़ विश्वास के स्वर में कहा—"नहीं कमला, व्याधि अक्षय नहीं है। वह एक दिन ठीक हो जायगी। किन्तु जो तेरे जीवन में सचमुच अक्षय होकर आया है किसी दिन तू उसके पास जा सके मैं अभी भी यही कामना करती हूँ।"

कमला ने फिर कुछ न कहा। उन सुडौल हथेलियों को जो पद्म कोरकों की तरह उसके कपाल के पास स्नेह स्पर्श कर रहे थे—उन्हें धीरे से खींचकर अपने सीने पर रख कर आँखों को बंद किए शांत पड़ी रही।

—o—

५

देवतोष को लगा कि निश्चय ही वह सुनने में गलती कर रहे हैं या सुशीला ही उनसे गलत कह रही है। यह बिल्कुल अप्रत्याशित सी बात थी। फिर भी उन्होंने एक बार सुन कर उसी बात को दोबारा सुनने के लिए पूछा, "तुम किसकी बात कर रही हो ?"

सुशीला ने कुछ झुँझलाहट भरे स्वर में कहा, "वाह, आप सुन नहीं रहे हैं क्या ? हेना आपकी नर्स ने एक बार बुलाया है।"

डाक्टर का मन विस्मय और आनन्द से एक साथ चंचल हो उठा। अपने मनोभावों को वह छिपाने का प्रयत्न करते हुए बोल उठे, "क्यों, बूढ़ी फिर बीमार पड़ी क्या ?"

"बूढ़ी ! आप भी खूब हैं। वह तो जनाना-फाटक में घूमती फिरती है।"

"तब क्या उन्हें स्वयं तो कुछ नहीं हुआ ?"

"नहीं, उसकी अपनी तबीयत खराब होती तो वह मुझसे अवश्य बताती। फिर चेहरे से भी ठीक ही मालूम पड़ती है।"

"फिर ?"

"फिर-तिर तो मैं जानती नहीं। आप एक बार उधर घूमते आइएगा।"

दोपहर में खाना खाकर डाक्टर आराम कुर्सी पर पड़े-पड़े अखबार पढ़ रहे थे। जमादारनी ने अभी जो खबर दी है उसके बाद

अखबार की सभी खबरें जैसे एकाकार हो गयीं। हमारी आँखों के दो काम हैं—एक जो चाहती हैं और एक देखती हैं। एक और देखता है—जिसे मन कहते हैं। मन आँखों के पीछे नहीं रहता, वह अन्धा होता है। डाक्टर की आँखों के सामने खुला हुआ अखबार वर्णहीन सा पड़ा था। मन में उठ रही थी शीत काल की कुहरा भरी रात और फिर उसके बाद कई वर्णोज्वल दिन। किन्तु जिसका आश्रय लेकर यह वर्ण-समावेश हुआ है वह पास नहीं है। कठिन परतों के दुर्भेद्य आवरण में उसने अपने को जकड़ रखा है। ऐसी कुछ भी याद नहीं पड़ता जब वह बगैर किसी प्रयोजन के पास में आकर खड़ी हुई हो, और अपने किसी काम के लिए भी कभी कुछ कहा हो। उस छोटे अस्पताल के एक कोने में बहुत दिनों तक उसके साथ काम किया। उसके हाथ निरंतर चलते रहते थे। वह उसके इतने पास रह कर भी दूर रहा। उसे लगा एक ही बेड़े पर एक तरफ जेल डाक्टर देवतोष घोष स्वयं खड़े हैं और दूसरी तरफ हैं ३१३ नम्बर की कैदी लड़की हेना मित्र। आपस में दोनों का बस इतना ही परिचय है। उसके बाहर और उससे अधिक कुछ भी नहीं। जितना भी सम्पर्क है वह केवल काम का और कानून का। इसी काम के सूत्र को पकड़ कर उनके सामने कोई इच्छा कोई अनुरोध उसने नहीं किया। कभी भी पास आकर लज्जा नतमस्तक से भी नहीं कहा कि, 'कल एक बार आ जाइएगा। काम है।' आज जो बुलावा आया है वह भी हो सकता है वह अपने लिए न होगा। इसके पीछे जो भी प्रयोजन हो उससे उसका अवश्य ही कोई संसर्ग न होगा। फिर भी उसने बुला भेजा है। मुँह खोल कर कहलाया है कि उनकी आवश्यकता है—इसी से देवतोष का मन भीनी-भीनी सुगन्ध से गमक रहा था।

डाक्टर की ड्यूटी शाम को साढ़े चार बजे से शुरू होती थी। दिन यों तड़-पड़ कर के बीत जाता था। चाय का प्याला भी समाप्त

करना मुश्किल होता। आज घड़ी जैसे रुक-रुक कर चल रही है। साढ़े तीन बजने में ही साढ़े तीन दिन लग गए। नौकर को बुलवा लिया देवतोष ने। चाय तैयार हुई, किसी तरह वह तैयार हुए और निकल पड़े। गेट पार करते ही दोनों पैर बरबस बाईं तरफ के लिए मुड़ जाते थे। इसी तरफ कई एक वार्डों को पार कर के फीमेल-वार्ड है। हठात् डाक्टर ठिठके और उन्हें लगा जैसे उनके मन के उतावलेपन को चारों तरफ के लोगों को मालूम हो गया है। 'उंह इससे क्या ?' मन को समझा कर वह उसी तरफ आगे बढ़े।

आज भी बूढ़ी कमरे में नहीं थी। दरवाज़े की ओर पीठ किए हेना बैठी थी। हाथ में सलाई थी। आज ही स्वेटर समाप्त करना है। तेजी के साथ लगातार फन्दे पर फन्दे डालती जा रही थी। बाहर की ओर से वार्डर को बुलाने के लिए रस्सो में बँधे घंटे का मधुर स्वर उसके कानों में पड़ा, फिर सुशीला की तेज आवाज़ भी सुनाई पड़ी। हो सकता है कि बड़े ज़मादार राउन्ड पर आ रहे हों या गुदाम घर का सिपाही ही कैदिनों के लिए नए कामों का हिसाब-किताब लेने आया हो अथवा कोई और किसी काम से आया हो। वह भावमग्न सी अपने कामों में ही उलझी रही। काले मेघ की तरह पीठ पर केश राशि फैली थी। सुडौल ग्रीवा का स्पष्ट आभास उसके भीतर से मिल रहा था। दोनों तरफ चिकने बाहु थे जो सलाई के फन्दों के साथ हिल रहे थे। कपड़े भी ढीले-ढाले लापरवाह से थे। अचानक सीढ़ी के के नीचे जूतों के शब्द सुनाई पड़े। हेना काम करते ही करते उठ खड़ी हो गयी। सीने पर साड़ी का आँचल ठीक करके उसने एक बार डाक्टर की तरफ मुड़ कर चकित भाव से देखा। उसके बाद उसके नेत्र पता नहीं क्यों वहाँ से हटना ही नहीं चाहते थे। उसके अंग-प्रत्यंगों को किसी अननुभूत सल्लज संकोच ने जकड़ लिया।

डाक्टर ने पूछा, "तुमने मुझे बुलाया है ? क्या काम है ? तुम्हारी पेशेन्ट तो देख रहा हूँ, भली-चंगी सी घूम-फिर रही है।"

जड़ता को काट कर हेना ने सहज होने की चेष्टा की! मृदु मुस्कान के साथ हठात् वह बोली, "केवल उसे ही देखने आप आए हैं क्या ?"

देवतोष चौंक उठे। हेना कहना क्या चाहती है ? यह क्या केवल सरल परिहास है या उसने उनके मन की गहराई को टटोला है ? डाक्टर को यह बात, यह हँसी और यह कटाक्ष-सभी एक पहेली जैसी लग रही थी, साथ ही उन्हें ऐसा लगा जैसे उनके अन्तर के किसी स्रोत को सहसा किसी ने खोल दिया हो। हेना की ओर गंभीर दृष्टि डाल कर वह बोले, "क्या कह रही हो? केवल उसी को देखने आता हूँ कि नहीं उसका जवाब आज भी तुम नहीं जान सकीं, हेना ?"

हेना का हृदय सिहर सा उठा। असावधानी से उसने जिस स्रोत को खोल दिया है, डर है उसे अब बन्द नहीं किया जा सकता, फिर भी एक बार चेष्टा तो करना ही है। वह अनजान सी बन कर मधुर कण्ठ से "बोली वाह यह आप क्या कह रहे हैं। बूढ़ी को छोड़ कर क्या और कोई बीमार-खमार नहीं पड़ता ? और भी तो कई लोग हैं...."

"कितने लोग हों, आज रहने दो, हेना।" बीच में ही बात काट कर अधीर, कण्ठ से देवतोष ने कहा, "केवल उसी की बात करो, जिसे मैं सचमुच देखने आता था। किन्तु देखना चाहता हूँ, यही तो कोई बात हुई नहीं। इससे कहीं अधिक मेरी कामनाएँ और आशाएँ हैं। क्या तुम नहीं जानती ?"

"डाक्टर बाबू !" कुंठित स्वर में हेना बोल उठी—जैसे वेदनार्त कण्ठ का करुण आवेदन फूट पड़ा हो।

उन करुण नेत्रों की ओर देख कर डाक्टर सहसा ठिठक गए। कुछ क्षणों तक मौन रहने के बाद बोले, "मुझे गलत न समझना। मैं जानता हूँ कि जिसकी मैं बात कर रहा हूँ उस पर मेरा कोई अधिकार नहीं। फिर भी मुझे कहने दो। आज न कह सकूँगा तो फिर कभी न कह पाऊँगा।"

"किन्तु आपने उसकी तो कोई बात भी नहीं सुनी। आप तो

जानते नहीं कि उसका क्या परिचय है, उसका क्या इतिहास है?"

"जानना भी नहीं चाहता। उसकी जरूरत भी नहीं। मैं जितना जानता हूँ उतना ही काफी है। उससे अधिक मुझे कुछ भी नहीं जानना है।"

"और कुछ भी नहीं जानना है?"

"नहीं! मुझे जो बात जाननी है उसे तो तुम जानती ही हो। स्वयं अपने हृदय को ही टटोल कर मन से ही पूछ लो। उसके बाद बताओ कि उसका क्या उत्तर है, कहाँ क्या बाधा है।"

दरवाजे की चौकठ को पकड़कर हेना खड़ी थी—स्पन्दनहीन, मूर्ति की तरह। कुछ क्षणों तक प्रतीक्षा करने के बाद देवतोष ने मृदुल कण्ठ से पुकारा, "हेना।"

"कहिए।"

"चुप क्यों हो गयीं? जवाब दो। अगर आज भी तुम्हारा मन तैयार नहीं है तो मैं और इन्तजार करूँगा। जितने दिनों तक कहोगी इन्तज़ार करूँगा। आज तुम्हारी केवल आखिरी बात जानना चाहता हूँ।"

हेना के दोनों ओठ फड़के। आँखें डबडबा आयीं साथ ही अस्फुट शब्द निकले, "नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता; मेरे पास कोई दूसरा रास्ता नहीं है....मैं तो....आप मुझे क्षमा करें।" व्यथा, तप्त कण्ठ से इतनी बातें कह कर वह दोनों हाथों से मुख को ढक कर कमरे के भीतर चली गयी।

डाक्टर के हृदय में वे 'नहीं, नहीं' तीर की तरह आकर बिंधे। उन्होंने बाहर की तरफ देखा। ऐसा लगा मानो आलोकोज्वल अपराह्न के हृदय के भीतर सहसा जीवन का चिह्न मिट गया। विह्वल से कुछ देर तक खड़े रहे, फिर लौटकर धीरे-धीरे फाटक की ओर चल दिए।

मस्सकत घर के पास पहुँचते ही सुशीला बाहर निकली और

नमस्कार किया। डाक्टर ने बिल्कुल मौन उसकी तरफ देखा। सुशीला चौंक उठी, "यह क्या आपकी तबियत ठीक नहीं है क्या डाक्टर बाबू?"

"नहीं तो, कहो क्या कहना है।"

"कहना यह था कि वह एक लड़की कमला है न, वह बीमार है। हेना ने कहा था उसे एक बार डाक्टर बाबू को दिखा दिया जाए। क्या उसने आप से कहा नहीं?"

"क्या बीमारी है?"

"क्या मालूम कोई पुराना रोग है।"

"अच्छा, कल देखूँगा।" कह कर वह उसी अन्यमनस्क भाव से आगे बढ़ गए।

डाक्टर बाबू ने कहा था, "अपने मन से ही पूछो कि उसका क्या उत्तर है?" इससे हेना को दुःख भी हुआ, हँसी भी आयी। क्या उसे आज भी अपने मन को जानना बाकी है? वह कितना लोभी है, कितना रहस्यमय है और उसकी आकांक्षाओं का जैसे अन्त ही नहीं है। अपने मन को वह किसी तरह बहलाती आ रही थी। किन्हीं असंगत बातों को वह उसमें अभी तक स्थान नहीं दे सकी थी। उसे लग रहा था कि आज जैसे उसका सारा जोर खत्म हो गया है और अब अपने को वह सम्हाल न पावेगी।

जेल गेट के घन्टे ने दो बजाया। पास के बिस्तर पर मोना की माँ गहरी नींद में सो रही थी। इस लम्बी रात के पहले पहर से वह भी सोने की चेष्टा कर रही थी। किन्तु नींद नहीं आयी। निमीलित नेत्रों के सामने रह-रह कर एक चेहरा और उसके दो क्षमा-सुन्दर नेत्र उभर आते थे—जिसमें स्नेह करुणा, आग्रह, और अनुराग एक साथ प्रदीप्त हो रहे थे। वह क्या रक्त और मांस के नहीं बने हैं? कैदियों, अभियुक्तों से लोगों में जो सहजात-घृणा, स्वाभाविक वितृष्णा

होती है, विधाता ने जसे उन्हें दिया ही नहीं। उन्हें यह भी मालूम है कि वह अदालत से जघन्य अपराध में दण्डित हुई है। जीवन के जिस मार्ग को पकड़कर वह यहाँ तक पहुँची है, वह पथ ही कीचड़ और कालिमा से भरा है। क्या कालिमा का कोई चिन्ह उसके उदारता भरे नेत्रों की दृष्टि में नहीं पड़ा? सभ्य समाज ने जिसे अवांच्छित समझ कर कूड़े में फेंक दिया है उसे ही वह दोनों हाथों से उठा कर अपने शुद्ध एवं पवित्र जीवन के साथ मिला कर अपने में समेट लेना चाहते हैं। प्रसन्न सरल हास्य में ही सब द्विधा और सन्देह को उड़ा कर दृढ़ कण्ठ से उन्होंने कहा, "तुम जो हो उतना ही परिचय काफी है और अधिक कुछ जानना भी नहीं चाहता।"

किन्तु वह न चाहते हुए भी तो अनजान नहीं रह सकते। भूलना चाहते हुए भी तो भूल नहीं सकते। उनके सामने अपने को स्पष्ट करके रखना ही पड़ेगा। दूसरा और कोई भी रास्ता नहीं है। हेना ने एक बार मन में सोचा इसी क्षण वह दौड़ कर जाय और अपने को उनके चरणों में डाल दे। उनके दोनों चरणों को पकड़ कर कहे, "मेरे देवता, तुम जिसे चाहते हो वह मैं नहीं हूँ। वह कल्पना का एक मिथ्या रंगीन रूप है। तुम्हारे इस करुणामय अन्तर की माधुरी से मिल कर उसका जन्म हुआ है। वह तुम्हारी सृष्टि है, मेरे विधाता की सृष्टि नहीं। मेरे प्रियतम, तुम्हारे पास से जो मैंने पाया है उसकी महानता को केवल मैं ही समझ सकती हूँ। किन्तु यह बातें कैसे भूली जा सकती है कि उसके एक कण को भी पाने की अधिकारिणी नहीं हूँ। केवल मन बहलाने से तो काम नहीं चलेगा। तुम मुझे समझ लो। अपने अतीत, अपने वर्तमान और अपने भविष्य मैं को लेकर जो मेरा परिपूर्ण रूप है उसे मुझे अपने सामने रखने दो। उसे जब देख लोगे तब तुम्हारे दोनों पवित्र नेत्र घृणा के भाव से भर उठेंगे और तुम मुँह फेर लोगे। दिल टूट जाने पर भी मैं इस दुःख को सह लूँगी। किन्तु मिथ्या और नकली रूप के साथ तुम्हें धोखा देने से

मुझे जो दुःख होगा उसकी यंत्रणा मैं एक दिन भी नहीं सह सकूँगी।"

उत्तेजना आवेग से हेना बिस्तर पर उठ बैठी। बार-बार सिर झुका कर कहने लगी, "यह बात उनसे कहना ही होगा। वह सुनें या न सुनें पर निःसंकोच और निष्कपट भाव से अपने घृणात्मक रूप को उनके सामने स्पष्ट करना ही होगा—जीवन के अन्धेरे कण को खोल देना होगा—जिसमें स्तूपाकार सा पाप, अपराध और कलंक का बोझ है।"

गहरी क्लांति से सारा अंग जड़वत् हो गया। धीरे से हेना फिर बिस्तर पर लेट गयी। पश्चिमी आकाश के किसी प्रदेश से चाँद के एक टुकड़े ने अपनी क्षीण ज्योत्स्ना खुले जँगले में से भीतर भेज दिया था। उस फीकी रोशनी में वह अपने-आप को देखती रही। उसे लग रहा था कि किसी ने उस पर अपनी माया को चला दिया है और अपने जीवन के प्रति एक रहस्यमयी ममता का उसने अनुभव किया। क्षण भर पहले ही जिन कठोर संकल्पों से उसने अपने मन को दृढ़ बंधन में बाँधा था उसकी गाँठें जैसे ढीली पड़ने लगीं। मन में आया उसे ढँका ही रहने दे। जीवन के जो दिन आँखों से ओझल हो चुके हैं उन पर विस्मृति का ही आवरण पड़ा रहने दे। उन्हें खोलने की जरूरत ही क्या? कुहासा की स्निग्ध माया यदि किसी के मन पर मोह रचना करती है तो सूर्य के तेज प्रकाश से उसके स्वप्न को तोड़ने से क्या लाभ? वह तो अपनी इच्छा से किसी को छल कर के भुलावे में तो डालती नहीं है। फिर भी कोई भूला रहना चाहता है और अपनी भूल को सुधारना नहीं चाहता तो उसके अनागत जीवन की सम्पदा के रूप में उस भूल की फसल को फलने क्यों नहीं देती?

दूसरे दिन जब आँखें खुलीं तो पूर्व दिशा से जँगले के भीतर कोठरी में कुछ धूप आ चुकी थी। वह हड़बड़ा कर उठी तो देखा मोना की माँ पास ही खाट पर बैठी उसकी ओर देखती हुई हँस रही थी। हँसते हुए वह बोली, "आज तुम हार गयीं दीदी,

मैं तुमसे पहले ही उठ बैठी।"

हेना ने लज्जित होकर कहा, "मुझे पुकार क्यों नहीं लिया ?"

"आ हा, गहरी नींद में सो रही थीं इसी से पुकारा-वकारा नहीं। क्यों शरीर तो ठीक है न ?"

"हाँ जा, हाँ, बात-बात में मेरा शरीर नहीं खराब हुआ करता।"

बिस्तर से उठ कर एक बार चारों तरफ दृष्टि डाल कर फिर हेना ने कहा, "सब तो समझी, पर मुझे भी नहीं जगाया और खुद भी गौरा जैसी बैठी रहीं। चारों तरफ वैसा ही गंदा पड़ा है। आज फिर बाहर के अस्पताल में जाना है—याद है न ?"

"नहीं माँ अब मेरे वस का यह सब नहीं। दवा-दारू तो यहीं अच्छी हो रही है। इससे ही जो होना होगा सो होगा। यह बूढ़ी हड्डियाँ अब बहुत खींचातानी नहीं सह सकतीं।"

"नहीं सह सकतीं कहने से तो काम नहीं चलेगा ?"

"खूब चलेगा। तुम जरा डाक्टर बाबू को समझा दो। तभी वह सुनेंगे।" फिर क्षण भर मौन रह कर उदास स्वर में बोली, "अगर तुम दोनों के हाथ लगने से यह रोग नहीं जा सकता तो समझ लो स्वर्ग में जाने से भी वह ठीक न होगा।"

'तुम दोनों के हाथ से' सुन कर ऐसा लगा जैसे हेना के कोमल हृदय को किसी ने छू लिया हो। हृदय में एक गहरी टीस सी उठी। पर कोई जवाब न देकर कपड़ों को लेकर वह बाहर नल की तरफ चली गयी।

देखने में स्वस्थ हो जाने पर भी यक्ष्मा रोगी के संबंध में चिकित्सक को चिन्ता सहज ही नहीं छोड़ती। दवा-दारू सब बन्द हो गया है। धीरे-धीरे वज़न भी बढ़ चला है! तब भी डाक्टर के हाथ से उसकी छुट्टी नहीं। बीच-बीच में जाकर उसे एक्सरे कराना होगा

और फिर एक्सरे प्लेटें ली जायँगी। उन्हीं हाड़-पंजरों को रोशनी के सामने रख कर विशेषज्ञ देखेंगे कि किस कोने में सर्वनाश करने वाले सूक्ष्म यमदूतगण छिपे हैं। धीरे-धीरे उनके चेहरे पर गंभीरता छा जायगी। तीव्र उत्कण्ठा से प्रतीक्षा करते हुए रोगी के आत्मीयजन की ओर देख कर वह कहेंगे 'नहीं अभी एक कोर्स और लेना पड़ेगा।' उसके बाद पैड खींच कर प्रेसक्रिप्शन लिखेंगे और उसके साथ ही राजसी भोजन की खाद्य तालिका फिर चलेगी।

बूढ़ी के साथ भी यही होगा। विशेषज्ञ के निर्देश के लिए एम्बुलेन्स पर चढ़ कर उसे बाहर के अस्पताल में जाना पड़ा। उसे भेज देने के बाद हेना के हाथ में कोई काम न था। शरीर कल से ही थका-थका सा था। उस पर से मन भी बहुत खिन्न था। वह चुपचाप बिछौने पर लेटी रही।

"डाक्टर से मुलाकात हो गयी और इस बार उनसे बातचीत भी हुई।" कहती-कहती कमला अन्दर आयी, "ओ माँ, यह क्या आज इसी वक्त से सो रही हो?"

हेना एक तरफ खिसक कर बोली, "हाथ में कुछ काम तो था नहीं, क्या करती? लेट गयी। बैठो न! डाक्टर ने क्या बताया?"

कमला उसके बगल में ही लेट कर बोली, "जानती हो दीदी, मैं तो बहुत डरी हुई थी। पता नहीं क्या-क्या पूछेंगे। कैसे क्या उत्तर दूँगी? पर यह सब कुछ नहीं हुआ। खाली इतना बोले कि, 'क्या कष्ट है बताओ?' मैंने कहा, 'गाँठों में दर्द होता है?' 'अभी तक क्यों नहीं बताया था? रोग को कहीं पाला जाता है?' इतना कह कर सुशीला मासी माँ से कहा, 'कम्पाउन्डर बाबू को भेज रहा हूँ। खून लेना होगा।' जाते समय फिर मेरी तरफ मुड़ कर बोले, 'कोई डर की बात नहीं। कुछ इन्जेक्शन लगने से सब ठीक हो जायगा।'.... बातें उनकी इतनी मीठी थीं कि जैसे लगा मेरी आधी बीमारी तो तुरन्त ही ठीक हो गई।"

हेना ने सहसा प्रश्न किया, "मासी माँ क्या कर रही हैं ?"

"क्यों ?"

"कुछ काम है ?"

"अब उनसे क्या काम है ?"

"शाम को उनको लेकर दफ्तर जाना है।"

"दफ्तर !" कमला खिलखिला कर हँस पड़ी, "क्यों, कोई नौकरी मिल गयी है क्या ? उन बाबू का क्या नाम है ? कई दिनों तक बेचारे सजधज कर चक्कर काटते रहे। उन्हीं के दफ्तर में न ?"

इस बात पर हेना भी हँस पड़ी। उसके बाद फिर गंभीर होकर बोली, "नहीं रे मज़ाक नहीं, जेलर साहेब के पास जाना है ?"

कमला ने विस्मय से पूछा—"जेलर साहेब के पास ?"

"हाँ ! ऐसा लगता है कि सचमुच अब तुझे छोड़ जाऊँगी कमला !" कह कर उसकी हथेलियों को अपने हाथ में ले लिया।

कमला चौंक सी पड़ी, "छोड़ जाओगी ! कहाँ ?"

"और कहाँ, और किसी दूसरे जेल में। हाँ वह राजी हो जायँ तो।"

कमला ने निःश्वास को दबा कर कहा, "समझी, आश्चर्य तो है कि तुम ऐसे आदमी के पास से भी भाग रही हो ?"

"नहीं रे, भाग तो मैं अपने आप से रही हूँ। मैं अब स्वयं अपने पर विश्वास नहीं कर सकती।"

कमला कुछ देर तक उसके गंभीर और मुरझाए हुए मुख की ओर देखती रही, फिर बोली, "उस दिन जो मैंने कहा था, वही आज भी कहूँगी। तुम भूल कर रही हो दीदी !"

"क्या करूँ बोलो ?" कातर कण्ठ से हेना ने कहा, "विधाता ने उन्हें दो बड़ी-बड़ी आँखें देकर भी जैसे नहीं दी हैं। तू मुझे उससे लाभ उठाने को कह रही है ?"

"नहीं, उन आँखों को खोलने के लिए अपने को छोटा करके

हेय मान कर उनके सामने खड़ी होने को कह रही हूँ।"

"यह तुम्हारी भूल है कमला! मैंने अपने को न तो छोटा ही किया और न हेय ही बनाया है। हाँ उन्हें अपना सच्चा रूप अवश्य बताना चाहती थी।"

"हाँ, बिल्कुल सच्चे दुकानदार की तरह न, जो अपने खरीददार को सावधान कर देता है कि सामान देख-सुन कर लेना सर! जिससे कहीं ठग न जावें।"

कमला के श्लेष भरे स्वर अब तेज हो उठे थे। एक बार वह सोचने लगी कि वह अपने को कहाँ से कहाँ खींचे लिए जा रही है, फिर उस उदार सरल व्यक्ति की तरफ से जिसकी तरफ एकमात्र देखने मात्र से अपने आप को भूल जाना पड़ता है।

"जो इच्छा करे वही दे न! कौन मना करता है।" मुँह दाब कर हेना ने मुस्करा कर कहा।

"यही बात तो मैं पहले से ही कह रही हूँ। अगर मैं तुम्हारी जगह पर होती तो तुम्हारे पास सलाह लेने न आती। इसे मज़ाक न समझना दीदी। तुम मुझसे भले ही उम्र में बड़ी होगी। विद्या-बुद्धि में तो और भी बड़ी हो। फिर भी मूर्ख छोटी बहिन की इस बात को हँसी में मत उड़ा दो। यह तुम्हारा खरीदने-बेचने का बाज़ार नहीं है। यहाँ तो जो आँख बन्द कर सकता है वही पाता है और जो हिसाब का खाता खोल कर बैठता है वही ठगा जाता है। तुम क्यों नहीं अपने को ही पहिचान रही हो? तुम तो उनका कुछ जानना नहीं चाहतीं। आँखें बन्द ही तो कर लिया है। यही बात सभी के हृदय में है। उनके समय पर भी वह...."

"वाह! यहाँ खूब लेक्चरबाज़ी हो रही है और उधर कम्पाउन्डर बाबू कभी से आकर सुई लिए बैठे हैं।" कहती-कहती सुशीला जमादारनी आकर बीच में ही बातचीत का सिलसिला खत्म करने के लिए आ खड़ी हुई।

कमला ने दाँत से जीभ को दबा कर झट-पट उठ कर कहा, "अभी आ रही हूँ मासी माँ।" इतना कह कर वह बाहर निकल गयी।

कमला की आखिरी बातें हेना के मन में समा गयीं। किन्तु उस आवेश को हटने में भी बहुत समय नहीं लगा। बातों का मोह बड़ी घातक चीज़ है। आदमी की इतनी बड़ी प्रतारणा होती है जितनी और किसी चीज़ से नहीं। सत्य को भुलाने और वास्तविकता की ओर से आँखें हटाने में इसका और कोई मुकाबला नहीं कर सकता। इन्हीं बड़ी-बड़ी बातों में कमला पड़ कर आज अपने को खो बैठी है। वह भूल गयी है कि एक दिन वह भी ऐसा न कर सकी थी। वह पहली नौकरानी की सलाह मान कर जीवन के चरमतम अभिशाप को सनत् से छिपाए रखती तो वह आज अपने पुत्र और पति के साथ घर-परिवार बाँध कर बैठी होती। स्वयं वह कुछ भी होती पर लोग उसे सती-साध्वी, स्वामी-सौहागिनी ही कहते। सभ्य समाज की पुण्यवतियाँ उसके पति-भाग्य पर ईर्ष्या करतीं। इतने उज्वल भविष्य का आकर्षण रहने पर भी वह खामोश नहीं रही थी। कमला ने जैसे उसके कारणों पर विचार नहीं किया। किन्तु कारण मामूली सा है—वह जो उससे प्रम करती थी। प्रेम भी बड़ी विचित्र वस्तु है। वह अनेक दुःख सह सकता है, मन के आघात सह सकता है, केवल झूठ के साथ ही उसका विरोध है, प्रवंचना के साथ उसका गुज़र नहीं।

फाटक पर रस्से में लटकता घन्टा जोर-जोर से बजने लगा। निश्चय ही कोई आ रहा है। जेलर होंगे या कोई विज़िटर नहीं तो स्वयं बड़े साहब। किन्तु आज तो बड़े साहेब की फाइल नहीं। जब तक कोई बहुत बड़ी बात नहीं होती तब तक फीमेल वार्ड में बेसमय सुपर का आना तो होता नहीं। सहसा जमादारनी के तेज हुंकार से पूरा वार्ड काँप उठा—'स्काड स्टेन्शन्।' सुशीला का यही पेटेन्ट मिलिटरी कमान्ड था। यह कमाण्ड देने के लिए क्षेत्र विशेष में जमादारिनिएँ तीन 'स्वरग्राम' व्यवहार करती हैं। जेलर साहब के आने पर 'उदारा',

कोई विज़िटर आने पर, 'मुदारा,' और बड़े साहेब के समय, 'तारा'। हेना को सन्देह हुआ यह तो सर्वोच्च 'परदा' है। वार्ड में, वर्कशाप में या आसपास जहाँ कहीं भी कोई हो उसे दूसरे सभी के साथ खड़े होकर सलाम करना पड़ता। फिर सुशीला के 'आजबर' कहने पर सबको बैठ जाना पड़ता। जेल में पहली बार आने के बाद से हेना जमादारिनी और जमादार के मुख के वह इन विचित्र बोलियों को रोज सुनती आ रही है—पर वह अभी तक नहीं जान सकी कि यह बातें क्या हैं और यह किस देश की भाषा है। एक बार पिकेटिंग या प्रोसेशन के लिए कई स्वदेशी महिलाएँ जेल में आयी थीं। उनमें से एक ने उसे बता दिया था कि इनका कहने का मतलब है स्क्वाड् अटेन्शन (Squad Attention)। उसने यह भी सुना कि यह बातें सब हाल की ही हैं—पहले कहा जाता था—'सरकार सलाम !' इसी महिला से उसने पहली बार सुना था 'बन्देमातरम्'। उस कुख्यात शब्द के साथ लाँछना का एक इतिहास भी जुड़ा हुआ है। वह एक दिन 'सरकार सलाम' अदा करने गयी थी तो देखा सरकार के बहुत से कोड़े दो टुकड़े हो गए, कितनों का ताजा मांस भी बेंत के साथ निकल आया और कितनों की हड्डियाँ भी बूट के ठोकरों से टूट गयीं, फिर भी 'स्वदेशी' महिलाओं को दबाया न जा सका। उसके बाद एक दिन रातो-रात 'सरकार सलाम' की जगह 'स्क्वाड एटेनशन' ने ले लिया। किसी तरह सभी की रक्षा हुई। हाँ जमादार और जमादारिनों को जरूर इससे मुश्किल हुई। कट-मट विदेशी भाषा के यह शब्द भिन्न-भिन्न मुखों से भिन्न-भिन्न विचित्रताओं के साथ निकल कर कैदियों के लिए हँसी का एक साधन बन गए।

हेना ने कई जूतों के शब्द सुने जो नींबू के पेड़ों के पीछे से उसकी तरफ बढ़ते आ रहे थे। वह झटपट उठ खड़ी हुई। इतने में सुपर साहेब अपने दल के साथ सामने आ गए। उसे देखकर अंग्रेजी में उन्होंने प्रश्न किया, "यह कौन है ? यहाँ क्या कर रही है ?"

जेलर साहेब ने कहा, "यह यहाँ के टी. बी. केस की देखभाल करती है।"

"आई सी।" पतली छड़ी को अपने पैरों पर ठोकते हुए अपने शरीर को कुछ आगे की ओर झुकाकर सुपर साहेब ने कहा, "बाई दी बाई, दैट ओल्ड उमेन इज़ नाट कमिंग बैक। सिविल सर्जन को कहकर मैंने उसके लिए वहीं एक बेड की व्यवस्था कर दी है। यहाँ किसी को रखने की जरूरत नहीं है।" फिर जेलर की तरफ देखकर हेना की तरफ इशारा कर के बोले, "गिव हर सम हार्ड वर्क टु डू।"

दल-बल के साथ बड़े साहेब वापस हो गए। रास्ते में नींबू के पेड़ों के ओर उन्होंने छड़ी को उठाकर पेड़ों की ओर इशारा कर के कहा, "लुक्स मोर लाइक ए विनयार्ड दैन ए लाइम आरचर्ड। इन सब कुञ्ज-टुञ्ज का यहाँ न रहना ही ठीक है।" इतना कह कर देवतोष के चेहरे की ओर एक तिरछी दृष्टि डाली।

दो-एक जगह राउन्ड कर के आफिस में लौटने पर सुपर साहेब फिर इसी प्रसंग पर आए। बोले, "लुक हियर जेलर, फीमेल वार्ड के सबंध में हमारा एक विशेष दायित्व है। वहाँ जो भी रहती हैं उसमें कोई भी सती-साध्वी नहीं होतीं। इसलिए उनके दैहिक स्वास्थ्य को देखते हुए नैतिक स्वास्थ्य पर भी दृष्टि रखना आवश्यक है। वह स्वयं अच्छी हों या न हों इसे छोड़ो, किन्तु हमारा यह स्टाफ जो उनके सम्पर्क में आता है वह न बिगड़ने पावे, उस पर तो कड़ी नज़र रखना ही होगा। आप का क्या ख्याल है?"

तालुकदार ने सिर झुकाकर चुपचाप सुना। पर अफसर को अभी भी प्रतीक्षा करते देखकर वह बोले, "नज़र तो सभी तरफ रखनी पड़ती है। उनमें भी भली-बुरी सभी होती हैं।"

"यू आर राइट। फिर भी मुझे अपने स्टाफ का ही हित अधिक देखना चाहिए। मैं समझता हूँ इस विषय में चिन्तित होने का कारण हुआ है। डोन्ट यू थिंक सो?"

तालुकदार ने कहा, "मुझे तो ऐसा कुछ मालूम नहीं।"

सुपर ने विस्मय के साथ कहा, "फर्स्ट एस. ए. एस. आर. और उस लड़की के सबंध में आप के कानों तक कोई बात नहीं आयी?"

"वह तो कुछ कुछ आयी है। इन सब बातों को लेकर ही जो माथापच्ची करते हैं वे ही दूसरों का कान भरते हैं। जहाँ तक मैंने देखा है उन लोगों की तरफ से कोई शिकायत की बात मुझे नहीं मिली।"

"ओह, नो, नो, आप भूल समझ रहे हैं। मैंने किसी से विशेष रूप में यह बातें नहीं सुनी थीं। फिर भी उनके बीच इतनी अनडिज़ायरेबिल घनिष्टता देखी जाती है, जिसे रोमैन्टिक रिलेशन्स कह सकते हैं। मेरी समझ से यह बात गलत नहीं है। दी डाक्टर मस्ट बी ए फूल। ऐसा लगता है वह इस लड़की को कोई हिरोइन, टिरोइन समझ बैठे हैं। आई अडमिट शी हैज़ चार्म्स एण्ड अपिएरेन्स टू बी रेस्पेक्टेबिल; बट आफटर आल शी इज़ ए क्रिमिनल!"

जेलर साहेब ने इस बात का कोई भी जवाब नहीं दिया। मन में आया इस अफसर की उदारपन्थी और अति आधुनिकता प्रेमी के रूप में प्रसिद्धि है। सामाजिक जीवन में सयाने लड़के-लड़कियों को स्वतंत्रतापूर्वक मिलने-जुलने के वे पक्षपाती हैं और इस सबंध में वे जाति, वर्ण और इसके सब कृत्रिम बंधनों को भी स्वीकार नहीं करते। उनकी अपनी लड़की के सम्बन्ध में तरह-तरह की अप्रीतिकर जनश्रुति है। पर वे उन पर विश्वास नहीं करते और लड़की और उसके पुरुष मित्रों को बढ़ावा देते रहते हैं। ऐसे व्यक्ति का भी जो आज की इस बात से विचलित हो उठे हैं कुछ अजीब सा लगना आश्चर्य नहीं है। उसका कारण स्पष्ट है 'आफ्टर आल शी इज़ ए क्रिमिनल।"

यह ऊँची-ऊँची दीवारों से घिरी हुई जगह दुनिया से विछिन्न ही नहीं, सर्व प्रकार से भिन्न है। यहाँ के रहने वालों का बाहर के रहने वालों से केवल आकृति का और शारीरिक ढाँचे मात्र का मेल

है। उसी समय उन्हें याद आया कि बचपन में स्कूल की किताब के किसी पाठ में अँग्रेजी कवि की कई लाइनें पढ़ीं थी—जिसमें एक लाइन यह भी थी—"Stone walls do not a prison make, nor iron bars a cage..." उस समय तक कभी भी जेल से लौटे किसी कैदी को भी नहीं देखा था। यदि वह देख पाते तो समझते कि इतनी बड़ी गलत बात और कोई नहीं है। आदमी से आदमी के बीच दुर्लघ्यं भेद पैदा कर सकतीं हैं तो केवल यही स्टोन वाल्स और आयरन बार्स। यही दो चीज़ें जितना भेद पैदा कर सकती हैं उतना और कहीं न तो देखा गया है, और हो सकता है कभी भी देखा भी न जाय।

जेलर को खड़े देख कर बड़े साहब मन ही मन आश्वस्त हुए। अन्तरंग स्वर में वे बोले, "आप ही विचार कर के देखें, यह सब स्कैण्डल हमें बन्द करना ही होगा। फिलहाल वहाँ का अस्पताल तो बन्द ही कर दिया गया। यदि इसी तरह से और भी कुछ ड्रास्टिक करने की जरूरत हो तो उसे भी करना होगा। अच्छा इस घोष को...."

टेबिल का टेलीफोन घनघना उठा। साहब ने रिसीवर को उठा लिया। मौका पाकर जेलर कमरे में से बाहर आए।

अपने कमरे में आने पर देखा, टेबिल पर कागज़ों और रजिस्टरों का बड़ा पहाड़ लगा था। बगल की एक चेयर पर देवतोष बैठे थे। बहुत जरूरी काम न रहने पर डाक्टर कभी भी इस समय नहीं आते थे। उनके चिन्ताग्रस्त चेहरे की ओर देख कर तालुकदार ने कहा, "कहो, तुम्हें अब क्या जरूरत है? समझ में आता है उस कालरा रोगी को क्या हटाने की जरूरत है, उसे भी सदर अस्पताल भेजना चाहते हो क्या? होगा नहीं गार्ड कोई नहीं है, उसे मरना है तो उसे तुम अपने हाथों ही मरने दो।"

"नहीं, नहीं उसे अब कहीं भेजने की जरूरत नहीं है। वह तो अब बिल्कुल ठीक हो गया है।"

"फिर क्या बात है ? अब क्या किसी को कोढ़ या चिकेन पाक्स हो गया है ? उन सब को तुम अपने अस्पताल के ही एक कोने में रखो। 'सेल' नहीं दे सकता। सब में पागल हैं।"

"इन सब बातों के लिए भी मैं नहीं आया दादा ! मैं अपने निजी काम से आया हूँ।" कह कर एक टाइप किया हुआ कागज़ डाक्टर ने आगे बढ़ाया। तालुकदार ने हाथ बढ़ा कर उसे लेकर कहा, "यह क्या है ?"

"पढ़ कर ही समझ लेंगे।"

कागज़ पर सरसरी नज़र डाल कर म्लान हँसी के साथ जेलर साहेब बोले, "समझा ! कालरा नहीं, कोढ़ भी नहीं। उससे भी बड़ा घातक कुछ है।"

डाक्टर ने कोई जवाब न दिया। उठते हुए वह बोले, "अच्छा अभी चलूँ। आपके मुअक्किल लोग ताँता बाँधे खड़े हैं। मेरा भी बहुत सा काम बाकी है।"

जेलर साहेब हठात् अन्यमनस्क हो उठे। डाक्टर के जाते-जाते उन्होंने पूछा, "एक बात पूछूँगा। तुम्हारी इस छुट्टी की दरख्वास्त के साथ आज की बात का तो कोई सम्पर्क नहीं है ?"

"नहीं, दादा ! छुट्टी की बात मैं कई दिनों से सोच रहा था। कल रात को ही मैंने जाकर स्थिर और आज सुबह से ही यह दरख्वास्त जेब में लिए घूम रहा हूँ।"

कुछ देर खामोश चेयर की पीठ पर हाथ रखे हुए खड़े रहे, फिर बोले, "अप्लीकेशन तो दे दिया है। अब कितने दिनों तक झुला रखेंगे कौन जाने ? इसे आप भेजेंगे, मंजूर होगी, फिर कोई मिलेगा तभी तो छुट्टी देंगे—अभी एक महीने का झंझट तो रहेगा ही फिर भी आप यदि एक बार बड़े साहब को समझा देंगे कि आर्डर की अपेक्षा न करें तो मुझे छुट्टी दे सकते हैं। डॉक्टर सेन तो हैं ही। जरूरत पड़ने पर पुलिस अस्पताल के मल्लिक भी देखभाल कर जाने के लिए

राजी हैं। एक बार कह कर देखिए न।"

तालुकदार कुछ देर डाक्टर के चेहरे की ओर देखते रहे, फिर बोले, "तुम बेफिक्र रहो। तुम्हें मैं कुछ ही दिनों में छोड़ दूँगा।"

डाक्टर कुछ देर तक स्तब्ध खड़े रहे, फिर धीरे-धीरे बाहर चले गए। साथ ही साथ कैश बुक का बोझा लिए हुए हेडक्लर्क कमरे में दाखिल हुए।

इतने समय तक जिस तकिए के सहारे तालुकदार बैठे हुए थे उसे सिरहाने रख कर लेटते हुए वे बोले, "फिर? तुम्हारे मास्टर साहेब क्या कहते थे?"

देवतोष पास ही एक कैम्प चेयर पर बैठे थे। वह उस पर से उठ कर बोले, "ठहरें, आपके लिए सिगरेट ले आऊँ।"

"और तुम अपने वनमाली को एक कप चाय देने के लिए भी कहो। सचमुच वह एक उस्ताद चाकर है। वह जब चम्मच चलाता है उसी से यह बात समझी जा सकती है।........आल्यूज़न को नहीं समझे न?"

डाक्टर जिज्ञासु भाव से देखने लगे। तालुकदार ने कहना शुरू किया, "उस समय मैं हिन्दू होस्टल में था। हमारा वार्ड सर्वेन्ट वंशी था। फर्स्ट इयर के एक नए लड़के ने उसे चाकर कह कर पुकार दिया। वंशी इस पर बहुत नाराज़ हुआ। सरकारी नौकरी वह करता है; चाकर कहना भला उसे कब बरदाश्त हो सकता था? उसे हमारे महीतोष दा ने खूब ठण्डा किया था। उसे बुला कर उन्होंने कहा, 'वह मूर्ख है चाकर माने चाकर नहीं है। यह संस्कृत भाषा है। चा०, करोतिः, इति चाकर; तुम्हारी तरह चा कर कौन?'"

देवतोष हँसते-हँसते बोले, "इस कहानी को तो वनमाली को सुनाना होगा, देखता हूँ।"

"ऐसा काम भी न करना। अभी तो वह वैसे ही चढ़ा रहता है, इसके बाद तो वह सिर पर ही चढ़ जायगा। कितना महीना देते हो?"

"जब जैसा बन पड़ा। कोई हिसाब पत्तर नहीं।"

"मैं उसे किडनैप कर लूँगा सोच लिया है।"

"माफ करो दादा। ऐसा करने से फिर मेरा क्या होगा?"

"क्या यही हमेशा घर देखेगा क्या? एक घरनी तो लाना ही होगा?"

"कोई जरूरत नहीं। यही काफी है।" कह कर पास के कमरे में देवघोष चले गए।

आज सुबह ही देवतोष की छुट्टी मंजूर हो गयी। सन्ध्या से ही उनके सोने के कमरे में तालुकदार ने अपना आसन जमा दिया है। दो घंटा देखते ही देखते कट गया कुछ पता ही न चला। आज के वक्ता देवतोष हैं। वह बीच-बीच में दो एक संक्षिप्त प्रश्नों को पूछ कर उसके अन्तर की गहराई से उन बातों को संग्रहित किया था जो आज तक किसी को न मिली थी। डाक्टर सिगरेट लेकर वापस आए तो तालुकदार भी अपने पुराने प्रश्न पर लौट आए, "अब कहो तुम अपने पागल मास्टर की कहानी।"

डाक्टर अपनी उसी कैम्प चेयर पर फिर बैठते हुए कहा, "मुझ पर उनका विशेष स्नेह था। यद्यपि मैं ही सबसे अधिक शैतानी करता था। बीच-बीच में वह मुझे लेकर उस शहर से दूर किसी मैदान या नदी के किनारे घूमने जाते। कितनी ही बातें वह बताते। एक बात उनके मुख से प्रायः सुनता था कि "यह जो मैदान के पेड़-पल्लव, नदी-नाला देखते हो उन्हें हम विश्व प्रकृति कहते हैं, मनुष्य भी उसी का एक अंश है। वह भी इन्हीं की तरह रोज नूतन रूप में जन्म लेता है। इस आकाश का रंग जिस तरह बदलता है—क्यों बदलता है यह कोई नहीं जानता, कोई प्रश्न भी नहीं करता,—इसी प्रकार मनुष्य का भी रंग बदलता रहता है—मन बदलता रहता है। किन्तु

हम इन बातों को मानने को तैयार नहीं हैं। तर्क से हम उसे मान भी लें तो व्यवहार में उसे नहीं मानते। जोर के साथ हम कहते हैं कि अमुक यह नहीं हो सकता, तमुक यह बात नहीं कह सकता। फिर भी दोनों ही एक हैं, एक ही विधाता की सृष्टि हैं। दोनों के बीच एक ही लीला, एक ही वैचित्र्य खेल है। कल रात में तूफान उठा था कहने से आज उषा की हँसी तो बन्द होगी नहीं? उसी तरह जिस आदमी ने कल किसी के सीने में छूरा मारा था वही आज किसी को सीने से भी लगा सकता है। असल में वह दो मनुष्य है, उसके बीच बहुत अन्तर है। कल का बीभत्स रूप यदि सच है तो आज का यह मोहन रूप भी मिथ्या नहीं हो सकता।" गम्भीर आवेग के साथ मास्टर साहेब जब यह सब बातें कहते तब ऐसा लगता यह सब कोरी बातें नहीं हैं वरन् उनके मन का कोई प्रत्यक्ष सत्य बाहर निकल रहा है। उनकी आँखों से भी यही झलकता। उसके बाद फिर भूल जाता। दूसरे लोगों की तरह मैं भी कहता 'पगला मास्टर।' किन्तु उनका पागलपन भूत की तरह जैसे हमारे ऊपर सवार था। उनसे मुक्ति मुझे बहुत दिनों बाद आपके जेलखाने में आने पर मिली। मैंने देखा खूनी, डकैत, पाकेटमार, जुआखोर, गुण्डा कह कर जिनसे बहुत दिनों से भय करता आ रहा था, घृणा करता था, उन सभी के अन्तर में बैठने पर मैं समझ नहीं पाता कि उनमें और मुझमें क्या फर्क है। वह भी तो खुशी होने पर हँसते हैं, दुःख पाने पर रोते हैं, उपकार करने पर कृतज्ञ होते हैं, स्नेह करने पर स्नेह देते हैं, अपमानित करने पर क्षुब्ध होते हैं। हमारे अस्पताल का फालतू फटिक बागदी ने एक लड़की को सोने के हार के लिए गला घोंट कर मारा था। उस दिन जमादार की छोटी लड़की के फोड़ा का आपरेशन को देखा तो वह रोने लगा। भागा गया और कहीं से संतरे लाकर उस लड़की के हाथों में रख दिया। उस समय मैंने देखा उसकी आँखें खूनी की आँखें नहीं थीं।

चाहा ?"

"जितना जानना जरूरी था उतना ही जाना था।"

"वह क्या ?"

"कहीं भी उसे कोई बंधन नहीं है।"

"मेरी समझ से कोई बंधन न होने पर भी, हो सकता है कोई अड़चन हो—जिसे हम न जानते हों।"

"जान कर भी कोई लाभ नहीं दादा। उसका अन्तिम उत्तर पा चुका हूँ।"

"यह देखो, फिर मुझे दर्शनशास्त्र को उलटना पड़ा। संसार में अन्तिम कह कर क्या कुछ है ?"

डाक्टर के पास इस प्रश्न का कोई भी उत्तर न था।

— —

६

बड़े-बड़े जेलों के जमादारों के पास एकाध 'राइटर' रहते हैं। बहुत कुछ प्राइवेट सेक्रेटरी की तरह। पढ़ना-लिखना जानने वाले इत्मीनान के कैदियों में से यह होते हैं। किस नम्बर में कितने कैदी बन्द होंगे, कितने गए, कितने आए, किस-किस काम के लिए आदमी चाहिए, कहाँ छँटाई की जरूरत है; नए आने वालों के लिए 'काम पास' अथवा काम बाँटना, इन सब के अतिरिक्त कारागार के रोज-मर्रे के बहुत से छोटे-मोटे कामकाज का हिसाब रखना और जमादार की सहायता करना ही उन राइटरों का काम होता है। उनके हाथों में क्षमता भी बहुत होती है। काम बदलने के लिए गेहूँ पीसने से लेकर बागवानी, रसोईघर से झाड़ू का काम अथवा सड़क बनाने (Road repairing) से बत्ती जलाने (Lamp-lighting) तक के लिए 'राइटर बाबू' की ही सिफारिश करनी पड़ती है। साधारण कैदी से पहरेदार अथवा पहरेदार से 'मेट' पद के लिए भी जिसे आवश्यकता होती है उसे भी राइटर बाबू के सामने ही जाकर खड़ा होना पड़ता है। कारा-शासन-तन्त्र में बड़े जमादार की जो भी प्रतिष्ठा है वह अधिकतर उपयुक्त राइटर पर ही निर्भर करती है।

सुशीला बड़ी जमादार तो नहीं पर जनाना फाटक की जमादारनी तो है ही। उसका राज्य बहुत छोटा है, कामकाज भी थोड़ा है। फिर भी 'राइटर' की आकांक्षा उसके मन में बहुत दिनों से थी। महाबल

सिंह की तरह दो-तीन न हों फिर भी एक पढ़ना-लिखना जानने वाली अनुगत लड़की तो चाहिए ही—जो उसके पैरों के पास कम्बल बिछाकर बैठे और उसके निर्देशों को लिखती रहे कि अमुक को फटे कपड़ों की मरम्मत के काम से दाल दरने, अमुक को घास छीलने के काम से चावल साफ करने का काम दिया गया इत्यादि—इतना न होने से उसकी मर्यादा की रक्षा नहीं। किन्तु पढ़ना-लिखना जानने वाली कितनी लड़कियाँ जेल में आती हैं! कभी-कबाध कोई आ भी गयीं तो वह उसके मन की बात समझती नहीं। हेना जिस दिन से आयी, उसे देखकर उसके चाल-चलन, बातचीत को समझने के बाद सुशीला की वह सोई हुई आशा फिर जाग उठी। उसने मन ही मन यह तय कर लिया कि उसे और कोई भी काम न करने देगी, यही जमादारिन राइटर के पद पर रहेगी। किन्तु हेना उसके मन की बात नहीं समझ पायी। प्रस्ताव को उसने हँस कर उड़ा सा दिया, "आपका इतना सा काम कर देने में कितना समय लगेगा, मासी माँ! काम खत्म करके उसे तो दो मिनट में ही कर दूँगी।" सुशीला मन ही मन कुड़कुड़ा कर रह गयी। पर उसका काम तो ठीक से होने ही लगा। वह 'राइटर' नहीं हुई। जो दाल दरे, वही लिखे उसे तो कोई 'राइटर' कहेगा नहीं।

कुछ दिनों के बाद दाल दरने के काम से हेना टी० बी० वार्ड में चली गयी। उसके बाद बड़े साहेब के हुक्म से उसका काम वहाँ खत्म हो गया, तब उसे फिर किसी काम पर लगाने का प्रश्न सामने आते ही सुशीला के मन में फिर उसे 'राइटर' बनाने का स्वप्न जागा। हेना को बुला कर उसने कहा, "तुझे अब मस्सकत घर में नहीं जाना होगा। कुछ दिन बीत जाने दे। फिर मेरा ही सब कामकाज देखना-सुनना। मैं जेलर बाबू से बातचीत करके सब ठीक कर लूँगी।"

हेना इस बार सब समझ गयी, किन्तु वह साथ न दे सकी। उसके मन के कोने में एक पीड़ा हुई। बोली, "ऐसा नहीं हो सकता,

मासी माँ ! पहले जैसे आपका काम करती थी वैसे ही करूँगी । इन सब बातों को लेकर जेलर बाबू के पास आप न जाइएगा ।" आखिर में सुशीला ने भी सोचा कि उसी की बात ठीक है । इस मामूली बात को लेकर जब बड़े साहेब तक का माथा चक्कर खाता है तब उनके जैसे लोगों के सामने नाक रगड़ना ठीक नहीं है । वह जो करना चाहें वही करने देना अच्छा है ।

बहुत दिनों बाद फिर जब जाँते पर हेना जा कर बैठी तब रानी-बाला की डियुटी थी । दो-तीन लड़कियों के साथ ही साथ उसने भी मुस्करा कर कुछ कटाक्ष किया, वह सब हेना से छिपा न रह सका । अभ्यास छूट जाने से उसे दाल दरते समय बार-बार हाथ बदलना पड़ता था । कुछ देर तक देख कर रानीबाला ने बनावटी सहानुभूति के स्वर में कहा, "तुम्हें अगर कष्ट हो तो उसे रहने दो न ! बाकी दाल को और कोई दर देगी ।"

हेना ने सहज स्वर में उत्तर दिया, "नहीं, नहीं । कष्ट क्यों होगा ?"

"तुम्हारे 'नहीं' कहने से क्या, मैं तो देख रही हूँ । इसी से सोचा था, डाक्टर बाबू से कहूँगी कि तुम्हारा श्रम माफ कर दें ।"

कई लड़कियाँ खिलखिला कर हँस पड़ीं । कमला को कोई काम न था । वह दरवाजे पर ही बैठी थी । सहसा वह बोल उठी, "जरूरत होने पर उसे भी वह अपने आप ही कह लेगी । आपको और कष्ट करने की जरूरत नहीं पड़ेगी ।"

"तुम्हें तो मैं कुछ कह नहीं रही हूँ बेटी ।" रानीबाला तिलमिला कर बोली, "तुमको क्यों ऐसा जलन हो रहा है ?"

कमला कुछ कहना ही चाह रही थी कि उससे आगे ही हेना की एक दबी फटकार उसे सुनने को मिली । वह कुछ भी न कह कर चुपचाप उठ कर चली गयी । मस्सकत घर में कानाफूसी होने लगी ।

समय खतम हो रहा था । सभी जल्दी-जल्दी अपना हाथ चला कर काम खतम कर देना चाह रही थीं । इसी समय दरवाजे

पर रानीबाला की आवाज़ सुनाई पड़ी, "क्यों निस्तारिनी क्या खबर है ?" निस्तारिनी को लड़कियाँ भी पहचानती हैं। उसका नाम फालतू जमादारनी है। हिरासती लड़कियों के मुकदमें की तारीख पर उसे बुलाया जाता और उन्हें वह कोर्ट ले जाती और शाम को वापस कर जाती। इसके अलावा जब कोई कैदिन सदर अस्पताल जाती है अथवा किसी का दूसरे जेल में चालान होता है तब भी निस्तारिनी उनके साथ जाती है।

रानीबाला के प्रश्न के उत्तर में वह बोली, "अभी तो आ रही हूँ। एक चिट्ठी है।"

"चिट्ठी ! किसकी चिट्ठी ?"

"हेना के नाम !"

"यहीं तो है हेना ! कहाँ से आयी चिट्ठी ?"

"अस्पताल से।"

हेना के दोनों हाथ सहसा रुक गए। उसने सिर न उठा कर भी उसे लगा जैसे चारों तरफ सभी मुँह बन्द करके हँस रही हैं। रानीबाला ने जोर से कहा, "लाओ न चिट्ठी। डाक्टर बाबू ने दिया है क्या ?"

"नहीं, नहीं। डाक्टर बाबू ने नहीं," निस्तारिनी ने कहा, "दिया है उस बूढ़ी ने, उसका क्या नाम है ?

"मोना की माँ ?"

"हाँ, हाँ मोना की माँ ने ही।"

"ओ, समझी, तुम उसे लायी हो ?"

"क्यों नहीं दीदी ! इस तरह की जबर्दस्त बूढ़ी मैंने इस जन्म में कभी नहीं देखा।"

हेना का बुखार जैसे पसीना छूट कर उतर गया। उठ कर बाहर आयी और निस्तारिनी के हाथ से चिट्ठी ली। चिट्ठी क्या थी एक टुकड़ा फटा कागज़ था। किसी रोगी से लगता है उसने लिखा

कर भेजा था। केवल दो लाइनें थीं—"दीदी रानी, डाक्टर बाबू को कह कर वापस बुला लो। यहाँ रहने से तो मैं मर ही जाऊँगी।" हेना की दोनों आखें डबडबा आयीं। इस यक्ष्माग्रस्त बूढ़ी की सेवा करते-करते कब उसका मन उसके प्रति इतना घुलमिल गया, इसका वह पता भी न पा सकी थी। बूढ़ी उसे कितना चाहती थी और केवल चाहती ही नहीं भरोसा भी करती थी, इसका परिचय उसे कई बार मिल चुका था। वह जेल के बाहर जाकर भी जेल में आने के लिए छटपटा रही है। वहाँ की नियमित चिकित्सा, सुदक्ष नर्सों की सेवा-सुश्रूषा छोड़ कर डाक्टर बाबू और दीदीरानी के पास ही उसका प्राण अटका है। वहाँ से उद्धार पाने का जब कोई रास्ता नहीं मिला तब एक टुकड़ा कागज़ भेज कर दीदीरानी की शरण ली—जो उसकी तरह ही अथवा उससे भी अधिक असहाय है।

"ओ लड़की, जाकर बूढ़ी से क्या कहूँगी?"

निस्तारिनी की आवाज ने सहसा हेना का ध्यान भंग कर दिया। वह जाग उठी। निस्तारनी कहती गयी, "खाना नहीं, पीना नहीं। खाली एक ही बात उसके पास है कि—मुझे दीदी रानी के पास ले चलो।"

हेना ने कहा, "मैं तो उसे चिट्ठी दे ही नहीं सकती। आप ही उसे समझा कर कहिएगा कि वहीं पर रहने से वह जल्दी अच्छी हो जायगी। अच्छी हो जाने पर वह सब आप ही उसे यहाँ भेज देंगे। और खाना-पीना छोड़ेगी तो मैं बहुत नाराज़ होऊँगी।"

दूसरे दिन शाम को सुशीला को चार साढ़े-चार बजे आ जाना था। पर आयी सूरज डूबते समय। शाम का खाना खा-पी कर हेना अकेली गेट के पास ही टहल रही थी। सुशीला को देख कर उसने कहा, "आज इतनी देर कर दी मासी माँ?"

"मीटिंग में गई थी।" सुशीला के चेहरे पर एक प्रकार की उत्तेजना की झलक थी।

"मीटिंग ! कहाँ मीटिंग थी ?"

"जेलखाने के बड़े मैदान में ।"

"जेलखाने में भी मीटिंग होती है क्या ?"

"मैं तो यही जानती थी कि जेलखाने में यह सब नहीं होती और हमारे तीन कुलों ने भी कभी सुना नहीं, देखना तो दूर की बात । लेकिन आज मैं अपनी आँखों से ही देख आयी ।"

हेना का कौतूहल बढ़ गया । और निकट आकर बोली, "कैसी मीटिंग, मासी माँ ?"

सुशीला ने मन ही मन उस दृश्य को स्मरण करती हुई बोली, "हम लोगों के डाक्टर बाबू चले जा रहे हैं, कैदियों ने उन्हें बिदाई दी ।" थोड़ी देर ठहर कर वह फिर बोली, "लोगों से मैदान भरा हुआ था । वह ठीक सामने बैठे थे । पास में थे जेलर बाबू । और सभी बाबू लोग भी थे । कैदियों में से एक-एक करके आता था और उन्हें माला पहनाता था, सलाम करता था और कोई-कोई तो पैर छू कर प्रणाम करता था । सब देख कर आ रही हूँ । जेलखाने में बाइस बरस से हूँ । कितने ही बाबूओं को देख चुकी हूँ । कितने ही जेलरों की, डाक्टरों की बदली हुई, छुट्टी ले गए । आफिस में बाबू लोग बैठ कर कुछ चाय-टाय कर दी, किन्तु इस तरह का कैदियों का मेला कभी नहीं हुआ ।"

हेना ने और कोई प्रश्न नहीं किया । दूर आम के पेड़ की ओर देखती रही ।

सुशीला ने फिर शुरू किया, "कितना सुन्दर भाषण दिया था उन्होंने, एक बार अगर सुनती····?"

हेना मुस्करा कर बोली, "हाँ, मेरा और काम ही क्या है जो जेल के मैदान पर भाषण सुनने जाती ? क्या कहती हो ?"

"वह सब तो मैं खाक नहीं समझी पर बहुत अच्छा लग रहा था । कैदी लोग रो रहे थे । सभी के मुँह में एक ही बात थी कि ऐसे

बाबू अब नहीं आवेंगे !"

रस्सी में बँधा घन्टा बज उठा। जमादार लाकअप के लिए आ रहा था। सुशीला चटपट चली गयी।

बहुदर्शी जमादारनी ठीक ही कहती है। जेल के कोई अफसर जाते-आते रहें, बदली हो या छुट्टी लें पर कैदी उनकी विदाई इस अभिनन्दन के साथ करें ऐसी घटना कभी भी नहीं हुई थी। शासक एवं शासित का जो सम्बन्ध है—उसमें हृदय-वृत्ति का कोई स्थान नहीं। एक पक्ष हुक्म देगा, दूसरा पक्ष तामील करेगा और उससे अधिक कुछ नहीं। कभी अगर किसी ने हुक्म तामील करने में विलम्ब किया तो देखा यही जाता है कि अफसर विचलित हो उठते हैं। कैदी अगर किसी को स्नेह की दृष्टि से देखते हैं तो उन पर सरकार की संदेह दृष्टि रहती है। एक पक्षीय अनुराग के माने ही है दूसरे पक्ष का विराग। कैदियों में जनप्रिय होना लायल और जबर्दस्त अफसर का काम नहीं, नौकरी की दृष्टि से भी वह निरापद नहीं है। बन्दीगण यह बात जानते थे। तभी वह अपने प्रिय व्यक्ति के प्रति अपनी श्रद्धा-प्रीति मौन ढंग से ही रख कर शान्त होते। समारोह करके उसे प्रकाशित न करते। देवतोष को लेकर ही सहसा यह दुःसाहस का काम जेल के कैदियों ने कर दिया। उनकी तरफ से कई प्रतिनिधि जेलर साहेब के पास जाकर बोले वे सब इकट्ठे होकर डाक्टर बाबू को आन्तरिक श्रद्धा के साथ विदाई देना चाहते हैं। देवतोष पर साधारण बन्दियों के अनुराग और मनोभावों को तालुकदार न जानते हों ऐसी बात न थी। इस बात को सामयिक जोश कह कर उसे छोटा करके देखना भूल होगी इस विषय में वे निःसन्देह थे। तभी इस बात का समुचित गुरुत्व समझ कर ही उन कैदियों के आवेदन को लेकर सुपर साहेब के सामने पेश कर दिया।

साहेब तुरंत स्तब्ध हो गए। उसी डाक्टर को लेकर जेल की जो डिसीप्लीन समाप्त हो गयी है उसी की यह शोचनीय परिणति है। वे

और उनकी शासननीति जिसे अवांछनीय मानती है। प्रकारान्तर से जिन्हें छोड़ दिया गया है वे ही फेयरवेल देंगे ? मेजर साहेब के ओठों पर एक क्रूर हँसी खेल गयी। जेलर की ओर देखते हुए वे बोले कि, "उन लीडरों को बता दो कि मैंने उनके चैलेंज को एक्सेपट कर लिया है। फेयरवेल नहीं होने दूँगा। उसके बाद देखता हूँ उनकी दौड़ कहाँ तक है।"

तालुकदार ने अफसर के मन की बात को समझ कर शान्त स्वर में कहा, "उसमें वे ही सब जीतेंगे।"

"क्या मतलब ?" रूखे स्वर से मेजर ने जानना चाहा।

"आप जिसे चैलेंज समझ रहे हैं वही तो है उनके लिए इज्ज़त की बात। उनकी मीटिंग तो न हो सकेगी पर इसमें उनका क्या जायगा ? हाँ हम लोग मुँह नहीं दिखा पावेंगे।"

सुपर कुछ नरम हुए। कुछ देर तक सोच कर बोले, "तब उन लोगों के बच्चों का खेल होने ही देना चाहिए। यानी इगनोर करना ही आप चाहते हैं। ठीक है वही कीजिए।"

अन्ततोगत्वा मीटिंग हुई। विभिन्न वार्डों से कैदी आकर कतार से घास पर बैठ गए। उनके सामने चेयरों की एक लाइन पर बाबू लोग बैठे। बीच में बैठे देवतोष और उनके पास ही सभापति के आसन पर थे जेलर साहेब। समयोपयोगी एक भाषण देना पड़ा। बन्दियों में से भी किसी-किसी ने दो-चार बातें टूटी-फूटी भाषा में कहने की चेष्टा की। यह जितना बोलते थे उससे अधिक देर तक अटक-अटक जाते थे। देवतोष ने सभी का संक्षिप्त उत्तर दिया। उन्होंने कहा, "मैं अपने मित्रों की तरह ठीक जेलखाने का आदमी नहीं हूँ। अकस्मात् मैं आ गया और अकस्मात् ही जा रहा हूँ। यह बीच के दिन मुझे हमेशा याद रहेंगे।"

जेलखाने की नौकरी पाने का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा, "जब मुझे जेलखाने की नौकरी मिली तो मन ही मन मैं बहुत डर

रहा था। जितना भय था उससे अधिक लज्जा का भी मैं अनुभव कर रहा था। लोग कहेंगे जेल का डाक्टर है। छि। छिः! किन्तु आज मैं यह समझ रहा हूँ कि यहाँ न आता तो मेरे जीवन का बड़ा पक्ष अन्धकारपूर्ण ही रहता मेरे लिए। बाहर अस्पताल में जाकर हम व्याधिग्रस्त शरीर देखते हैं। यहाँ मैंने देखा व्याधिग्रस्त मन। किन्तु इन्हें अच्छा करने की औषधि हम नहीं जानते। मनुष्य के हाथ या पाँव में जब चोट लगती है उसे तो हम ठीक कर देते हैं, किन्तु जब उसके मन को आघात लगता है, वहाँ जब चोट दिखायी पड़ती है तब हमारे पास कुछ करने को नहीं रहता। अतएव कौन नहीं जानता उसी आघात और चोट से ही अपराध के अकुंर का जन्म होता है जिसे हम क्राइम कहते हैं। हमारे शरीर का ताप यदि बढ़ जाय तब हम उसे ज्वर कहते हैं। वह है शरीर का एक सामयिक विकार। उसकी दवा है, प्रतिकार है, जिससे विकार चला जाता है, रोगी फिर स्वस्थ और स्वाभाविक हो उठता है। किन्तु किसी कारण से मनुष्य के अन्तर का ताप जब बढ़ जाता है—उसके काम से, आचरण से विकृति का लक्षण दिखाई पड़ता है—हम उसे अपराध कहते हैं। उस अपराधी अर्थात् विकारग्रस्त मनुष्य को हम जेलखाने में लाकर बन्द कर देते हैं। उसे स्वस्थ करने के लिए, निरामय करने के लिए, तथा स्वाभाविक जीवन में उसे लौटा ले जाने के लिए हमारे शास्त्र में कोई विधान नहीं है। उसकी डाक्टरी भी हमने नहीं सीखी। सीखने की कोई व्यवस्था भी है हम नहीं जानते। यदि होती तो हम जैसे थर्मामीटर, या स्टेथेस्कोप से ज्वर का माप करते हैं, हृदय की धड़कन अथवा फुसफुस की शक्ति की परख करते हैं वैसे ही जो कुछ भी यंत्र होता उससे अपराधी के मन का ताप, उसके हृदय या मस्तिष्क की कुटिल गति का पता लगा लेते। तब हो सकता है इतने बड़े कारागारों, सिपाही-सन्तरी, गोली-बन्दूक की जरूरत न होती। जेलों के स्थान पर एक दूसरे प्रकार के अस्पताल ही बन गए होते। मानव

सेवा का एक नया द्वार और खुल जाता।"

बाबुओं की लाइन में कोई-कोई कानाफूसी करने लगे। किसी-किसी के चेहरे पर दबी हँसी दिखाई पड़ने लगी। देवतोष ने उसे लक्ष्य किया। बाद में उन्होंने कहा, "हमारे लिए यह सब कहना एक अनधिकार चर्चा थी। जेल के कानून-कायदे को मैं पूरा-पूरा नहीं जानता। आलोचना करना भी मेरा उद्देश्य नहीं है। मैं तो केवल अपनी अक्षमता का ही प्रकाश कर रहा हूँ। तुम लोगों के लिए मैं कुछ भी न कर सका, फिर भी तुम लोगों ने मुझ पर स्नेह किया इसे स्वीकार करते हुए कहूँगा कि इतने आदर स्नेह की मुझमें योग्यता नहीं है।"

सुशीला ने गलत नहीं कहा। डाक्टर की अधिकतर बातों को जिस तरह उसने नहीं समझा था उसी प्रकार कैदी लोग भी नहीं समझ पाए थे। फिर भी इन दुर्बोध बातों को सुनते-सुनते उनकी आँखें भर आने से नहीं रुकीं। बातों को समझने के लिए बुद्धि की जरूरत है, शिक्षा की जरूरत है। यह उनमें से बहुतों में नहीं है। किन्तु उसके पीछे जो सुर है उसे हृदय समझता है। लगता है उसका वहाँ कुछ अभाव न था।

कारण तो कुछ न था, कोई उपाय भी न था, फिर भी हेना के मन में एक अर्थहीन क्षीण आशा थी कि जाने से पहले वे एक बार आवेंगे। उसके साथ ही एक अशंका भी थी कि यदि वह आए और अपने उन दो उदार नेत्रों को उठाकर देखकर कहेंगे 'हेना मैं जा रहा हूँ,' तब वह क्या उत्तर देगी? हो सकता है उनके सामने ही माथा अपने आप ही झुक जाए। एक बार देख भी न सकेगी, कुछ बोल भी न सकेगी। कहने या सुनने के लिए है ही क्या? हो सकता है इसी से वह नहीं आए। किन्तु उसके पास न आवें न सही, और

भी तो बहुत सी लड़कियाँ हैं इस जनाने फाटक में जो उनके सामने बहुत ही ऋणी हैं। कमला है, बीना है जिसकी उन्होंने चिकित्सा शुरू की थी पर उसे पूरी नहीं कर के जा रहे थे। उनकी व्यवस्था अवश्य कर गए हैं। नए डाक्टर उनके ही निर्देशानुसार दवाइयाँ और इन्जेक्शन चला रहे हैं। फिर भी क्या एक बार आ नहीं सकते थे? क्या क्षति होती यदि कुछ मिनटों के लिए वार्ड के सामने आकर खड़े हो जाते, और लड़कियाँ एक-एक आकर अपना आन्तरिक श्रद्धानत निःशब्द प्रणाम दे सकतीं? क्षति हो या न हो पर वह नहीं आए। इसमें उन्हें दोष देने और फरियाद करने की बात ही क्या है? फिर भी उसे लगा कि उसके मन का एक कोना जैसे किसी अभाव को महसूस कर रहा है। उसमें एक पीड़ा, कुछ क्षोभ, कुछ अभिमान और कुछ तिरस्कार भर गया है। अर्थहीन वेदना से उसकी दोनों आँखें भर आयीं। मन में ऐसा लगा कि एक दिन कहीं एक आश्रय था। वह आज नहीं रहा।

देवतोष को गए एक सप्ताह से अधिक हो गया। बूढ़ी भी लौट कर नहीं आयी। नींबू के पेड़ों के पास का अस्पताल बन्द कर दिया गया है। कई दिन हुए जमादार से कह कर अपने रहने के लिए हेना ने एक सेल की व्यवस्था कर ली है। निर्दिष्ट श्रम निपटा कर सुशीला की फरमाइशों को पूरा करके जो समय बचता इसी छोटी सूनी कोठरी में काटती। सेल में प्रकाश की व्यवस्था नहीं थी। रात होने से पहले ही यहाँ रात का भोजन समाप्त कर के चले जाना पड़ता और सूर्य भगवान के अस्त होते-होते लौह कपाट बन्द हो जाता। प्रकाश वहाँ के लिए एक अनावश्यक विलास मात्र था। दो कम्बलों को बिछाने में समय ही कितना लगता है? दो मिनट। उसके बाद प्रकाश की क्या आवश्यकता? पढ़ने-लिखने के लिए? तृतीय श्रेणी के कैदियों के लिए यह अधिकार नहीं। यदि कहा जाय कि लायब्रेरी किसके लिए है? तो उसका उत्तर है वह तो केवल रविवार का रेक्रीएशन है।

रविवार के अतिरिक्त भी वह सुविधाएँ उनको साल में नौ दिन की दी जाती हैं जिन्हें जेल हालीडे कहा जाता है। यह होता है कोई न कोई पर्व का दिन जिसमें तीन हिन्दू, तीन मुसलमान, और तीन ईसाई पर्वों के दिन होते हैं। सभी धर्मों को एक दृष्टि से देखा जाता है। इन नौ दिनों में श्रम के बदले किताब पढ़ो चाहे दस-पच्चीस खेलो। किन्तु यह सब दिन में ही। जेल की रात केवल सोने के लिए है। बात करना चाहते हो तो अपने से ही करो। गाना भी गाना चाहते हो तो उसके भी सुर बाहर न निकलें। "Strict silence should be maintained at all times" जेल कोड में लिखा है।

कानून में जिसके लिए विधान नहीं है अथवा उसी तरह के सभी दूसरे कार्यों की व्यवस्था के लिए हेना ने कभी भी कोई सुविधा की माँग न की थी। आज इतने दिनों बाद अपने इस कठोर नियम को शिथिल करना पड़ा। बहुत सोच-विचार करने के बाद एक दिन सुशीला के दरबार में अपनी अरजी पेश की, "आपसे दो चीज़ें माँगने आयी हूँ, मासी माँ।"

सुशीला उस समय प्रसन्न थी। उसने कहा, "क्या एक रस्सी और एक कलश?"

"उसे तो आप दे न सकेंगी। देंगी भी तो कोई लाभ नहीं। उसके लिए एक पोखरा चाहिए नहीं तो वे चीज़ें किसी काम में नहीं आवेगीं।"

"तब तुम्हारे काम की क्या चीज़ है वही बताओ?"

"एक लालटेन और एक कापी।"

सुशीला का मुख गम्भीर हो गया। हरीकेन लालटेनों की संख्या निश्चित है। प्रत्येक लालटेनों के लिए तेल भी बँधा हुआ है, जाड़े में दो छटाँक और गर्मी में डेढ़ छटाँक उसे जलाने के हिसाब में भी बड़ी पाबन्दी है। एक भी फालतू लालटेन चाहने पर गुदामी बाबू को उपयुक्त कारण बताना पड़ता है, साथ ही एक छटाँक तेल के लिए

पता नहीं कितनी खुशामद-दरामद करनी पड़ती है। फिर भी इस छोटी सी चीज़ के लिए अपनी हार मान लेने से भी तो इतने बड़े जेल की जमादारिनी का मान कुछ भी नहीं रह जाता। विशेष रूप से जिसने कभी कुछ नहीं माँगा, देने पर भी जो लेने में संकोच करती है उसके इस छोटे से आग्रह को न रख सकी तो वह भी मन में क्या सोचेगी? काफी सोचने-विचारने के बाद सुशीला को अस्पताल की लालटेन का ध्यान आया। उसके चेहरे की गम्भीरता क्षण भर में ही समाप्त हो गयी और बोली, "लालटेन के लिए कोई चिन्ता नहीं। जमादार के आने पर ध्यान दिला देना, अस्पताल में जो लालटेन पड़ी है उसे बाहर निकलवा लूँगी।"

हेना इससे आश्वस्त नहीं हुई। बोली, "किन्तु उसे अगर वे वापस चाहें तो? अस्पताल तो बन्द हो गया है।"

'अरे नहीं, नहीं, वापस तो हम लोगों के चाहने पर ही होगी।"

मुँह से तो सुशीला ने भरोसा दे दिया पर उसके मन में भी इस विषय को लेकर उद्वेग कम न था। फिर भी तात्कालिक आवश्यकता तो पूरी हो ही गयी। दूसरा सवाल ही टेढ़ा था। जेल सुपर कैदी-विशेष को कागज़-कापी खरीदने की सुविधा दे सकते हैं, वह भी सरकारी खर्चे से नहीं कैदी के अपने पैसे से। हेना के पास तो कुछ भी रुपए-पैसे नहीं जमा थे। बाहर से भी कोई कापी अपना कोई आदमी किसी को दे जाना चाहे तो भी कोई रुकावट नहीं है। किन्तु ऐसी भी कोई संभावना न थी। आफिस की ओर से इस मामूली चीज़ को भी सुशीला कानूनन आफिस से नहीं दिला सकती थी। फिर भी वह स्वयं कापी खरीद कर अपनी स्नेहपात्री को देने के लिए व्याकुल थी। हेना उसकी अपनी कोई न थी, उसकी हिफाज़त में रक्खी गयी एक कैदिन मात्र है। उसके साथ इतनी विशेष घनिष्ठता अधिकारियों द्वारा अच्छी नज़र से नहीं देखा जायगा। विशेष रूप से बड़े साहब और कई बाबू लोग इस लड़की पर प्रसन्न नहीं हैं यह बात भी अब अज्ञात नहीं है।

अपनी असहाय अक्षमता का अनुभव कर के सुशीला का मुख करुण हो उठा। हेना की तरफ देखकर सान्त्वना के स्वर में बोली, "कापी लेकर क्या करेगी? किताबें तो हैं हीं, उन्हें ही पढ़।"

इस सान्त्वना के पीछे की असली स्थिति को समझकर हेना ने खुशी से कहा, "ठीक है; बीच-बीच में किताबें ही ला दिया करना। कापी अभी रहने दो। लालटेन की ही सबसे ज्यादा जरूरत थी।"

तिकड़म से कापी लाने की बात दोनों के बीच की ही गोपनीय बात नहीं रही एवं हेना की खुशी का स्वर किसी के हृदय में जा लगा। दो दिन तक सभी कामकाज करने, चलने-फिरने में भी उसके मन के एक कोने में काला मेघ छाया रहा। वह मेघ तीसरे दिन प्रातः उतरा, जब चार हाथ लम्बे चादर में लिपटी हुई एक मोटी जिल्ददार कापी बाहर निकली और उसे देखते ही हेना का मुख खुशी से सचमुच खिल उठा। दूसरे ही क्षण वह गम्भीर होकर बोली, "यह तो तुमने ठीक नहीं किया मासी माँ। वे लोग जान गए तो?"

"हाँ, जानेंगे तो मेरा ही सब कुछ करेंगे।"

"फिर, इस पर जेल की मोहर नहीं और न बड़े साहेब के हस्ताक्षर हा हैं। तलाशी लेने पर इसे तो उठा ही ले जाएँगे। मुझे तो सजा मिलेगी ही पर उसके लिए कोई चिन्ता नहीं किन्तु आपसे भी तो दुनिया भर की कैफियत तलब होगी?"

सुशीला के मन में भी यह चिन्ता कम न थी। कुछ सोचकर उसने कहा, "किसी समय यह कापी दे देना। मैं छिपाकर क्लर्क बाबू के पास ले जाकर इस पर जेल की सील लगवा दूँगी।"

"वाह, अब मैं यह कापी नही दूँगी!" बच्चों की तरह सिर झटकार कर हेना ने कहा, "अगर उन्होंने फिर वापस न किया तो? आने दो न तलाशी।" इतना कह कर आँचल के भीतर कापी को हेना ने बड़ी सफाई से छिपा लिया।

—०—

७

अकेले आदमी का सामान ही कितना। जो भी था उसमें भी दराज में भर कर छोड़ दिया तो बहुत थोड़ा-सा ही सामान रह गया। हाँ एक बड़े पैकिंग केस पर बरबस नज़र पड़ने की चीज़ अवश्य थी। उसमें किताबें भरी हुई थीं। चीज़ों की छँटाई कर देना कितना ही आसान हो पर आदमी की छँटाई करना कठिन हो गया। बनमाली को देश जाना होगा। नौकर को अकेले ही छोड़ देने की बिल्कुल इच्छा भी नहीं। उसे राज़ी करते-कराते आखिर में देवतोष को अपनी परिकल्पना में कुछ अदल-बदल करना पड़ा। निरुद्देश्य यात्रा पर निकलने से पहले कुछ दिन अपने विक्रमपुर के ग्राम वाले मकान पर जाकर रहने का उसे आश्वासन देना पड़ा। बहुत दिनों से माँ से भी नहीं मिल सका था। कुछ महीनों पहले यहाँ एक बार सुलोचना देवी आयी थीं। घर को बहुत दिनों तक छोड़ कर वह रह भी नहीं सकती थीं। पुत्र को बीच-बीच में चिट्ठी-पत्री भेजती रहती हैं किन्तु आने के लिए किसी दिन भी जोर दबाव नहीं डालतीं। किसी के कहने पर वह कह देतीं, "जब उसकी इच्छा होगी तब वह अपने आप ही आवेगा। वह अच्छा है मुझे तो बस इसी खबर से काम है।" देवतोष यह खबर नियमित रूप से भेजते ही रहते हैं। संसार में उनकी अकेली माँ ही तो है। केवल वनमाली के कारण ही नहीं वरन् स्वयं भी माँ के पास जाकर कुछ दिन रहने की उनकी गरज़ कम न थी।

नदी-नालों का देश ! स्टीमर स्टेशन से पचीस मील का नौका पथ था। सुबह रवाना हो जाने पर घर पहुँचते प्रायः शाम हो गयी। सुलोचना देवी घर-गृहस्थी के काम में व्यस्त थीं। उठान में धान सूख रहा था, राधू की माँ पैरों से उसे अलग कर रही थी। दादा बाबू को देखते ही वह ठिठक गयी। तड़-पड़ खबर पहुँचाने के लिए वह लपकी। खबर मिलते ही सुलोचना देवी उसके साथ बाहर आ गयीं और देवतोष को सामने देख कर बोली, "क्यों बेटा, खबर भी नहीं दी ? दिन भर तो पेट में एक दाना भात भी न पड़ा होगा ? दो दाना चावल पकाने में ही शाम हो जायगी।"

देवतोष ने हँसते हुए कहा, "क्यों, दोपहर में जो खाना बनाया था क्या सभी तुम दोनों खा गयीं ? कुछ भी नहीं है ?"

"सुनो, लड़के की बात ! मैं क्या जानूँ की तू आएगा ?"

राधू की माँ ने कहा, "हाँडी में भात तो है माँ। दाल तरकारी जो भी है उससे दादा बाबू का तो काम चल ही जाएगा।"

"हाँ, हो तो जायगा। किन्तु वह बासी सूखा आलू और चावल क्या यह खा सकेगा ? तू जा थोड़ा-सा चावल धो ला।"

"कोई जरूरत नहीं माँ।" देवतोष ने रोकते हुए कहा, "जो भी है वही दो। बहुत दिनों से तुम्हारा 'दला' नहीं खाया, याद है ?"

सुलोचना सहसा कोई उत्तर न दे सकी। सोचा क्या कह रहा है पागल लड़का ! उसे याद नहीं ? यह उन्हीं दिनों की तो बात थी जब वह स्कूल से वापस लौटता था तो माँ के पत्ते पर ही तरकारी भात न पाने पर कुरुक्षेत्र खड़ा कर देता था। केवल पत्ते से ही काम नहीं चलता था। भात सान कर रखना पड़ता। यही 'दला' देवतोष के लिए अमृत था। वह एक-एक दाना भी बीन कर खा लेता। माँ के अतिरिक्त कोई दूसरा स्वादिष्ट से स्वादिष्ट चीजें बना कर रख देता पर उसे वह नहीं भाता था।

नहर के घाट पर स्नान कर के रसोईघर के बरामदे में देवतोष पीढ़े

पर आ बैठे। वही पहले की तरह सुलोचना ने भात को सान क
उनके सामने रखे पत्ते पर गोल-गोल लड्डू से बना कर रख दिए
देवतोष परम तृप्ति के साथ खाते हुए बोले, "मैं आ रहा हूँ, तुम जरू
जानतीं थीं, माँ। मुझे जो-जो चीज़ें अच्छी लगती हैं वह सभी तं
बना रक्खी हैं।"

सुलोचना की दोनों आँखें छलछला आयीं। निःश्वास फेंकते
हुए बोलीं, "मैं कैसे जानती बेटा ! जो सब जानता है यह उसी क
काम है। लगता है उसी ने मेरे हाथों से इन चीज़ों को तैयार कराय
है।"

गाँव के साथ देवतोष का बचपन से ही घनिष्ट सम्बंध था। किन्तु
इधर उसका यह सम्बंध कुछ शिथिल हो गया है। दो दिन भी नहीं
बीता था यह बात माँ की आँखों से छिपी न रह सकी। उन्होंने देखा
उनका लड़का वैसे ही मैदान घाट इस घर से उस घर घूमता रहता है
खोज-खबर लेता है, किसी की बीमारी-खमारी में कोई भी बुलावा
आता तो चला जाता है और जो-जो करना चाहिए सभी करता है...
फिर भी वह अपनी आदत के अनुसार ही कर रहा है पर ऐसा लगता
है कि उसका मन कहीं भी नहीं लग पा रहा है और कहीं अन्यत्र
आश्रय खोज रहा है।

"हाँ रे, देबू, वनमाली तो ठीक है न ?" एक दिन सुलोचना ने
प्रश्न किया।

"हाँ माँ उसे उसके देश भेज दिया है। वहाँ अभी हमें लौटना
नहीं है। चार महीने की छुट्टी ले ली है।"

सुलोचना के चेहरे पर सहसा दुश्चिन्ता की छाया फूट पड़ी।
किन्तु लड़के को यह मालूम न पड़े इससे उन्होंने दूसरी बात शुरू की,
"महेश, वहीं है कि बदली हो गयी ?"

"वहीं है।"

"उसके दोनों बच्चे ?"

"वे तो वहाँ रहते नहीं। कलकत्ते में ही बोर्डिंग में रहकर पढ़ते हैं।"

"वहाँ और किसके पास रहेंगे?" सुलोचना ने निश्वास फेंकते हुए कहा, "अहा! कैसा भला आदमी है, और उसका भाग्य देखो।"

सुलोचना जाने के लिए तैयार हुईं। देवतोष को कुछ बोलते देखकर ठिठक कर पूछा, "क्या कुछ कहोगे?"

"कह रहा था, इस बार घूम-फिर आऊँ।"

"कहाँ जाना चाहता है?"

"पहले कुछ दिन कलकत्ता। फिर सोचता हूँ दक्षिण की तरफ जाऊँगा। तुम भी चलो न!"

सुलोचना अपना मकान कभी छोड़ना नहीं चाहतीं। देवतोष ने दो-चार बार चेष्टा भी की, तीर्थ का नाम करके माँ को बाहर ले जाने की। किन्तु उनके मुँह से बस एक ही बात सुनाई पड़ती कि "यह श्वसुर की ड्योढ़ी ही हमारा सबसे बड़ा तीर्थ है, बेटा, यहीं मैं आँख बंद कर लूँ और तेरे हाथ से आग पा जाऊँ तो उससे बढ़ कर मेरे लिए कुछ भी नहीं है।" आज भी वह देवतोष के इस घूम आने के प्रस्ताव पर सम्मति नहीं देतीं। किन्तु कई दिनों से उसके मुख की ओर देखकर सहज ही वह भाँप गयीं थीं, कि उसके सरल लड़के के उदार निर्लिप्त मन के किसी कोने में कोई ऐसा दाग लगा है, जिसे माँ द्वारा ही सहलाने की अत्यन्त आवश्यकता है। कौन जाने वह इसीलिए भाग कर माँ के पास आया हो? अतएव लड़के के लिए कुछ दिन के लिए श्वसुर की ड्योढ़ी की माया को त्यागना ही पड़ेगा।

पति के समय से ही कलकत्ते में उनका एक मकान रह गया है। देवतोष के चचेरे भाई महीतोष वहाँ स्थायी रूप से रहते हैं। दूसरे तल्ले पर एक तरफ कोई तीन कमरे रसोईघर इत्यादि का एक अंश सुलोचना ने अपने लिए रख छोड़ा है। आखिर में वह वहीं जाकर ठहरीं।

—०—

८

यह तो उसी दिन की बात है। हेना ने अपने मन में स्थिर किया था कि उसे जेल छोड़ना होगा। जेलर साहब के सामने जाकर अपने इस अनुरोध को किस प्रकार प्रस्तुत करेगी यह भी गंभीरतापूर्वक उसने सोचा। कमला के उत्तर में उसने कहा था 'वह स्वयं अपने ही लिए जाना चाहती है।' उसके बाद अप्रत्याशित घटनाओं के स्रोत ने उसे ऐसे स्थान पर ला खड़ा किया, जहाँ से भागने का अब प्रयोजन ही न रहा। जिसे लेकर इस प्रयोजन को उसने देखा था उन्होंने अपने को ही खामोशी के साथ हटा लिया, सभी भय-भावना कि समस्या के हाथों से उसे बहुत दिनों के लिए मुक्ति दे गए। किन्तु उस मुक्ति से उसे क्या मिला? शून्यता तो मुक्ति नहीं है। यही तो दिन प्रति दिन धीरे-धीरे उसे खाती जा रही है। एक दिन वह उस बन्धन से भागना चाहती थी, आज वह निरालम्ब रिक्तता से भागना चाहती है। आज का प्रयोजन जैसे पहले से भी अधिक है। जनाने फाटक के इस क्षुद्र-संसार में छोटी बड़ी परिचित वस्तुएँ उसे हर घड़ी स्मरण कराती हैं, तुझे जाना ही होगा, तेरी यह जगह नहीं है। जेलर साहब उस पर स्नेह रखते हैं। किन्तु उसके इस अर्थहीन व्याकुलता को वह समझना भी चाहेंगे तो वह उन्हें कैसे समझा सकेगी? इस विषपूर्ण हृदय के साथ किस मुँह से, किस लज्जा से उनके सामने जा कर खड़ी होगी? वह जब जानना चाहेंगे कि 'तुम्हें क्या कष्ट है?'

तो क्या उत्तर देगी ? 'तुम किस लिए जाना चाहती हो ?'

उसकी मनोदशा जब ऐसी चल रही थी उसी समय एक दिन सुशीला ने आकर कहा, "जेलर साहब ने तुम्हें बुलाया है।" हेना को लगा जैसे वह वह अन्तर्यामी हैं। उसके मन की पुकार को उन्होंने सुन लिया। सुशीला ने कहा, "तैयार रहना। चार बजे जब वह आफिस में आवेंगे तभी ले चलूँगी।"

रास्ते में चलते-चलते उसके पैर थकते से मालूम हुए। अन्तर में भीषण द्वंद, झंझा और आशंकाएँ चल रही थीं। "क्यों बुलाया है, आप कुछ जानती हैं मासी माँ ?" शुष्क किन्तु मृदु स्वर में उसने सुशीला से पूछा।

सुशीला हँस पड़ी, "कोई डर की बात नहीं। तुझे फाँसी नहीं देंगे।"

तालुकदार किसी फाइल को देख रहे थे। उससे छुट्टी मिलने पर उन्होंने आँखों को ऊपर उठाया। सुशीला ने सलाम करके कहा, "तो मैं जाऊँ बाबा। सब काम को निपटा आऊँ तो आकर इसे ले जाऊँगी।"

जेलर बाबू ने सिर हिलाकर अनुमति दी। दो-तीन मिनट बाद फाइल को बन्द कर के फीता बाँधते हुए वह हेना से बोले, "हाँ मैंने तुमको एक काम के लिए बुलाया था।"

हेना ने सप्रश्न दृष्टि से देखा। तालुकदार ने कहा, "सोच रहा था कि औरतों को कुछ ऊन का काम सिखाया जाय तो कैसा रहेगा ? यही समझो मोजा, गंजी, स्वेटर, मफलर आदि सिखाना है, जेल से निकलने पर हाथ में कुछ हुनर रहने से वह खाने-पीने की भी कोई व्यवस्था इससे कर ही सकेंगी।"

हेना ने अपनी सहमति प्रकट की।

"सिखाने का भार तुमको देना चाहता हूँ।"

"क्या मैं कर सकूँगी ?" विनीत कण्ठ से हेना ने उत्तर दिया।

"क्यों न कर सकोगी? मैंने तुम्हारे हाथ का काम देखा है।" हेना ने सिर झुका दिया। हाथ के काम का प्रमाण सुशीला के छिपाने पर भी जेलर साहेब के सामने गोपन न रह सका, यह जान कर वह लज्जित सी हो गयी। तालुकदार ने कहा, "जेल के सिपाही सरकारी खर्चे से एक जर्सी पाते हैं। उन सब को भी हमें ही खरीदना पड़ता है। उसमें कुछ भी अगर तुम लोग बुन दोगी तो उससे बहुत पैसा बचेगा। इसलिए भी तुमको काम शुरू कर देना चाहिए। सिखाने में एकाध खराब भी होगा तो विशेष क्षति नहीं।"

इसी विषय को लेकर बहुत सी बातें हुईं। जरसी बुनने में कितना ऊन लगेगा, कितने नम्बर की सलाई लगेगी, ठीक से काम सीखने में हर को कितना समय लगेगा, महीने में कितना काम तैयार होने की संभावना है आदि सभी बातों पर इस लड़की की जानकारी और उसे समझाने के ढंग को देखकर तालुकदार दंग रह गए। वह मन ही मन लज्जित भी हुए कि उसे इसी तरह का कोई काम न देकर अभी तक दाल दरने का ही काम दिया जाता रहा है। आखिर में उन्होंने कहा, "अच्छा तो तुम अपनी छात्राओं को चुन लो। थोड़ी सी बुद्धि हो, सीखने की इच्छा हो, कुछ बरसों तक रहने वाली हों ऐसी ही पाँच-छः औरतों को लेकर तुम्हारा काम शुरू हो जायगा। क्यों?"

हेना ने कुण्ठित स्वर में कहा, "सिखाने का भार मै लेती हूँ, सर! भरसक चेष्टा करूँगी। किन्तु लोगों के चुनने का काम मुझ पर न डालें।"

इस विषय में उसका एतराज अनुचित नहीं था तालुकदार समझ गए। बोले, "ठीक, तो वैसा ही सही, यह काम मैं ही किसी समय आकर निपटा दूँगा।"

दरवाज़े की ओर देखकर वे बोले, "लगता है सुशीला को आने में देरी होगी। तब तक न हो तुम बरामदे में जाकर बैठो।" कह कर उन्होंने फिर एक फाइल खींच ली।

दो मिनट बाद आँखें उठायीं तो देखा हेना उसी तरह खड़ी थी। उसे देखने से लग रहा था जैसे वह कुछ कहना चाहती है पर बोल नहीं पा रही है। "कुछ कहना चाहती हो?" तालुकदार ने कोमल स्वर में पूछा। हेना चंचल हो उठी। आँखों के सामने काली रेखा नाच उठी। दो-एक बार जोर देने पर सहसा वह व्याकुल कण्ठ से बोली, "मैं अब यहाँ नहीं रहना चाहती।"

"क्यों?" जेलर साहेब ने विस्मय से पूछा।

"आप तो सभी जानते हैं। जिन कारणों से, जिस लिए उन्हें चले जाना पड़ा फिर मैं अपना मुँह यहाँ कैसे दिखाऊँ?"

महेश बाबू का विस्मय दूर हो गया। इन बातों को सुन कर उसके अन्तर की वेदना को अनुभव करके खामोशी के साथ वह खिड़की के बाहर देखने लगे। हेना अपने आप ही कहने लगी, "इतना दुःख दिया, सभी वृथा हुआ। इतना फूँक-फूँक कर मैं कदम रखती हूँ फिर भी बदनामी और अपमान ही मिला। मेरे लिए ही वे सभी के सामने अपना सिर नीचा करके चले गए।"

"तुम्हारी भूल है, हेना।" दृढ़ एवं गम्भीर स्वर में तालुकदार ने कहा। उन्हें किसी के सामने भी सिर नहीं झुकाना पड़ा। अपमान और अमर्यादा के साथ भी वह नहीं गए। निन्दकों की बदनामी ने उन्हें स्पर्श भी नहीं किया। कोई कुछ भी कहे पर तुम मेरी इस बात को निसंदेह समझो।"

हेना का मुख उज्वल हो उठा। उस दृढ़ स्वरों में उसे एक आश्वासन का आभास मिला। तालुकदार जँगले के बाहर ही देखते हुए बोले, "दुःख देने की बात तुमने कही। किन्तु दुःख तो तुमने ही नहीं दिया है, वह उससे भी अधिक पा चुका है। यह बात और कोई जाने या न जाने पर मैं जानता हूँ।"

हेना के दोनों नेत्र छलछला आए। कोई भी बात वह कह न सकी। दो बूँद अश्रु कपोलों पर भी आ गए। पर उन्हें भी पोंछने

की चेष्टा उसने न की। उस अश्रु-लांछित मुख की ओर क्षण भर देख कर तालुकदार ने फिर कहा, "तुम्हारी सब बातें मैं नहीं जानता। हो सकता है तुम्हारे जीवन में ऐसा कुछ रहा है जिसके लिए अपने हाथों से ही आत्मघात छोड़ कर और कोई उपाय नहीं था। वह सब क्या कारण थे इन प्रश्नों को नहीं उठाऊँगा। केवल एक बात ही कहना चाहता हूँ। स्वेच्छा से जिस पथ से अपने को हटा लिया है उस तरफ फिर देखना भी न। उससे केवल तुमको कष्ट ही मिलेगा कोई फल नहीं।"

हेना आँचल से आँखों को पोंछती हुई खामोश देखती रही। तालुकदार बोले, "हमारी यह बातें या तो साधु-सन्यासी के उपदेश अथवा पादरी साहेब के सर्मन सी लगती होगी। फिर भी इसमें कुछ भी असत्य नहीं है। लड़की का जन्म पाकर ही उसे दुनिया की हर बात सुननी होगी और ऐसा न करने पर जीवन व्यर्थ हो गया यह बात जो कहते हैं वे लड़कियों को केवल अबला के ही रूप में देखते हैं मानव के रूप में नहीं। घर के बाहर भी विशाल पृथ्वी पड़ी है, उसकी माँग भी किसी से कम नहीं है। उसकी पुकार यदि सुन सको तो जो पाओ या न पाओ पर उसके लिए इतना क्षोभ न रहेगा।"

हेना की आँखों के ऊपर से जैसे एक आवरण उठ गया। सन्तुष्ट कंठ से बोली, "नहीं, नहीं, मुझे अब कोई क्षोभ नहीं है। पता नहीं कैसे मैं दुर्बल हो उठी थी। नहीं मैं अब और कहीं भी नहीं जाना चाहती। यहीं रहूँगी। बीच-बीच में आपके चरणों के पास आकर खड़ी हो सकूँगी। फिर...." सहसा वह रुक गयी।

तालुकदार कुछ क्षणों तक प्रतीक्षा करके बोले, "क्या कह रही थीं? कहो?"

"कह रही थी, इस जेल की मियाद तो एक दिन खतम होगी ही। वह बात जब भी मन में आती है भय से हमारा हृदय काँप उठता है। कहाँ जाऊँगी? कहाँ जाकर खड़ी होऊँगी ऐसी भी तो

मेरी कोई जगह नहीं। आज वह भय अब नहीं है। आपके पास आकर ऐसा लगा कि जगह है। किसी आश्रय के लिए हमें चिन्ता नहीं करनी होगी।"

किसी अज्ञात भाव से चौंक से उठे जेलर साहब। साथ ही साथ उन्होंने अपने को सम्हाल लिया। हेना ने लक्ष्य तो किया पर कुछ समझ न सकी। विस्मित कुण्ठा से निर्वाक खड़ी रही। कुछ क्षणों बाद तालुकदार बोले, "तुम्हारे इसी 'आश्रय' वाली बात से बहुत दिन पहले की एक घटना याद आ गयी। तुम्हारी ही तरह और भी एक थी—नहीं, उस बात को अभी रहने दो। हाँ, तुम्हारी बातों को मैंने सोचा है। पहली बार जब तुमको देखा था, और तुम अपना टिकट लेकर मेरे पास आयी थीं तभी से मैंने सोचा था। उस दिन मैंने क्या कहा था तुम्हें याद है?"

"उस बात को मैंने एक क्षण के लिए भी नहीं भुलाया।" हेना ने साथ ही साथ जवाब दिया, "आपने कहा था तुम्हारी बात को मैं जिस प्रकार मान रहा हूँ उसी प्रकार मेरी भी एक बात तुमको माननी होगी।"

"हाँ, आज भी उसे कहने का समय अभी नहीं आया है। केवल इतना ही जान लो कि यहाँ का काम खत्म होने पर भी तुमको छुट्टी नहीं। मुझे तुम्हारी आवश्यकता पड़ेगी।"

हेना उल्लसित हो उठी, "मैं उसके लिए तैयार हूँ।" किन्तु कुण्ठित स्वर में वह बोली, "मैं कर ही क्या सकती हूँ?"

"कर क्यों नहीं सकतीं? अपने ऊपर से विश्वास न खोना। तब तुम सब कर सकोगी।"

"आपकी दया से हो सकता है उस विश्वास को एक दिन मैं वापस पा सकूँगी," द्विधा जड़ित कण्ठ से हेना बोली, "किन्तु यही डर है कि जो काम आप मुझे देना चाहेंगे उसका अधिकार मेरा नहीं है ऐसा लगता है।"

"क्यों ?"

"तब तो मेरी सभी बातें आपको सुननी होगीं।"

"क्या है तुम्हारी सब बातें ?"

"मेरे जीवन का जितना भी पाप और जितना भी अन्याय है और बचपन से ही जो भी दुःख दिया है और पाया है जितनी भी प्रताड़नाओं को सहा है सब मैं आपके पैरों पर रख दूँगी। उसके बाद भी आप मुझे अयोग्य न समझेंगे तो मैं आपको दिए गए काम के अधिकार को मैं नहीं भूली हूँ और आपका जो भी आदेश होगा उसे मैं अपने सर पर रखूँगी।"

"ठीक है वैसा ही होगा। एकदम द्विधा संशय की बेड़ी को पैर में बाँध कर काम नहीं हो सकता। मन में जब भी खटका मालूम हो उसे तुरंत हटा देना ही अच्छा है। सुनूँगा तुम्हारी सब बात। वह देखो तुम्हारी एसकोर्ट आ गयीं। कभी सुभीते से फिर एक दिन आओ।"

सुशीला कमरे में हाँफती हुई आई। देरी से आने के लिए लम्बी कैफियत शुरू करने से पहले ही बीच में बाधा पड़ गयी। जेलर साहेब ही बोल उठे, "चार-पाँच दिन बाद शाम को फिर एक बार इसे लाना होगा। उससे पहले मुझसे पूछ लेना।"

"अच्छा हुजूर।" सलाम करके जमादारनी ने कहा। कैफियत देने से इतनी जल्दी छुट्टी मिल जायगी उसकी आशा उसे न थी।

तालुकदार उठ खड़े हुए। हेना ने आगे बढ़ कर गले में आँचल लपेटे ज़मीन पर माथा टेक कर उनके पैरों के पास उनको प्रणाम किया, फिर धीरे-धीरे सुशीला के साथ बाहर हो गयी।

दीवार पर टँगी घड़ी की ओर देख कर उसने बाहर जाने के लिए पैरों को बढ़ाया, इसी समय जोर से चिल्लपों करता हुआ महाबल सिंह आ हाजिर हुआ। साथ में दो सिपाही और कुछ कैदी थे। एक जवान आदमी को दोनों तरफ से खींचते हुए दो मेट ला रहे थे। शरीर का

कपड़ा फट गया था। सिर के बाल बिखरे हुए थे। आँखों से आग टपक रही थी। जेलर साहेब ने जिज्ञासु दृष्टि से जमादार की ओर देखा उसने बूट ठोंक कर सलाम करके अभियोग को पेश किया, "काम नहीं करता है फिर मेट को भी गाली दिया।"

वह आदमी भी उत्तेजना के साथ चिल्ला उठा, "मुझे मारा है हुजूर। यह देखिए...." पीठ को सामने करके खड़ा हो गया। पीठ पर बेंत के चौड़े दाग थे। कहीं-कहीं कट कर खून भी निकल रहा था।

"किसने मारा?" जेलर ने प्रश्न किया।

"इसी मेट ने।" कह कर उसकी अग्नि दृष्टि पास खड़े एक मेट पर जा गड़ी।

"इसे मारा है?" तालुकदार ने मेट से पूछा।

"काम नहीं करता। यही इससे कहने गया था। माँ-बहिन की यह गालियाँ बकने लगा। सिपाही बाबू से ही पूछ लीजिए।"

"फिर?"

मेट निरुत्तर रहा। जेलर साहेब ने प्रश्न किया, "मारा है कि नहीं यही जानना चाहता हूँ?" मेट एक बार जमादार फिर एक बार सिपाही की ओर देख कर मिनमिना कर बोला, "एक थप्पड़ मारा था हुजूर।"

सभी के अनजाने में जेलर साहेब के ओठों के कोने पर एक हल्की हँसी की रेखा फूट पड़ी। वही चिरन्तन "एक थप्पड़।" जेल की डिसीप्लीन की रक्षा का प्राथमिक भार जिस पर है वह यही सब के सरदार कैदी का नाम मेट है। किताबी नाम तो बहुत बड़ा है "कनविक्ट ओवरसियर।" उनकी पोशाक का प्रधान अङ्ग एक चमड़े का बेल्ट और उसके साथ लगा पीतल का चपरास है। कारण-अकारण इन्हीं चीज़ों को शासन दण्ड के हिसाब से वह व्यवहार करते हैं। उस सम्बन्ध में प्रश्न करने पर मारने की बात तो अस्वीकार नहीं करते, उत्तर दिया एक थप्पड़ मारा है। यदि जानना चाहें कि दाग क्यों

पड़ा तो कोई ठीक उत्तर पाना बड़ा मुश्किल है।

राउन्ड पर जाना स्थगित करके जेलर फिर अपनी जगह पर आ बैठे। महाबल सिंह के साथ फरियादी, अभियुक्त, गवाह आदि सदल-बल कमरे में घुसे।

कई दिनों बाद सुबह डाक देखते ही तालुकदार को आश्चर्य हुआ। उनकी व्यक्तिगत चिट्ठियाँ बहुत नहीं रहतीं। आज एक साथ ही दो चिट्ठियाँ थीं। एक को लिखा था देवतोष ने—कलकत्ते में आकर रह रहे हैं। कुछ दिनों में ही दक्षिण की ओर जायँगे ऐसी इच्छा है। केवल पुरी, वाल्टेयर ही नहीं मद्रास, महाबलीपुरम, पक्षीतीर्थम् होते हुए रामेश्वरम् तक धावा बोल सकता हूँ। संभवतः माँ भी साथ जायेंगी। अर्थात् विधिवत् तीर्थयात्रा। कब लौटूँगा नह जानता। माँ आपको बराबर पूछती रहती हैं....इत्यादि। दूसरी चिट्ठी को पढ़ कर महेश का मुखमंडल चिन्तित हो उठा। कुछ समय पता नहीं क्या सोचते रहे। फिर पैड को सामने रख कर चिट्ठी लिखने बैठ गए।

चार दिनों के बाद जब उनके घर पर तालुकदार पहुँचे उस समय देवतोष घर पर ही थे। बाहर आकर बोले, "क्या बात है दादा! एक साथ दो चिट्ठी।"

तालुकदार बोले, "एक पर भरोसा न हुआ। कौन जाने एक इधर-उधर न हो जाय? एक जरूरी काम से तुमको लेकर चलना है। तुम्हारी तीर्थयात्रा हो सकती है दो-चार रोज के लिए टल ही जाय।

देवतोष के कुछ बोलने से पहले ही सुलोचना देवी आ गयीं। अभी-अभी पूजा-घर से निकली थीं। शांत समाहित मुख-मण्डल पर एक पवित्र तन्मयता उस समय भी थी। महेश ने बढ़ कर प्रणाम किया

तो वह बोलीं, "बैठो बेटा, पहले तुम्हारे खाने के लिए कुछ ले आऊँ। मैंने सब तैयार रखा है। देर नहीं होगी।"

तालुकदार ने कहा, "खाना अभी रहने दो माँ! उसे लौट कर इत्मीनान से खाऊँगा। उससे पहले आप अनुमति दें तो आपके इस लड़के को एक काम से ले जाऊँ।"

"उसके लिए फिर कैसी अनुमति बेटा? तुम बड़े भाई हो उसका कान पकड़ कर ले जा सकते हो। मुझे बोलने की जरूरत क्या है?"

देवतोष ने गंभीर स्वर में कहा, "पकड़ना ही हो तो बाँया कान पकड़ना दादा।"

"क्यों दाहिने ने क्या अपराध किया है?"

"उसे तो माँ और निताई पंडित महाशय ने मिल कर इतना खींचा है कि अठारह बरस बाद भी उसका दर्द नहीं मिटा है।"

सभी की हँसी से घर गूँज उठा।

बाहर जाते समय सुलोचना ने पूछा, "तुम ठहरे कहाँ हो महेश?"

प्रश्न का तात्पर्य तालुकदार समझ गए। "जहाँ भी ठहरूँ पर दोपहर को माँ का प्रसाद खाकर ही जाऊँगा। इसके लिए चिन्ता न करें।"

सुलोचना खुशी होकर बोलीं, "किन्तु लौटने में बहुत देर मत करना।"

रास्ते में कोई विशेष बात नहीं हुई। सियालदा स्टेशन से रेल पर चढ़ कर वे दोनों बेलघरिया में उतरे। वहाँ रिक्शा लेकर कुछ चल कर गली के भीतर एक तल्ले मकान के सामने पहुँच कर कुण्डी खटखटाया। चौबीस-पच्चीस साल की एक विधवा लड़की ने दरवाज़ा खोला। उनके भीतर घुसते ही उसने महेश के चरणों में प्रणाम किया। उन्होंने पूछा, "शान्ति कैसी है?"

"बुखार तो एक-सा ही चल रहा है।"

"चलो देख आवें।"

पास ही एक छोटा सा कमरा था। उसी में एक तख्त पर एक लड़की आँखें बंद किए सो रही थी। उम्र कोई सत्ताइस-अट्ठाइस की थी। रोग से शरीर जर्जर हो गया था। सिर के पास एक अल्प-वयस की लड़की धीरे-धीरे हवा कर रही थी। पैरों की ओर एक स्टूल पर दूसरी अधिक उम्र की स्त्री बैठी थी। महेश बाबू को देख कर दोनों ही उठ खड़ी हुईं और छोटी लड़की ने आगे बढ़ कर प्रणाम किया। डाक्टर रोगिणी की ओर देख रहे थे। महेश ने अंगरेजी में कहा, "इसी लड़की की चिकित्सा का भार तुम्हें लेना होगा देवतोष, इसीलिए मैं तुम्हें यहाँ लाया हूँ। क्यों उमा, कहाँ गयी ?"

"अभी आयी।" कह कर वही विधवा लड़की सामने आयी।

तालुकदार ने कहा, "यह डाक्टर हैं। जो कुछ पूछें सब इन्हें बता दो। अब से यही उसे देखेंगे। तुम्हें जो देखना हो देख लो देवतोष। फिर बात होगी। मैं उधर हूँ।"

रोगिणी की मोटी तौर पर परीक्षा करने के बाद डाक्टर को भीतर की तरफ बरामदे में महेश बाबू के पास ले जाया गया। एक मोढ़े पर वह बैठे थे और उनके सामने दीवार के पास विभिन्न उम्र की सात-आठ लड़कियाँ खड़ी थीं। सभी मोटी ताँत की साड़ियाँ पहने हुए थीं और ताँत का ही छींट का कपड़ा पहने थीं। पास में एक खाली मोढ़ा रखा था। उस पर बैठने को कह कर देवतोष से महेश ने पूछा, "कैसी है तुम्हारी रोगिणी।"

"टाइफाइड लगता है। स्लाइड न लेने से ठीक से नहीं कह सकता। आगे बतलाते तो उन सब चीजों के साथ मैं लाता।"

"मैं क्या जानता था ?"

उमा ने कहा, "हमारे डाक्टर बाबू को खबर देने पर वह खून लेने की व्यवस्था कर सकते हैं।"

"उन्होंने अभी तक खून नहीं लिया ?" कुछ विस्मय के साथ देवतोष ने पूछा।

"नहीं, कह गए थे कि दूसरे डाक्टर के आने पर अगर वह लेना चाहेंगे तो जो भी जरूरत होगी भेज देंगे।"

तालुकदार ने कहा, "वे होमियो हैं। वे तुम्हारे इस खून टून के झंझट में नहीं हैं।"

"उन्होंने ने ही शायद देखा था ?" देवतोष ने जानना चाहा।

तालुकदार ने कहा, "हाँ! उनकी औषधि ने विशेष काम नहीं किया यह देख कर छोड़ दिया। यह खबर पाकर ही तो तुमको ले आया हूँ।"

होमियो डाक्टर को खबर भेज दी गयी। तालुकदार ने कहा, "तब तक चलो तुम्हें यहाँ सब घुमा लाऊँ।"

बरामदे के बगल में उठान है। उसी से सटी हुई एक लम्बी टीन की कोठरी है। उसमें एक तरफ चार करघे और उनके सरंजाम और दूसरी तरफ दो सिलाई के मशीनें हैं। कोने की ओर ऊन बुनने का सरजांम है। करघों पर ताना चढ़ा है। तौलिया, गमछा, बिछाने की चादर और एक पर साड़ी मालूम होती थी। दोनों सिलाई मशीनों में आधे सिले हुए कपड़े लगे थे। देखने से ही समझा जा सकता है सभी काम चल रहा था और जो काम कर रही थीं अभी-अभी उठी हैं। दूसरी तरफ कटघरे में दो ओखलियाँ हैं—जिनमें एक में धान कूटा जा रहा था। उसके सामने गोबर से लीपे-पोते आँगन में बैठी एक बूढ़ी दाल की बड़ी दे रही थी। आँखों से ठीक से नहीं देख पाती। एक लड़की ने उसके कान में आकर कुछ कहा तो वह खुशी से चहक उठी, "कहाँ, कहाँ, मेरा बेटा कहाँ है ? आहा बहुत दिनों से नहीं देखा।" लड़की ने फुसफुसा कर कुछ कहा। बूढ़ी खुश होकर फिर काम में जुट गयी।

खिड़की के दरवाज़े को पार करके वे दोनों बाग में गए। काँटे-दार तारों से घिरा हुआ कोई तीन बीघा जमीन थी। छोटी-छोटी मेंड़ों से घेर कर प्लाटों में शाक-सब्जी की खेती होती है। बैंगन,

कुम्हड़ा, सेम की फलियाँ आदि लगीं थीं। एक खेत में दो लड़कियाँ फलियाँ तोड़ रही थीं।

तालुकदार ने चलते-चलते दो एक बातें ही की थीं। देवतोष उन्हें विस्मय-विमुग्ध नेत्रों से देख रहे थे। बरामदे में लौट कर उनके बैठते ही एक थाली में दो गिलास डाब का पानी लाकर उसी लड़की ने उनके सामने रख दिया।

तालुकदार ने कहा, "तुम्हारे नए पेड़ का डाब मालूम होता है?"

"हाँ, यह पहली बार ही तोड़ा गया है।"

"किससे तुड़वाया है?"

उमा ने कोई जवाब नहीं दिया। देवतोष ने देखा सलज्ज हँसी उसके मुँह पर खेल रही थी। समझा जा सकता था कि यह काम उसने स्वयं किया है अथवा अपनी ही तरह किसी और से कराया है। जो लड़की रोगिणी के सिर के पास बैठी पंखा झल रही थी बाहर आकर बोली, "काका बाबू शान्ती दीदी आपको अभी बुला रही हैं।"

तालुकदार उठ कर खड़े हो गए फिर बोले, "चलो; आ रहा हूँ।"

वे दोनों ही उठ कर आ गए। पास आकर खड़े होते ही शांति ने अपने काँपते हुए हाथों को खाट के नीचे ले जाकर प्रणाम किया। महेश उसके माथे पर हाथ फेर कर बोले, "रहने दो। बीमारी में क्या प्रणाम करने की जरूरत? मैं तुम्हे ऐसे ही आशीर्वाद देता हूँ। जल्दी अच्छी हो जाओ।"

शांति ने क्षीण कण्ठ से रुक-रुक कर कहा, "मैं अब नहीं बचूँगी काका बाबू।"

"पागल! तब इन लोगों को कौन देखेगा? यह डाक्टर भी यही कह रहे हैं कि घबड़ाने की कोई बात नहीं है। जरूरत से ज्यादा काम

करके और अनियम से ही यह बीमारी तुमने बुलाई है।"

शांति ने डाक्टर के मुख की ओर देखा। बहुत तकलीफ से मस्तक ठोकने के लिए हाथ उठाते हुए कुछ कहना चाहा। देवतोष ने आगे बढ़ कर हाथ को पकड़ कर कहा, "रहने दें और बातें न करें। नियमित रूप से दवादारू खाने से कुछ दिनों में ही आप ठीक हो जायगीं।"

शांति के दोनों नेत्रों में जल भर आए।

लौटते समय रिक्शा पर दोनों अगल-बगल बैठे रह कर भी अपनी-अपनी चिन्ता में ही डूबे थे। स्टेशन के पास पहुँचते-पहुँचते ताल्लुकदार ने मौन भंग किया। बोले, "लड़की को ठीक होने में कुछ समय लगेगा क्यों?"

"हाँ, ऐसा तो लगता है।"

"तब? तुम्हारी तीर्थ-यात्रा का क्या होगा?"

देवतोष हँस उठे।

"यह हँसे क्यों?"

"हँसने की बात ही थी दादा। इतने दिनों तक कभी भी आपके कोई काम नहीं आया था। कभी आ सकूँगा ऐसी भी आशा न थी। आज यदि सहसा यह सुयोग मिलता है तो उसके स्थान पर तीर्थ का नाम करके इधर-उधर भटकना क्या हमें अच्छा लगेगा?"

"बात तुम्हारी ही नहीं माँ की भी सोचता हूँ।"

"माँ तो केवल मेरी रखवाली के लिए ही जा रही थीं?"

"कैसे?"

"पता नहीं क्यों। उनके मन में सहसा यह बात आई कि इस बार मुझे वह अपने पास ही पास रखेंगी।"

महेश उनके चेहरे की ओर एकटक देखते रहे। डाक्टर मृदु हँसी के साथ बोले, "इस काम में मैं जुट गया हूँ यह जान कर वह खुश ही होंगी। मुझे लेकर आजकल वह पता नहीं क्या-क्या सोचा करती हैं?" इतना कह कर वह जोरों से हँस पड़े।

तालुकदार ने साथ नहीं दिया। चिन्ता से सिर झुका कर उन्होंने कहा, "हूँ।"

रेल के डिब्बे में भीड़ बिल्कुल न थी। दोनों फिर उसमें जाकर अगल-बगल ही बैठे। डाक्टर ने पूछा, "आप अभी कुछ दिन तो रहेंगे न ?"

"क्यों ? अब रहने की क्या जरूरत है ?"

"हमारी तरफ से तो कोई जरूरत नहीं। पेशेन्ट को मैं अकेले ही सम्हाल सकता हूँ। ब्लड रिपोर्ट यदि आज शाम तक मिल जाय तो कल सुबह ही फिर आना पड़ेगा। आश्रम का नाम-टाम तो मैंने देखा नहीं। मकान पहचान तो जाऊँगा ?"

"आश्रम किसे कह रहे हो ?"

"तब उसे क्या कहूँ ?"

"नहीं होम भी नहीं आश्रम भी नहीं। वैसे तुम आश्रम कह सकते हो। वह सभी एक्स-कनविक्टस् हैं।

"एक्स-कनविक्टस !" डाक्टर को आश्चर्य-सा हुआ।

"हाँ, हमारी-तुम्हारी तरह ही वे सब भी अच्छे कुलीन घर में पैदा हुईं। यह सब वहीं की हैं। फिर एक दिन वहाँ से छिटक कर जेलखाने में आ पड़ीं। किन्तु यह तो जानते ही हो, कि हमारे देश में जो स्त्री के रूप में पैदा हुई वह किसी कारण से घर से बाहर हो गई तो फिर वह लौट कर वापस नहीं जा सकतीं। बाहर होने का तो रास्ता है, पर घुसने का रास्ता नहीं। वे सब इसीलिए अपने घर वापस नहीं जा सकीं। जो गईं भी थीं उन्हें भी जगह नहीं मिली। ऐसी ही और भी कितनी हैं। कौन उनकी खोज-खबर रखे ?"

आखीर की कुछ बातों से उदासी का वातावरण और भी गहरा हो उठा। गाड़ी से बाहर धूप से भरे मैदान की ओर तालुकदार ने अपनी दृष्टि फेंकी। डाक्टर एक रुँधे से कण्ठ से बोले, "इनकी बातें तो कभी बताया नहीं था, दादा ?"

"कोई ऐसा अवसर नहीं आया। और फिर कहने लायक बात ही क्या है ? फिर भी अब तुमको इन लोगों के बीच में आना है। तब क्या सुनना चाहते हो, सभी बातें बताऊँगा ?"

तालुकदार जिस मेस में ठहरे थे देवतोष वहाँ जाकर उनका बिस्तर और सूटकेस उठा लाए। किसी भी आनाकानी को उन्होंने नहीं माना। दूसरे तल्ले के बरामदे में एक दरी को सुलोचना ने पहले से ही बिछा रखा था। उस पर दो झालरदार तकिया भी लगा दी थीं। खा-पी कर दोनों वहीं जाकर आराम करने लगे। डाक्टर सहसा बोल उठे, "अरे, एक बहुत बड़ी भूल हो गयी दादा ! आपकी सिगरेट तो मैं लाया नहीं।"

तालुकदार ने जेब में हाथ डाल कर कहा, "तुम्हारे भरोसे पर तो आया नहीं जो डरा रहे हो। हमारा सम्बल हमारे साथ ही रहता है।" एक सिगरेट सुलगा कर बोले, "धुएँ का रस तो कभी मिला नहीं भाई को, फिर इसे जानेंगे क्या ?"....फिर धीरे-धीरे धुआँ छोड़ने लगे। डाक्टर कुछ उत्तर देना चाहते थे पर फिर ठहर गए। उन्हें लगा कि वह धुएँ के रिंग की ओर एकटक देखते-देखते उसी में तल्लीन-से हो गए हैं। इस प्रकार कुछ क्षण बीत गए। फिर गले को एक बार साफ़ करके तालुकदार ने मौन भंग किया, "आज से कोई तेरह वर्ष पहले की बात है। नया प्रमोशन मिला था—डिप्टी से पूरा-पूरा जेलर बना था। किसी छोटी-मोटी जगह पर रहूँगा यही आशा थी। पर सहसा मेरी बदली एक बड़े फर्स्ट क्लास डिस्ट्रिक्ट जेल में कर दी गयी—जहाँ पर बहुत से झंझट लगे ही रहते हैं। बड़ी जिम्मेदारी मिली। सरकार पर कृतज्ञ होने की बात थी। किन्तु मेरा तो प्राणान्त ही हो गया। पूरे दिन-रात काम में जुटे रहना पड़ता। जब घर लौटता तब शरीर में कोई शक्ति शेष न बचती, मन

भी झुँझला जाता। घर पर मीरा अकेली थी। उससे किसी दिन दो-एक बातें होतीं किसी दिन वह भी नहीं। दोनों बच्चे छोटे थे। उनसे तो भेंट हो न पाती। बाहर इत्मीनान न था घर में शान्ति न थी। इसी तरह दिन कट रहा था। ऐसे ही समय पर एक दिन जेल में एक नए कैदी की आमदनी हुई। कम उम्र की लड़की थी वह। किन्तु गेट पर आकर जब वह खड़ी हुई, तब ऐसा लग रहा था कि वह जैसे ज्वलन्त अग्नि की तरह है। अग्नि का भी बहुत-सा रूप है। कभी वह तुलसी चौरे का सान्ध्य-दीप तथा दीवाली की दीपमाला है तो कभी सर्वग्रासी दावानल बन जाती है। इस लड़की का रूप भी अग्नि-धर्मी ही था। या तो मंगल-प्रदीप, या प्रकाश-दीप अथवा प्रलय की मशाल। ऐसा लगता था इस लड़की को आखिरी श्रेणी में रखा जा सकता है। नाम कल्याणी था। किन्तु घर में और बाहर केवल अकल्याण के और कुछ भी देकर नहीं आयी थी। अवश्य ही इसमें उसका दोष न था। दोष यदि इसमें था तो उस विधाता का जिसने इस हतभागिनी के अंग-अंग में इतने असह्य रूप की शिखा जला कर ऐसे घर में भेज दिया जहाँ वह उनके लिए अभिशाप बन गयी। कौन जाने यह जानबूझ कर उन्होंने किया था या उसके जीवन से मज़ाक किया था।

"अत्यन्त गरीब घर में उसका जन्म हुआ था। उसने एक पड़ोसी से सुना था कि दस वर्ष की उम्र से ही उसके माँ-बाप ने उसे घर से निकलना रोक दिया था। उसे देखते ही मुहल्ले के छोकरों को कौन कहे बूढ़ों का भी दिमाग चक्कर खाने लगता। उसके बाद उसके विवाह की कोशिश शुरू हुई। मोहल्ले की औरतें आपस में बात करतीं, 'लड़की जाति का इतना रूप ठीक नहीं। उसके भाग्य में दुःख लिखा है।' लगता है बात गलत न थी। अंग्रेजों के एक कवि ने भी संसार की श्रेष्ठ सुन्दरियों के सम्बन्ध में यही बात लिखी है। खैर हटाओ इस बात को। आखिर कल्याणी का विवाह ठीक हुआ।

वर की उम्र तीस-बत्तीस साल थी। दिहात के बाज़ार में एक पंसारी की दुकान थी उसी से घर-परिवार का पालन-पोषण होता था।

"विवाह के बाद देखा गया कि वर बेचारा दुकान-दौरी छोड़ कर घर के भीतर ही घुसा रहता। अभिभावकों को लगा कि उसका दिमाग खराब हो रहा है। मोहल्ले के दो-चार जिम्मेदार लोगों ने राय दी कि लड़के को बाहर नौकरी करने के लिए भेजो। उनके तन-बदन में आग लगी हुई थी। उनमें से कुछ लोगों ने कोशिश कर के सरकार के किसी मुहकमें में नौकरी भी लगा दी। बहू जब पोखरे पर नहाने जाती तब वहाँ पर कुछ छोकरे किसी बहाने से पहुँच जाते। मन्दिर जाने पर ग्राम के रसिकों में भी भक्ति जाग उठती। अन्धेरी रात में घर के पीछे पैरों की आहट मिलती; बर्तन माँजने बैठती तो उस पर उड़ती हुई कोई चिट्ठी आ गिरती। सास-ससुर को पता चलने पर इन सब बातों की जिम्मेदारी बहू पर ही आई। पति बेचारा बीच-बीच में आता था। वह भी सब सुनता। किन्तु वह लाचार था। किसी बुजुर्ग के पास बात करने गया भी तो धमकी खाकर नौकरी पर चला गया।

"इधर जैसे-जैसे दिन गुज़रता बहू की ओर देखा भी न जाता। पेट भरने के लिए दाल-भात जुटता नहीं था, फिर भी उसका शरीर गदराता जा रहा था। यदि एक बच्चा गोद में हो जाता तो ज्वार की तरह से बढ़ने वाले यौवन में स्थिरता आ जाती। किन्तु इसका कोई लक्षण न था। परवानों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही थी। उनमें से एक तो अग्नि पर टूट ही पड़ा। अर्थात् गहरी रात में वह फूस का टट्टर हटा कर उसके सोने की कोठरी में घुसा। शरीर पर हाथ रखते ही उसकी नींद खुल गयी। वह हड़बड़ाई नहीं और लोगों को इकट्ठा करने के लिए चिल्लायी भी नहीं। उसके तकिए के नीचे एक तेज कटारी रक्खी रहती थी। धीरे-धीरे उसे निकाल कर उसने उसे भोंक दी। साथ ही एक भयंकर चीत्कार के साथ

कोई भारी चीज़ गिर पड़ी। इतनी ही बात उसे याद है। उसके बाद क्या हुआ वह उसे नहीं जानती। जब उसे होश आया तब उसने देखा बरामदे के एक कोने में वह पड़ी है और चारों तरफ लोग खड़े हुए बातचीत कर रहे थे। हड़बड़ा कर उठते ही उसने देखा उठान के एक कोने में एक लाश पड़ी है। आधा कन्धा झुका हुआ था और सिर झूल रहा था। फिर भी उसे पहिचानने में कष्ट न हुआ। वह प्रवीन था—गाँव के रिश्ते से कल्याणी का जेठ लगता था।

"उसके बाद वही हुआ जो होता है। थाना, पुलिस, वकील-मुख्तार, हाकिम, अदालत फिर आखिर में हमारा जेलखाना।"

देवतोष ने टोका, "पर यह केस तो ऐसा नहीं जिससे जेल हो। उस लड़की ने जो भी खून किया था, वह तो आत्मरक्षा के लिए ही था!"

ताल्लुकदार ने कहा, "तुम तो कहते हो आत्मरक्षा की बात, पर गवाहों ने यह कहा ही कहाँ? ग्राम के सभी जिम्मेदार व्यक्तियों ने संगठन करके हलफ लेकर बयान दिया कि इस लड़की का ही चरित्र खराब है। नियमित रूप से इसके पास कई लोग आते-जाते थे। मृत जेठ ही इसके मार्ग में रोड़ा था; अतएव किसी से साठ-गाँठ कर के उस बेचारे को बुलाकर हत्या कर दी। ऐसा लगता है हाकिम भी आग देखकर भड़क उठे। इसी से उसे न तो छोड़ा और न फाँसी या कालेपानी की ही सजा दी। ३२६ धारा के अन्तर्गत उसे दो वर्ष की जेल की सजा देकर दोनों पक्षों की बात रख दी।

"जेल आने के दूसरे दिन से ही वह चक्की-जाँते के काम पर जुट गयी। भद्र परिवार की रूपसी तरुणी समझ कर मैंने उसे सिलाई-टिलाई का नरम काम देना चाहा। पर उसने स्वीकार नहीं किया। उसने कहा यही सब करने से तो काम नहीं चलेगा। लौटने पर फिर यही चूल्हा-चौका उसे सम्हालना पड़ेगा, किन्तु जेल से लौटने पर वहाँ के जाँते खाली नहीं पड़े रहेंगे, यह बात उस समय तक कल्याणी को मालूम नहीं हुई थी।

"जब तक वह जेल में थी उसकी खोज-खबर किसी ने भी न ली। न किसी ने चिट्ठी भेजी और न कोई मिलने ही आया। जिस दिन वह मुक्त हुई, उस दिन की खुराकी, रास्ता खर्च और क्लाड मार्टिन फण्ड से कुछ बख्शीश देकर एक लड़की के साथ उसे उसके श्वसुर के घर बिदाकर दिया। एसकार्ट उसे पहुँचा कर लौट आयी।

"उससे कोई तीन दिन बाद मैं ग्यारह बजे रात घर लौटा तो देखा सदर दरवाज़े के पास अन्धकार में कोई खड़ा था। मैंने पूछा, 'कौन ?' सिर उठाकर उसने कहा, 'मैं, कल्याणी।'

'तुम यहाँ कैसे ?'

'कहाँ जाऊँ ? उन लोगों ने मुझे घर में नहीं रहने दिया और मार-पीट कर निकाल दिया।'

'बाप के घर गयी थीं ?'

'गयी थी। माँ तो है नहीं बाप ने भी रखने से इन्कार कर दिया।'

'उसके बाद उसने जो भी कहा उसके माने यही था कि कुछ ने आश्रय देना चाहा और कुछ ने सहानुभूति भी दिखायी पर उनका उद्देश्य क्या था वह समझ कर वह उनके पास खड़ी भी न हुई।

"उसे नीचे बैठने के लिए कहकर मैं ऊपर गया। मीरा को कई दिनों से बुखार था। उसी दिन उसे पथ्य मिला था। थकी-सी वह सो रही थी। फिर नीचे उतर आया। नौकर से पूछने पर मालूम हुआ रसोई में कुछ भात-तरकारी है। उसे ही ले आने के लिए मैंने कहा। कल्याणी जैसे तैयार बैठी थी। कुछ कहने-सुनने का भी इन्तजार न किया। जिस तेजी से वह खाने लगी उसे देखकर नौकर को भी यह समझने में देर न लगी कि उसे दो दिनों से जैसे खाना नहीं मिला है। उसके बाद नौकर को सिपाहियों के गारद में और उसकी कोठरी में उसके सोने की व्यवस्था कर मैं सदर दरवाज़ा बन्द कर के ऊपर चला गया।

"दूसरे दिन सुबह उठते ही मीरा को सभी बातें बतायीं। वह क्षण-

भर चुप रहने के बाद बोली, 'जब वह आई थी तब मुझे भी बुला लेते।'

"मैं बोला, 'तुम गहरी नींद में सो रही थीं इसी से नहीं जगाया।'

"नीचे आकर देखा कल्याणी स्नान कर के गीले बालों को बाँधे हुए बड़े उत्साह के साथ काम में लगी हुई थी। ऐसा लगता था मानो वह इस मकान में नई नहीं आयी है और उसका ही अपना सब काम है। मुझे देख कर रसोईघर से बाहर निकल कर बोली, 'जरा ठहरिए दादा।' अर्थात् रात ही रात में यह नाता भी मुझसे जोड़ लिया था। मेरे ठिठकते ही उसने प्रणाम किया। मैंने पूछा, 'क्या बात है? सहसा प्रणाम कैसा?'

"वह ज़मीन की ओर देखते हुए ही धीरे-धीरे बोली, 'आपने जो रुपए दिए थे उनसे ही मैंने एक धोती खरीद ली थी। नए कपड़े पहनने पर गुरुजनों को प्रणाम करना चाहिए।'

"मेरी नज़र उसकी लाल किनारी की नई धोती पर पड़ी।' बोला, 'यह तो ठीक है। पर यह सब कर क्या रही हो?'

'क्या?' कह कर मुँह उठा कर उसने देखा।

"रसोईघर का चेहरा बिल्कुल ही बदल गया था। उसी ओर उँगली उठा कर मैंने फिर पूछा। वह अप्रतिभ न होकर बोली, 'वाह, मेरे रहने पर रसोई कौन पकाएगा? भला लड़के खाना बनाना क्या जानें?' 'लड़के' से मतलब मेरे नौकर से था, देखा वह बहुत प्रसन्न था। अपने अधिकार को छोड़ कर 'दीदी' की फरमाइश पर काम कर रहा था।

"कल्याणी ने पूछा, 'बहू जी कहाँ हैं दादा? मालूम हुआ वह बीमार हैं। ऊपर जा सकती हूँ? और कोई तो नहीं है?'

"नौकर के साथ मैंने उसे ऊपर भेज दिया। उसने पहले उसके पति का और पिता का पता-ठिकाना जान लिया। वह हँस कर बोली, 'पता लेकर क्या करेंगे? चिट्ठी लिखेंगे तो वे कोई नहीं आवेंगे।'

"दो दिन भी नहीं गुज़रे। हमारे घर का पूरा भार कल्याणी के

हाथों में चला गया। ऐसा अनायास जिसे हम जान भी न सकें। दोनों बच्चों को उसने सिखा दिया कि वह उनकी बुआ है। एक दिन में ही उनका फैसला भी हो गया। उनको खिलाना, पहिनाना, स्कूल भेजना, मीरा की सेवा-सुश्रुषा, दवा-दारू फिर उस पर से रसोई का सारा भार—पूरे दिन चर्खी जैसी जुटी रहती। बार-बार ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर किया करती। दिन और रात दोनों समय मुझे घर लौटने में देरी होती। मीरा को वह पहले ही खिला-पिला देती। कोई भी आनाकानी न मानती। फिर मेरे आने पर थाली परोस कर सामने बैठ कर पंखा झलने लगती। कोई चीज़ भी थाली में छोड़ना मुश्किल था।

"किन्तु आग कभी दबी नहीं रह सकती। उसे बाँध कर भी नहीं रखा जा सकता। 'परवानों' को इसकी सूचना मिली। इस बार पुरुष नहीं, एक तरह से 'स्त्री परवाने।' यह सब थीं शुभाकांक्षिनी पड़ोसिनें। कठिन से कठिन मुसीबत में भी किसी दिन वह नहीं आयीं, अब वह जब-तब आकर जुटने लगीं। हमारी बीमार पत्नी के लिए उनके हृदय में दर्द उबलने लगा। कितने उपदेश और कितने शास्त्रवचन सुनातीं। लौट फिर कर उनका इशारा एक ही होता। एक दिन शाम को आफिस के लिए निकला तो मीरा के कमरे के पास पहुँचते-पहुँचते सुनाई पड़ा कोई बुज़ुर्ग महिला कह रही थीं, 'तो बहू घी और आग पास-पास रहने से किसी भी समय प्रलय हो सकता है। अभी अगर सख्ती न करोगी तो बाद में रोने का भी ठिकाना न लगेगा।'

"सब सुना, सब देखा! यह भी देखा मीरा के चेहरे पर हँसी न थी, आँखों में कोई विषाद छाया रहता। दिन प्रति दिन वह सूखती जा रही थी। दवा-दारू और पथ्य कोई भी काम नहीं कर रहा था। इधर कल्याणी की ही बात ठीक हुई। उसके पितृ-कुल या श्वसुर-कुल से किसी ने कोई खबर भी न ली। जितने भी 'रेसक्यू होम' या आश्रय-टाश्रय की खबर मिली, सभी को बार-बार लिखता—पर कहीं से कोई भी खबर

लेने वाला न मिला। कल्याणी का मामला जब चल रहा था उस समय एक स्थानीय साप्ताहिक पत्र के तरुण सम्पादक ने उसके वीरत्व की प्रशंसा में तीन कालम का अपना वक्तव्य दिया था। उनकी शरण ली। वह उससे एक बार मिलना चाहते थे—जिसे समाचारपत्रों की भाषा में इन्टरव्यू कहते हैं। वह जाँच करना चाहते थे कि कल्पना की वीरांगना और वास्तविकता से कितना मेल है। कल्याणी के साथ सम्पादक महाशय की मुलाकात करा दी। फिर उसके बाद उन्होंने इतनी बार मिलना शुरू किया कि कल्याणी को फिर उनके सामने आने के लिए राजी नहीं किया जा सका।

"मीरा भी बीच-बीच में पूछतीं कि उसकी कोई व्यवस्था हुई या नहीं। कुछ दिनों के बाद यह प्रश्न मेरे सामने बार-बार आने लगे। एक दिन आफिस से लौटने पर कपड़े बदल रहा था तो वह मलिन मुख से आकर बोली, 'कल्याणी का कुछ किया ?'

"आफिस के कई कामों से मन बहुत खराब था। मुँह से कड़ा जवाब निकल गया, 'देख तो रही हो कोई कोशिश भी बाकी नहीं छोड़ रहा हूँ। कोई स्थान न मिलने पर उसे सड़क पर तो नहीं निकाल दिया जा सकता।'

"मीरा ने क्लान्त नेत्रों से एक बार देखा। फिर चुपचाप वह अपने अपने कमरे में चली गयी।

"इस बात को भी कई दिन हो गए। बराबर का नियम था कि मेरा रात का खाना ऊपर हमारे सोने के कमरे में ढाँक कर रख दिया जाता था। घर लौटने पर मीरा की तबियत ठीक होती तो वह उठ कर मेरी थाली परोस देती और खराब होने पर मैं अपनी थाली परोस कर खाना खा लेता। कल्याणी ने यह सभी नियम उलट दिया। मेरे लौटने की वह प्रतीक्षा करती। मेरे आने पर ही लूची* बनाने के लिए

***बंगाल में मैदे की पूड़ियों का बहुत रिवाज है, उसे ही लूची कहते हैं।—अनु०।**

कड़ाही में घी डालती। और चीज़ें पहले ही बना कर रखे रहती। मेरे पाँव धोते ही देखता वह थाली लेकर ऊपर आ रही है। कई दिनों तक मैंने कहा, 'मेरी थाली यहाँ रख कर तुम सब खा-पी लिया करो। बैठे रहने की जरूरतही क्या है? लूची को भी तो पहले से ही बना लेने से काम चल सकता है।' साथ ही साथ वह भी थाली को मेरे सामने रखते हुए कहती, 'आप तो जानते हैं कि इसमें मुझे कोई कष्ट नहीं होता। एक ही बात कितनी बार कहेंगे!'

"निष्फल जान कर फिर इस बात को और न बढ़ाता। उसकी ही व्यवस्था को स्वीकार कर लिया। उस दिन भी चुपचाप खा लिया था। रात को ग्यारह बज चुके थे। कल्याणी दरवाजे के पास खड़ी थी। मुँह-हाथ धोने के लिए मैं उठा और चौखट तक पहुँचते ही सहसा भरे गले से वह बोली, 'मुझे निकाल क्यों रहे हैं! मैं आपका कर ही क्या रही हूँ?' मैं ठिठक गया। दीर्घायत घन पल्लव सी दो काली पुतलियाँ मुझे एकटक देख रही थीं। कुछ बोलने की जरूरत थी और मैं बोलना ही चाहता था कि कल्याणी बैठ कर मेरे दोनों पैरों को पकड़ कर झर-झर कर रोने लगी। 'मैं आपके पैरों पड़ती हूँ, मुझे एक कोने में पड़ी रहने दें। आप लोगों को छोड़ कर, वीरू-नीरू को छोड़ कर मैं कहीं भी जाकर नहीं रह सकूँगी।'

"वह पैर छोड़ना ही नहीं चाहती थी। मैं झुक कर बाएँ हाथ से उसके कन्धे को पकड़ कर छुड़ाने की चेष्टा करते हुए बोला, 'यह सब क्या पागलपन है! उठो आज ही तो तुम कहीं जा नहीं रही हो।'

"सहसा कानों में तेज स्वर सुनाई पड़ा, 'नीचे जाओ कल्याणी!' मैं चौंक-सा उठा। उसका कन्धा छोड़ कर मैं सीधा खड़ा हो गया। कल्याणी भी झटपट उठ कर आँचल से आँखों को पोंछती हुई चली गयी। ज्वलन्त नेत्रों से मेरी ओर देख कर तेज कण्ठ से मीरा बोली, 'इसीलिए तो उसे कहीं भी जगह नहीं है?'

"सीढ़ी पर उसके पैरों की आहट मिल रही थी। मैंने दबी भर्त्सना के स्वर में कहा, 'मीरा'। उसने पल भर में ही ठीक वैसे ही स्वर मे कहा, 'अब मैं बरदाश्त नहीं कर सकती। मैंने और कई दिन....'

"भीषण उत्तेजना से उसका दुर्बल शरीर थर-थर काँप रहा था ऐसा लगा वह अभी ही गिर जायगी। मैंने आगे बढ़ कर उसे पकड़ना चाहा। पर वह झिटक कर चली गई। उसके बाद तेजी से कमरे में जाकर धड़ाम से दरवाज़े को बन्द कर लिया।

"वह रात मेरी टहलते ही टहलते बीती। कभी बरामदे में जाता तो कभी छत पर। सुबह जब मैं नीचे उतरा तो नौकर ने आकर खबर दिया कल्याणी नहीं है। हृदय को एक धक्का-सा लगा। फिर अपने मन को समझाने लगा, चलो ठीक ही हुआ। इतने दिनों से जिस समस्या को मैं नहीं सुलझा सका था उसे उसने अपने आप ही सुलझा दिया। आफिस जाते समय एक नौकर मुड़ा हुआ कागज़ लाया और बोला, 'रसोईघर में ताक पर यह रखा था। ऊपर पेन्सिल से जनाने हाथ से लिखा था 'बहू दीदी!' एक बार इच्छा हुई कि देखूँ क्या लिखा है। किन्तु हाथ बढ़ाते ही फिर ठिठक गया। बोला, जाकर, 'माँ जी को दे आओ।' उस चिट्ठी में क्या था आज भी मैं नहीं जान सका।

"आफिस जाने के बाद कान में खबर पहुँची कि कई सिपाही उसे खोजने के लिए निकले हैं। मैंने दरियाफ्त किया किसने खोजने के लिए कहा? उसका जवाब मिला, 'माँ जी की आज्ञा है।'

"बहुत खोज के बाद दूसरे दिन शाम को जेल से कुछ दूर एक बड़ा सा बाग है और वहीं पर पोखरे में वह पायी गयी।

"तुम तो कभी-कभी साहित्य चर्चा भी करते हो डाक्टर! मैं तो भाई उस रस से वंचित ही हूँ! सुना है तुम्हारे कवियों ने शतकण्ठ से मृत्यु की महिमा गायी है। मरण बहुत सुन्दर है, शीतलता की गोद में वह अग्नि को आश्रय देता है, इसी तरह की सब अच्छी-अच्छी बातें उनकी

किताबों में लिखा है। उन्होंने क्या देखा है नहीं जानता। किन्तु मृत्यु कितनी भयंकर है, कितनी कुत्सित है मैंने उस दिन अपनी आँखों से देखा। विश्व-विधाता की अनुपम सृष्टि का जो नारी रूप है, मृत्यु के स्पर्श से उसकी वीभत्स विकृति क्या नहीं हो सकती। उस समय सन्ध्या हो रही थी। कई डोमों ने खींच-खाँच कर कल्याणी के शरीर को हमारे मकान के सामने लाकर रख दिया। ऊपर से मीरा भी देखेगी इसका ख्याल न रहा। सहसा चीत्कार सुन कर जाकर देखा तो वह बेहोश हो गयी थी। डाक्टर आए। कुछ देर बाद होश आया पर जाड़े के साथ बुखार आ गया। बीच-बीच में भयभीत रक्तिम नेत्रों से वह देख रही थी। बीच-बीच में चौंक भी पड़ती थी।

"यह तो हुई शुरुआत। फिर इसके बाद व्यर्थ इलाज का दौर शुरू हुआ। छोटे-बड़े कितने ही डाक्टरों ने देखा। दवाइयों की शीशियों से घर के आले भर गए। दूसरी चीजों के लिए कोई जगह नहीं रह गयी। फिर भी रोग पकड़ में न आया। आखिर में एक कविराज आए। प्रातः, मध्याह्न और तीसरे पहर और शाम को चार प्रकार की औषधियाँ और कुछ अनुपान कुछ दिनों तक चलाता रहा। आखिर में वह भी थक गए।

"मैंने सोचा कि यदि मीरा को बचाना है तो सब से पहले इस मकान और इसके अभिशप्त वातावरण से उसे हटाना जरूरी है। किन्तु बदली के लिए बार-बार करुण आवेदन करने पर भी अफसरों का मन न पसीजा। अन्त में बड़ी मुश्किल से छुट्टी मिली। उसे लेकर मैं निकल पड़ा। सिमूलतल्ला में कई मास छुट्टियाँ काट कर आखिर खुलना गया। नदी के पार दो तल्ले का मकान था। चौड़े और खुले हुए बरामदे में ईज़ीचेयर पर बैठने पर ठीक सामने ही विशाल भैरव, और उसके आगे सुपाड़ी, नारियल, तथा आम के पेड़ों से घिरा हुआ गाँव दिखाई पड़ता। वहीं वह दिन का अधिकांश समय काटती। एक

दिन वह बोली, 'ए जी सुनो, यह जगह मुझे बहुत अच्छा लगता है। यहाँ मुझे कुछ दिन रखोगे तो?'

"मैं पास बैठ उसके रक्तशून्य सूखे हाथों को अपने हाथों में लेकर बोला 'रखूँगा क्यों नहीं। इसीलिए तो आया हूँ। अब तुम चटपट अच्छी तो हो जाओ।'

"मीरा एक निःश्वास फेंक कर चुप रही। यह केवल छलना है इसे वह जानती थी मैं भी जानता था।

"कुछ दिन बीतने पर उसका बरामदे में निकलना भी बन्द हो गया। बिछौने से उठना भी मुश्किल था। खिड़की के सामने उसकी खाट लगी थी। उसी पर दिन-दिन भर वह लेटी रहती। मुझे जब भी समय मिलता पास आकर बैठ जाता। उस दिन भी मैं उसके सिरहाने पर बैठा आहिस्ते-आहिस्ते उसके सिर को सहला रहा था। रात में कोई दस का समय था। बच्चे बगल के कमरे में सो रहे थे। मीरा भी आँखें बन्द किए सो रही थी। एक हाथ शिथिल रूप में मेरी गोद में पड़ा था। काफी समय तक मौन ही कट गया। बाद में उसने धीरे-धीरे आँखें खोलीं। कई मिनट तक मेरे चेहरे की ओर एकटक देखने के बाद बोली, 'सिर पकड़ कर मुझे बैठा दो न! अब सो नहीं पाती।' हिलने-डुलने के लिए डाक्टर ने मना किया है। किन्तु उसकी ओर देख कर मैं 'नहीं' न कर सका। पीठ की ओर कई तकियों को रख कर उसके शरीर को उठा दिया। वह कुछ क्षणों तक उसी प्रकार देखती हुई बोली, 'एक काम करोगे? मेरा सन्दूक खोल कर मेरे गहने का बक्स ला दो।' मैंने रोकते हुए कहा 'तुम सो जाओ मैं देखता हूँ। इस रात में गहना लेकर क्या करोगी?' मीरा हमेशा से शान्त थी और जो कहता वही करती थी। बीच-बीच में मेरा मन लेने का उसका स्वभाव अवश्य था। बहुत दिनों से भोगते-भोगते उसके धैर्य का बाँध जैसे टूट जाना चाहता था। बात-बात में वह गफलत में आ जाती थी। बोली, 'आह, तुम्हारे साथ मैं बहुत बात नहीं कर सकती।

कह रही हूँ कि ले आओ न बक्स को।' अब आपत्ति न करके मैं उसे ले आया और उसके आँचल से चाभी लेकर उसके सामने खोल दिया। कुछ देर तक वह उसकी ओर देखती रही।

"वह बड़े घर की लड़की थी। विवाह के समय उसके पिता ने बहुत रुपयों के गहने दिए थे। उसका काम था बीच-बीच में उन्हें तुड़वा कर और नए गहने बनवाना। किन्तु इतने पर भी वह उन्हें कभी पहनती न थी। इसी बात को लेकर मैं उससे कहता भी पर वह हँस कर कह देती, 'मुझे बहुत लज्जा आती है।' कभी कहती कि 'सजधज कर क्या होगा? फिर अब क्या उसकी उम्र है?' एक बार उससे इसी बात को लेकर मैंने बहुत कहा-सुनी की। उस समय उसमें बहुत ही बचपना-सा था। किसी ज़मींदार के यहाँ निमंत्रण था। मुझे भी जाना था। हाथ में एक सेट चूड़ी और गले में एक साधारण नेकलस पहिन कर चलने के लिए तैयार होकर वह बाहर आ गयी। मैं झुँझला उठा। मैंने ज़िद की कि जड़ाऊ गहनों को न पहन कर आने पर मैं नहीं जाऊँगा। इसके पहले उसने उनको कभी नहीं पहिना था। सीढ़ी से जब हम उतर रहे थे तो हमारे शरीर से सट कर फुसफुसा कर बोली, 'मेरा सबसे बड़ा शृंगार तो हमारे साथ ही चल रहा है। और गहना पहनने से क्या होगा?'

"उस रात को भी आँखों के सामने यह सब बातें घूम गयीं। मैंने कहा, 'इन सबको तो तुम बहुत दिनों से बक्स में ही बन्द रखे रहीं। आज दो एक पहनोगी? आओ पहिना दूँ।'

"'धत्'—सलज्ज हँसी से उसने कहा। फिर वह बोली, 'यह नेकलस और बालियाँ मेरे हाथों में दो।' मैंने उसे दिया। वह उसे दो-एक बार उलट-पलट देख कर बोली, 'इसे अलग रखो। हमारे बीरू-नीरू की जब बहुएँ आवेंगी तब तो मैं रहूँगी नहीं, तुम इसे देकर उनका मुँह देखना।'

"तुम तो यह जानते हो डाक्टर कि मैं बहुत दिनों से सब्र करने वाला आदमी हूँ। मेरी आँखों में सहज ही जल नहीं आता। किन्तु उस दिन मेरे दोनों नेत्रों के सामने अन्धकार सा छा गया। और वह डबडबा आयीं'। मैं बोला, 'तुम चली जाओगी और वीरू-नीरू की बहुओं को देखने के लिए क्या मैं अकेला रहूँगा? यह अभि-शाप हमें न दो मीरा!' मीरा ने और कुछ कहा। देखा उसके नेत्रों के दोनों कोर भी डबडबा आए हैं। मैंने रूमाल से उसके आँसुओं को पोंछ दिया। फिर कुछ शांत होकर बोली, 'और बाकी गहने मैंने तुमको दिया।'

"मैं चौंक पड़ा और उसके चेहरे की ओर देखने लगा। यह क्या कह रही है मीरा! वह जब नहीं रहेगी तब उसके ही गहनों से मैं और किसी को सजाने बैठूँगा? जाते समय मुझे देने के लिए क्या यही आघात था? चुपचाप बैठा देख कर मीरा कदाचित मेरे मन की बात को ताड़ गई। मेरे हाथों को दबा कर वह बोली, 'तुम नाराज़ हो गए? मैंने क्या कहा तुमने सुना! तुम जो सोच रहे हो उसकी मैंने कभी कल्पना भी न की थी। इतने दिनों में क्या मैंने तुमको पहिचान भी न सकी?'

"मैं तुरंत ही बोल उठा 'नहीं, नहीं, मैं कुछ भी नहीं सोच रहा हूँ, मीरा! कहो तुम क्या कहती हो।'

"मीरा ने कुछ सोच कर कहा, 'यह गहने मैं तुमको वैसे ही नहीं दे रही हूँ। यह है मेरा जुर्माना। जो अपराध मैंने तुम्हारे सामने किया है उसका ही यह केवल दण्ड है।'

"मैं स्तब्ध हो उठा। इसका क्या उत्तर देता? मुझसे अधिक यह कौन जानता था कि यह जो आज नितान्त असमय ही मृत्यु के द्वार पर आ खड़ी हुई है इसके मृत्यु का क्या कारण है। तुम्हारे शास्त्र में इसे रोग या व्याधि कहेंगे। पर इसके पीछे केवल वही उस रात की एक आश्रिता लड़की के प्रति उसका मरनाहत वीभत्स रूप था। मेरी आँखें डबडबायी हुई थीं और मेरा गला भरा हुआ था।

फिर भी मैंने कहा, "मुझसे तो तुमने कोई अपराध किया नहीं। यदि कभी कुछ किया भी तो वह केवल भूल थी। ऐसी परिस्थिति में सभी औरतें करतीं। इसके लिए तुम्हारे विरुद्ध मेरी कोई नालिश नहीं। मन से तुम उस दाग को बिल्कुल भूल जाओ।"

बहुत देर से बैठे-बैठे वह थक चुकी थी। अब उसने अपने सिर को मेरे कंधे पर टिका कर कहा, "मैं जानती थी कि जाने से पहले तुम मुझे जरूर क्षमा कर दोगे। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मेरी बातों को रखना। मेरी अन्तिम इच्छा को पूरी होने दो।"

मैंने कहा, "ठीक है तुम अपने गहने दे दो। किन्तु अगर तुम न रहोगी तो इन सोने को लेकर मैं क्या करूँगा?"

मीरा थोड़ी देर तक कुछ न बोली। अपने शरीर का सम्पूर्ण भार मेरे ऊपर डाल कर वह अन्तिम गहरा सान्निध्य अनुभव करने लगी। फिर कुछ देर तक वह इसी तरह पड़ी रहने के बाद आश्चर्य करुण कण्ठ से धीरे-धीरे बोली, "जिस अभागी लड़की ने मेरे साथ शत्रुता की है, उसकी तरह ही जो निर्दोष स्त्रियाँ जेल आती हैं फिर बाहर निकलने पर संसार में उनको कहीं पैर रखने की भी जगह नहीं मिलती, और चारों तरफ केवल लांछना ही मिलता है—उनके लिए तुम कोई उपाय करो। आश्रय के अभाव में जिससे किसी को अब अपना प्राण न देना पड़े।" इतना कह कर वह सिसक-सिसक कर रोने लगी। मैंने भी उसे नहीं रोका। उसे रो लेने की जरूरत भी थी। कुछ देर बाद जब हृदय का भारीपन हल्का हुआ तो आहिस्ते-आहिस्ते अपने बिस्तर पर लेट गयी। फिर कुछ देर तक विश्राम करने के बाद मेरे हाथ को पकड़ कर बोली, "बोलो मेरी बात रखोगे?"

उसके रूखे-सूखे बालों पर हाथ फेर कर मैंने कहा, "हाँ रखूँगा। अब तुम सो जाओ।"

मीरा के रक्तहीन पीले चेहरे पर एक परम-तृप्ति की आभा फूट पड़ी। धुँधले प्रकाश में भी यह बात मुझसे छिपी न रह सकी।

फिर एक महीने के भीतर ही सब कुछ समाप्त हो गया।

९

कुछ चीज़ें खरीदनी थीं और दो-चार जगहों पर मिलना था। वह दिन उसी में कट गया। दूसरे दिन डाक्टर बेलघरिया पकड़ कर ले गए। रास्ते में जाते-जाते तालुकदार ने कहा, "आज तो तुम अकले भी आ सकते थे। मेरी क्या जरूरत थी?"

डाक्टर ने कहा, "वाह, आपको लेकर फिर से सभी को अच्छी तरह से देखना है! आज मैं जिस दृष्टि से देखूँगा वह तो कल थी नहीं।"

रक्तपरीक्षा से मालूम हुआ कि शांति को टाइफाइड हो गया है। उसके लिए जो कुछ करने की जरूरत थी, वह सब निपटा कर देवतोष महेश को लेकर चारों तरफ घूम-घूम कर देखा। बीच में एक बार पूछा कि, "क्या भाभी का गहना ही आपका एकमात्र सम्बल है?"

तालुकदार ने कहा, "मूल में तो वही था। गहनों को बेंच कर बारह हजार मिला था। फिर और भी कुछ इकट्ठा करना पड़ा।"

"और अभी भी वही चल रहा है?"

"नहीं, अब तो उतना नहीं कर पाता। दोनों बच्चों के बोर्डिंग के खर्चे फिर...." कह कर वह रुक गए।

देवतोष ने कहा, "फिर और भी दो-चार का भार आप पर है इसकी भी खबर मुझे है।"

तालुकदार इस प्रसंग को दबा कर बोले, "यहाँ तो इन लोगों को और पूँजी की जरूरत भी नहीं है। यह स्वयं अपना खर्च निकाल तो लेती हैं साथ ही कुछ बचा भी लेती हैं। एक करघा और तीन लड़कियों को लेकर इसे शुरू किया गया था। आज बारह लड़कियाँ काम करती हैं। वर्कशाप भी उससे बढ़ाना पड़ा।"

दीवाल की ओर देखते हुए डाक्टर ने सहसा पूछा, "भाभी को क्या कोई फोटो है?"

"नहीं किसी दिन भी फोटोग्राफर के यहाँ उन्हें न ले जा सका। यही एक बड़े लज्जा की बात मेरे लिए है।"

सामने दूर तक दृष्टि फेंक कर जैसे किसी अदृश्य वस्तु को देखने का प्रयास करते हुए तालुकदार ने कहा, "कौन जाने विधाता का इसमें भी कोई अभिप्राय रहा हो। ऐसा न होता तो मीरा केवल चित्रवत् ही मेरे सामने रह जाती। अभी तो मैं यहाँ की सभी चीज़ों में उसकी प्रतिच्छवि देखता हूँ"।

वह बूढ़ी आज भी बड़ी दे रही थी। घूमते-घूमते तालुकदार उसके निकट पहुँच कर बोले, "कैसी हो बुआ।"

बूढ़ी ने प्रसन्नता से मुस्करा कर कहा, "आए हो बेटा! कल उन लोगों से सुना तुम चले गए। मैं सोच रही थी कि बगैर मुझसे मिले कैसे जा सकते हो!"

"कल समय न था। आज फिर आया।"

"ठीक किया बेटा! तुम्हारी ही दया से तो यहाँ पर हम सब अच्छी तरह से खा-पीकर सुखी हैं। ऐसा न होता—"

"हमारे लिए बड़ी रक्खा है न?"

"रखूँगी क्यों न बेटा। उमा के पास ठोंगे में रक्खा है। मन हो तो ले लेना किन्तु?"

"जरूर लूँगा। पिछली बार जो दिया था उसे दो-चार करके एक महीने तक खाया था।"

बूढ़ी का चेहरा खुशी से चमक उठा।

स्टेशन जाते समय तालुकदार ने कहा, "ऐसा लगता है कि इस टाइफाइड के केस को सम्हालने में ही तुम्हारी पूरी छुट्टी खत्म हो जायगी।"

डाक्टर अन्यमनस्क भाव से पता नहीं क्या सोच रहे थे। सहसा नींद जैसे टूटी हो। बोले, "क्या कहा, छुट्टी? आशीर्वाद कीजिए दादा कि मेरी छुट्टी अक्षय हो।"

"क्या मतलब?"

"मतलब साफ है, गुलामी अब नहीं करना चाहता। सोचता हूँ ऐसी ही किसी गली में एक साइनबोर्ड लगा कर बैठ जाऊँ।"

"इन फालतू बातों को छोड़ो। आजकल मुहल्ले-मुहल्ले, में एम० बी० पहुँच गए हैं। तुम्हारे जैसे कैम्पबेल वालों* को कौन पूछेगा।" फिर अपनी तरफ इशारा करके बोले, "इस तरह के फोकटिए ग्राहकों से भी तो तुम्हारा पेट नहीं भर सकेगा।"

"खूब भरेगा दादा! सिर्फ दो ही तो पेट हैं। उसमें कितना खा लेंगे?"

तालुकदार गम्भीर हो गए। कुछ देर तक चुप रहने के बाद बोले, "तुम्हारे मन की बात मैं समझता हूँ देवतोष। इन औरतों की देखभाल करने वाला कोई नहीं है। यह शांति ही थी जो जैसे और जितना भी बन पड़ा इतने दिनों सब काम को चलाती रही। कामकाज वाले लोगों से मिलने-जुलने का भी भार उस पर ही था। वह जब से बीमार पड़ी है यहाँ की हालत तब से ठप्प है। मैं भी बीच-बीच में आकर इनको देख-सुन सकूँ ऐसा भी सम्भव नहीं। काम के समय पर तुम्हारा मिलना मेरे लिए स्वर्ग मिलने जैसा हो गया। किन्तु

कलकत्ता मेडिकल कालेज के स्नातकों की उपाधि एम० बी० है। कैम्पबेल मेडिकल कालेज कलकत्ता भी लाइसेंशिएट आफ मेडिकल प्रक्टिशनर की डिग्री देती है जो उससे छोटी मानी जाती है।

सलिए ही तो तुम्हारे जैसे लड़के का उज्वल भविष्य नष्ट करके क छोटा मोटा काम करने की सलाह तो मैं दूँगा नहीं। यह सब ागलपन मत करो।"

देवतोष हँस पड़े, "बुरा न मानना दादा! आपकी बात सुनकर मुझे अपने अनाटामी के प्रोफेसर डाक्टर घोष का प्रथम लेक्चर याद ा आया। आपके इसी 'उज्वल-भविष्य' की बात उन्होंने भी उस दिन कोई पाँच बार कहा था। किन्तु एक साधारण सी बात वह ाहीं जानते थे और आप भी कदाचित जान कर भी नहीं ध्यान दे हे हैं कि जो कुछ भी 'उज्वल' है वही सुन्दर नहीं है। उसकी ाकाचौंध में आँखें भटक सकती हैं पर मन को भुलावे में नहीं डाला ा सकता।"

तालुकदार के चेहरे पर एक दृष्टि डालकर देवतोष ने फिर हा—"आप क्या सोच रहे हैं, मैं जानता हूँ। रुपया बहुत काम की ीज़ है, इसे भी इन्कार नहीं करता। फिर भी इतना तो कह ही दूँ क वही सब कुछ नहीं है। दो-एक ऐसे भाग्यवान व्यक्तियों को मैं ानता हूँ जो डाक्टरी कैरियर से इतना उठे जिसे सचमुच 'उज्वल' हा जा सकता है। सारी उम्र उन्हें बस बैंक बैलंस ही बढ़ाते रहने ा नशा सा था। वे बैंक के खाते में मोटी तौर पर अंक के दाहिनी ोर शून्य पर शून्य बढ़ाते गए—पर आखिरी उम्र में मन के पन्ने र नज़र डाला तो देखा बाईं तरफ के अंक मिट गए हैं और केवल ून्य ही शेष रह गया है। लेकिन मेरा तो शून्य देने से काम चलेगा ाहीं दादा। ऐसा कुछ करना है जो मन की पसंद हो।"

तालुकदार ने कोई उत्तर न दिया। कुछ देर के बाद देवतोष ाश्वासन के स्वर में बोले, "आप डरें नहीं। अभी मैंने कोई पक्का ाश्चय नहीं किया है। फिर भी सहसा कभी कोई मित्र अफसोस के ाथ आपसे कहें कि मूर्ख डाक्टर ने ऐसी अच्छी नौकरी को भी कायम रखा तो आप चौंक न जाएँगे।"

डाक्टर की बात पूरी होने पर निःश्वास फेंकते हुए तालुकदार ने कहा, "तुम्हारे भाग्य में दुःख है यह मैं समझ रहा हूँ। फिर भी इस बात को नहीं सोच रहा हूँ। सोचता यही हूँ कि जेल वालों में महेश तालुकदार का नाम अब तक 'लड़कियाँ पकड़ने वाला' था। काफी यश भी कमाया था। अब लगता है 'लड़का पकड़ने वाला' के रूप में भी मैं अपना सुनाम छोड़ जाऊँगा।"

डाक्टर हो....हो....करके हँस उठे।

उस दिन शाम को देवतोष को किसी काम से सुलोचना ने घर से बाहर भेजा था। फिर सब काम को निपटाकर बरामदे में महेश के सामने आ बैठीं। बगैर कोई भूमिका बाँधे ही उन्होंने कहा, "हमारे देबू के लिए एक बहू ला दो बेटा। तुमको छोड़ कर हमारा यह काम और कोई नहीं कर सकता।"

"ठीक है माँ, मैं खोजूँगा। यह मुश्किल ही क्या है।"

"जानते हो महेश, इतने दिनों तक मैं उसके विवाह को लेकर कभी भी चिन्तित न थी। किन्तु अब ऐसा लगता है कि ऐसा कोई चाहिए जो उसका भार सम्हाल सके, उसे समझ सके और सब समय उसके साथ रह सके। माँ से तो यह सब काम होता नहीं। फिर मैं अब रहूँगी ही कितने दिन?"

"यह बात कहोगी तो झगड़ा हो जायगा माँ। लड़के का विवाह कर दो। मन लायक एक बहू लाकर बहुत दिनों तक घर में आराम करो। दो-चार नाती पोतों को देख लो तभी तुमको छुट्टी होगी।"

सुलोचना ने हँस कर कहा, "इतना मैं नहीं चाहती बेटा। देबू हमारा स्थिर होकर बैठ गया और इधर-उधर भटक नहीं रहा है बस इतना देख कर ही मैं निश्चित होकर जा सकती हूँ।"

सुलोचना उठ कर जाने लगीं। महेश ने कहा, "लेकिन कैसी

लड़की आपको पसंद है, यह तो कुछ बताया नहीं, माँ।"

"बात सुनो! कैसी क्या? उसका मन जिसे पसंद करे और जिसको पाने से वह सुखी हो सके वही मेरी पसन्द है। वह कोई भी लड़की क्यों न हो। मेरे सामने तो वह हमारे देवतोष की बहू ही होगी। इससे अधिक मैं कुछ भी जानना सुनना नहीं चाहती बेटा।"

डाक्टर का चेहरा माँ से बिल्कुल मिलता था। माँ के चेहरे की ओर थोड़ी देर तक श्रद्धापूर्वक देखने के बाद तालुकदार बोले, "इतने दिनों तक देवतोष को देखने से आश्चर्य लगता था। कितना उदार हृदय पाया है। जितना ही देखता था उतना ही मुग्ध होता था। आज अब नहीं हुआ। मैंने देखा वह भी उसे मातृ-गर्भ से ही मिला है।"

सुलोचना लज्जा से जैसे सुन न सकीं और ऐसे ही जल्दी से भीतर चली गयीं।

दूसरे दिन सुबह की ट्रेन से तैयारी होने लगी। चाय पीने से पहले ही कपड़ों को तालुकदार ने सूटकेस में भर लिया। एक मुड़ा हुआ लाल कागज़ लेकर देवतोष घर में घुसे। आँख की कोर से उसे देख कर महेश बोले, "लगता है कोई टेलीग्राम आया?"

"आया नहीं जायगा।"

"जायगा।"

"हाँ, अभी न भेजेंगे तो ठीक समय पर पहुँचेगा कैसे? आपकी छुट्टी तो आज ही खत्म हो गयी?"

महेश ने कपड़ों को ठीक करते हुए कहा, "क्या मतलब डाक्टर! कल तो एक बेकार की वजह बता कर रोका। आज भी कोई छलने का तरीका निकाला है क्या?"

"छलने वाले को छल की कमी नहीं होती, स्वयं विद्यासागर महाशय ही कह गए हैं। किन्तु दादा, आज तो मैं केवल दूसरे की ही आज्ञा पालन कर रहा हूँ। विश्वास न हो इसलिए जिसकी आज्ञा

है उसी को बुला लाऊँ ?"

"रहने दो; अब उनको बुलाने का कष्ट नहीं करना होगा। मैं ही जाता हूँ। माँ को कुछ समझाना-बुझाना होगा तो मैं स्वयं ही समझा लूँगा।"

उनको जाना न पड़ा। उससे पहले ही सुलोचना आ गयीं। सूटकेस खुला देखकर देवतोष से वह बोलीं, "लगता है तूने कहा नहीं ?"

"कहा तो। मानते कहाँ हैं ? उनका वहाँ बहुत जरूरत है, न जाने से काम नहीं चलेगा।"

गम्भीर चेहरा बनाते हुए महेश बोले, "डाक्टर लोग जिन्दा आदमी को भी मरे होने का सार्टिफिकेट देते हैं, यह सभी जानते हैं। किन्तु आँखों के सामने ही रात को भी दिन बना देते हैं यही जानना बाकी था।"

सुलोचना हँसते हुए बोली, "ठीक कहते हो बेटा। इसी से मैं इसकी एक भी बात का विश्वास नहीं कर पाती। किन्तु तुम्हारे काम का तो कोई नुकसान नहीं होगा ?"

"कुछ नहीं। और यदि हो भी तो उससे अधिक तो लाभ ही है न ? और एक दिन माँ के पास रह सकूँगा।"

सुलोचना का मुख मातृ-गौरव से उज्वल हो उठा। स्निग्ध कण्ठ से वह बोलीं, "वाह माँ के पास रहे ही कितनी देर। आराम भी तो कुछ छुट्टी लेकर नहीं किया ? अब हमारे साथ तुमको बाहर चलना पड़ेगा।"

"कहाँ जाओगी माँ ?"

सुलोचना के मुख पर एक करुण छाया का स्पर्श हुआ। कुछ क्षणों तक वह सिर झुकाए खड़ी रहीं, फिर बोलीं, "कल बहुत रात तक देबू से सभी सुनती रही। तभी से सोच रही हूँ कि तुम्हारे साथ ही चल कर उन लोगों को एक बार देख आऊँ।"

"आप जाएँगी उनके पास !" विस्मय और आनंद से तालुकदार चौंक से उठे।

"क्यों नहीं जाऊँगी बहू। हमारी मीरा बेटी होती तो वही तो सब करती ? वह नहीं है इसलिए उसका कोई भी काम अधूरा न रहे हम सब को ही तो यह देखना है।"

महेश मंत्र मुग्ध से खड़े रहे। सुलोचना के मृदु कण्ठ से फिर सुनायी पड़ा, "देबू को तभी कह रही थी कि तुम जो कुछ कर रहे हो उसकी कोई तुलना नहीं। यह आश्रय न पाने से वह सब डूब मरतीं या ऐसी जगह जाकर खड़ी होतीं जहाँ पर किसी के जाने पर रोंगटे खड़े हो जाते। किन्तु तुम सब पुरुष हो। सब कुछ करने पर भी तुम औरतों के सभी अभाव को मिटा नहीं सकते। कुछ तो ऐसा रह ही जाता है जो तुम्हारे हाथ के बाहर है। यह तो तुमने अपनी आँखों से भी देखा होगा बेटा। हम लोगों की एक राक्षस की जाति है। हम लोगों का पेट खाने से भरना ही नहीं चाहता।"

महेश की आँखों के सामने कई साल पहले की वह रात नाच उठी। उसके पैरों पर एक लड़की पड़ी है। कान में उसका व्याकुल रोदन सुनायी पड़ने लगा। सहसा सुलोचना की बात सुनकर वह चौंक से उठे। वह कह रही थीं, "मैं तो कर ही क्या सकती हूँ, शक्ति भी नहीं है। फिर भी मुझे देखकर उनके मन में इतना भी विश्वास जाग सके कि वह सिर्फ स्कूल ही नहीं है, आश्रय मात्र नहीं है, खाना-कपड़ा और सोने भर की जगह मात्र देकर तुमने उनको धन्य नहीं किया है और भी कुछ है इस घर में जिससे औरतों का मन भरा रहता है उनके दोनों हाथों को पकड़ कर हमारे सहारे की भी जरूरत है—इसी से मुझे जाना जरूरी है। अगर वह न समझ सकेंगीं तो भी मैं उन्हें समझा दूँगी। इतना करने के अलावा और हमारे पास है ही क्या जो उनका कुछ कर सकूँ।"

महेश ने कहा, "माँ, आज मैं जान सका कि आपके सामने मेरे

अपराधों का कोई अंत नहीं है ।"

सुलोचना ने हँस कर कहा, "सुनो लड़के की बात । क्या अपराध किया तुमने ?"

"उनकी कोई भी बात जो आपको कभी नहीं बताया । हो सकता है आज भी बगैर कुछ बताए ही चला जाता । देवतोष ने मुझे इस लज्जा से बचा लिया ।"

"इतने से कोई अपराध नहीं हुआ बेटा । इसमें लज्जा की बात ही क्या है ?"

"आपसे क्यों नहीं कहा, हमारी सब बात सुन कर हो सकता है आप समझ जायगीं । यह बात मैं भी अनुभव कर रहा था और देवतोष को उस दिन कहा भी था कि इन औरतों को जो अभाव है वह केवल अन्न-वस्त्र का नहीं, केवल आश्रय का भी नहीं है । यह जो घर एक दिन छोड़ कर आयी थीं फिर लौट कर वहाँ नहीं जा सकीं । जाने पर देखा उनके लिए द्वार बन्द हो चुके हैं, सुख-दुःख, भक्ति-प्रेम भरा अस्वाद उनके घर की तरह का न दे सका तो कुछ भी न कर सका । इसी बात को सोच कर ही लोक लश्कर और ईंट काठ के 'आश्रम' अथवा 'होम' न बना कर एक छोटे गाँव के घर में लाकर उन सब को रक्खा था । मन ही मन सोचा था अपने स्वजनों के पास आश्रय न पाकर भी दूसरों से, पड़ोसियों से स्वाभाविक मानवता पाने से वह वंचित न रह सकेगीं । किन्तु माँ मेरी यह आशा सफल नहीं रही ।"

सुलोचना ने कहा, "तुमने जरूरत से ज्यादा की आशा बांध रखी थी बेटा, इसी से वह सफल नहीं हुई ।"

"फिर भी आशा मैंने नहीं छोड़ी । मेरी दो-एक परिचिता हैं—नाम बताने से, आप तो पहचानेगी नहीं देवतोष अवश्य पहिचानलेगा—वे जिन्हें हम समाज कल्याण या सेवा व्रत कहते हैं उन लोगों ने अपना रक्खा है । अनाथ दुखियों को लेकर वह बड़ी-बड़ी संस्थाएँ चलाती

हैं। उनमें से दो-एक को पकड़ कर इसी बेलघरिया वाले मकान में ले गया। औरतों को भी बुला कर उनके चरणों में बिठा दिया। उन्होंने बहुत सी तत्वकथा सुनायी। पापी तापी विपथगामी मनुष्य के उद्धार के लिए बहुत सी बड़ी-बड़ी बातें बता गयीं—जैसा महापुरुषों ने बताया है। उनके चले जाने पर औरतों के मुख की ओर देखने पर लगा कि वे मंत्रस्थ सी हो उठी थीं, शिक्षा तो बहुत ली, भक्ति, श्रद्धा, आदर में भी कोई कमी नहीं की। उनके लिए विशिष्ट अतिथि उनके आश्रयदाता की परम श्रद्धा-भाजन आत्मीया थीं।

सुलोचना ने पूछा, "वे क्या अब भी जाती हैं?"

"नहीं माँ। दो-चार बार उनके आने के बाद उन्हें यह बहुत छोटा मोटा काम मालूम पड़ा और उनका उत्साह ठण्डा हो गया। मैं भी बच गया।"

देवतोष ने कहा, "आपने भूल की दादा। उन लोगों के साथ लगे रहने में उन लोगों के हाथ से ही कोई मोटी रकम डोनेशन-फोनेशन के रूप में इकट्ठा हो सकता था। और कुछ न होता तो दो-चार काम की चीजें और इकट्ठी हो जातीं। अच्छा हटाइए इन बातों को। सबसे जरूरी बात तो यह है कि साढ़े सात बज चुके हैं।"

"हैं ऐसा?" सुलोचना व्यस्त हो उठीं, "तुम लोगों के लिए चाय ले आऊँ। अरे, बहुत देर हो गयी।"

"कुछ देर नहीं हुई माँ। चाय की हम लोगों को ऐसी कोई जल्दी नहीं है।"

"उँह, एक ही बात रक्खो दादा," सिर झुकाए हुए देवतोष ने कहा, "आठ बजे तक चाय के लिए जल्दी नहीं है। मेरे लिए तो कम से कम न कहते?"

महेश भी झुँझला उठे, "देखो डाक्टर, ज्यादा शेखी न बघारो नहीं तो अभी हाँड़ी फोड़ दूँगा। वनमाली के राज्य में तुम्हें कैसे आठ बजे चाय मिलती थी मुझे तो मालूम है भाई।"

सुलोचना ने कहा, "क्या कहते हो बेटा, इस मामले में तो बन-माली भी अज्ञान था।"

"न हो तो क्या? महीने में कोई दस दिन बनमाली की गृहस्थी में माँ भवानी का राज्य रहता था। सुबह आठ बजे जब वह केटली में पानी भर कर आग पर चढ़ाता तब पता चलता कि चाय नहीं है। भागा हुआ मेरे निधिराम के पास आता। चाय की समस्या किसी तरह हल होती। पाँच ही मिनट में फिर भागा हुआ आता तो पता चलता दूध भी नहीं है। बात यहीं पर ही खत्म न होती। बीच-बीच में भी तीन दफा उसे दौड़ कर आना पड़ता। चा के लिए चीनी भी तो लगती है।" कह कर हँस पड़े। सुलोचना व्यथित स्वर में बोलीं, "फिर भी उस अभागे को यह नहीं हटाता।"

देवतोष ने कहा, "उनकी बात को तुम विश्वास करती हो माँ? सभी बातें बढ़ा कर कह रहे हैं।"

"हाँ, बढ़ा-चढ़ा कर कह रहा हूँ। हमारे हिसाब के खाते में सब नोट है। अभी भी बिल का भुगतान नहीं भेजा।"

"बिल की बात दादा उठाओगे तब यह भी कहा जा सकता है कि वह इधर से भी जा सकता है और उससे ही मालूम हो जायगा कि मेरा ही उसमें लाभ होगा।"

"कैसे?"

"जी हाँ, बनमाली यदि निधिराम के पास दस बार जाता है तो निधिराम बनमाली की शरण में सत्रह बार आता है। चाय और चीनी तो है ही, बीच-बीच में दाल चढ़ाने के बाद पता लगा कि नमक तो है ही नहीं।"

"नमक नहीं?"

"जी हाँ, नमक नहीं।"

दोनों की जोरदार हँसी से सारा घर गूँज उठा। सुलोचना भी मृदु हास्य के साथ चाय की तैयारी के लिए जल्दी से चली गयीं।

चाय पीने के बाद सुलोचना बेलघरिया जाने के लिए तैयारी करने के लिए चलीं। इसी समय महेश ने दबे स्वर में कहा, "माँ की सेवा में एक निवेदन है।"

सुलोचना पीछे मुड़ कर ठिठकीं।

महेश ने कहा, "कह रहा था मैं आज यहीं रहूँ आप देवतोष को ही लेकर चली जायँ।"

"क्यों?" विस्मय के साथ सुलोचना ने पूछा।

कुछ ठहर कर तालुकदार बोले, "मुझे साथ में देख कर वे सब आपको भी हमारे उन्हीं बड़े-बड़े आत्मीय लोगों के दल में डाल देंगी, वह मैं सह नहीं सकूँगा। यद्यपि इसके लिए उनको दोष भी नहीं दिया जा सकता। इसी से कह रहा था कि आप ही जाइए। मैं यहीं रहूँ।"

सभी बातों को सहज स्वर में ही तालुकदार ने कहा। किन्तु उसमें अन्तर्निहित वेदना ने सुलोचना के हृदय को छू लिया। उन्होंने कोई भी उत्तर नहीं दिया। केवल उनके दोनों स्निग्ध नेत्रों में अपूर्व करुणा भर उठी।

कुछ मिनट ही बाद एक सादा चादर ओढ़ कर वह उसी तरफ से मौन ही देवतोष के साथ रिक्शे में जा बैठीं।

—:०:—

१०

जेल के कैदियों को सप्ताहान्त में एक दिन की छुट्टी मिलती है पर जेल में काम करने वालों को वह भी छुट्टी नहीं नसीब होती किसी त्यौहार के समय प्रोग्राम बढ़ जाता है और रविवार को विशेष रूटीन चलती है। किसी जरूरी काम से दो-चार रोज के लि यदि बाहर जाने की आवश्यकता पड़े तो लौटने पर मुलतवी काम को निपटाने के लिए कुछ दिनों तक सिर उठा सकने की भी फुर्स नहीं मिलती।

जेलर साहब के लौट आने पर उनके फुर्सत का समय देख क सुशीला उनसे मिलना चाहती थी। किन्तु दो बजे अपने घर जाने के समय वह उनके कमरे की ओर नज़र डालती हुई जाती तो देखती वह या तो कागज-पत्रों के ढेर में डूबे रहते नहीं तो उन्हें डिपुटी या क्लर्क लोग घेरे रहते। पाँच-छः दिन बाद शाम को डियुटी से जाने के रास्ते में सहसा मौका देख कर वह उनके कमरे में घुस गई। तालुकदार को सिर उठाते ही बोली, "हेना आना चाहती है बाबा, कई दिनों से ही कह रही है। आपको व्यस्त देख कर और यहाँ की भीड़ देख कर आपके पास आने का साहस न कर सकी।

महेश को उस दिन की बात स्मरण हो आई। जब उन्होंने हेना को वचन दिया था कि, "एक दिन उसकी सब कहानी सुनेंगे।" उसके लिए समय तो है किन्तु मन में भी स्थिरता की आवश्यकता

है। सुशीला से वह बोले, "आज तो हो नहीं सकता। उसे कोई और समय ही देना होगा। तुम न हो तो...." कह कर डायरी को तारीख बताने के लिए खोलकर देखने लगे। सुशीला ने बीच में ही कहा, "वह कह रही थी कि उसे जो कुछ भी कहना है वह पाँच मिनट में ही कह देगी।"

महेश डायरी बन्द करते हुए बोले, "तब तो फिर उसे अभी ही ले आओ।"

हेना आई और प्रणाम करके ज्यों ही खड़ी हुई तालुकदार ने कहा, "तुम्हारी उस दिन की बात मुझे अच्छी तरह से याद है। उसके लिए मैं फिर कभी तुम्हें बुलाऊँगा। उसके अतिरिक्त और कुछ कहना है?"

हेना ने सिर झुका कर धीमें स्वर में उत्तर दिया, "नहीं, और कुछ नहीं कहना चाहती। उसी के लिए आई थी। सोचने के बाद मैंने देखा वह मुझसे कहा न जायगा।"

तालुकदार ने जिज्ञासु नेत्रों से देखा। कहना ही चाहते थे कि ठीक है न हो तो जाने ही दो। किन्तु उसके पहले ही हेना बोल उठी, "आपके सामने अपने मुख से मैं स्वच्छंदतापूर्वक रहने लगूँ, ऐसी बात तो मेरी है नहीं। यह ऐसी बातें हैं जिन्हें कहना चाहने पर भी लड़कियों की ज़बान अटक जाएगी। फिर, न कहने से भी तो काम नहीं चलता। इसी से इतने अपराध के बाद फिर एक अपराध कर बैठी"—कह कर आँचल की ओर से एक जिल्ददार कापी निकाल कर सामने टेबिल पर रख दिया। फिर कुछ पीछे हट कर वह बोली, "मुँह खोल कर जो नहीं कह सकती और जिसे न कहने पर भी मुझे मुक्ति नहीं है, लज्जित करने वाली वह सब बातें जो मुझे कहनी थीं मैंने इस कापी में लिख दिया है। प्रति क्षण मेरे लिए एक कठिन परीक्षा थी, इसे मैं ही समझ सकती हूँ। क्या करती? इसके अलावा मेरे पास दूसरा कोई रास्ता भी न था।"

कापी को हाथ में उठा कर पहले पन्ने को उलटते ही उनकी आँखों से विस्मय और प्रसन्नता दोनों ही फूट पड़े। मनुष्य के हस्ताक्षर के साथ मुक्ता की तुलना इतने दिनों तक कवि-जनोचित कल्पना ही है यह उनकी धारणा थी। पर आज उन्हें लगा इस बात में अत्युक्ति है भी तो सामान्य ही। हेना की बातों का जवाब न देकर वह कापी के पन्नों को ही उलटने लगे। हेना कुछ क्षणों तक उनकी तरफ देखती रही फिर बोली, "आप क्या देख रहे हैं मैं जानती हूँ।"

"क्या बताओ तो ?"

"कापी मुझे कायदे से नहीं मिली है, उसमें आपके आफिस की मुहर भी नहीं है।"

"अच्छा ! हूँ यही तो देख रहा हूँ; किन्तु तुम्हारे पास पहुँची कैसे ?"

"इसके लिए जो भी अपराध है। जो भी सजा देना चाहेंगे मैं खुशी से उसे अपने ऊपर लेने को तैयार हूँ।"

"किन्तु सजा तो अकेले तुमको ही तो मिलेगी नहीं ? इसे तुम्हारे पास तक जिसने पहुँचाया है उसे भी सजा मिलना जरूरी है।"

हेना मतलब समझ गयी। उसका मुखमण्डल लाल हो गया। उसे छिपाने के उद्देश्य से अपने सिर को उसने झुका लिया। उससे यह कहा न जा सका कि, "आपका अनुमान गलत है। कापी उनसे नहीं मिली।"

जेलर साहब हठात् पूछ बैठे, "तुम बहुत अच्छा अलपना आँक सकती हो न ?"

"अलपना !" विस्मय के साथ हेना ने अपनी आँखें उठायीं।

"हाँ।"

"नहीं तो ! अलपना तो मैंने कभी नहीं आँका।"

"होगा, पर कापी खोलते ही सबसे पहले इसी बात पर मेरा ध्यान गया था।"

हेना ने निःशब्द रह कर आँखों को फिर झुका लिया। वह अपनी लिखावट की सुख्याति पहले भी बहुत सुन चुकी थी। किन्तु इतनी तारीफ़ तो कभी भी किसी ने नहीं की। एक लज्जापूर्ण स्निग्ध प्रकाश से उसका मुखमण्डल दीप्त हो उठा।

उस दिन जेलर साहब का शाम का आफिस कुछ पहले ही बन्द हो गया। घर आने पर आवश्यक कार्यों को निपटा कर वे उस कापी को हाथ में ले कर दक्षिणी बरामदे में जा बैठे। प्रथम दृष्टि में ही अलपना की जो बात उनके मन में आयी थी वह था लिपिसज्जा का ढंग। किन्तु अक्षरों के फ्रेम को पार करके जब कापी को आगे उलटा तो तालुकदार ने पन्नों-पन्नों में देखा कि शंका, वेदना, लज्जा, लांछना के विचित्र आलेख्य से उस एक भाग्य-विडम्बिता वंचिता नारी के गहरे अन्तर का अलपना था। आखिरी पृष्ठ जब समाप्त हुआ तो इधर-उधर की बिखरी कहानियों को अपने मन में उन्होंने एक सूत्र में पिरोने की चेष्टा की। कितनी बातें तो ऐसी थीं जिन्हें कहना चाहते हुए भी कह नहीं सकती थी—बीच-बीच में उसने फाड़ दिया था या काट दिया था। उनसे कथा भंग न हो इसके लिए अपनी भाषा में ही उसे भर दिया और ममता के स्पर्श के साथ उनको सूत्रबद्ध कर दिया। इस प्रकार जिस हेना को उन्होंने नहीं देखा है विभिन्न पृष्ठभूमियों पर उसका एक अखण्ड रूप उनकी आँखों के सामने स्पष्ट हो गया।

तेज नहर जैसी नदी अड़ियालखाँ है। उसके उत्तर पार की ओर कुछ जगहों पर टीन के बहुत से बड़े-बड़े घर बने हैं। बगल से ही कच्ची सड़क गयी है। यह नगर नहीं शहर भी नहीं आसपास के लोग इसे गंज कहते हैं। फिर भी इसका नाम है बहादुरनगर। हो सकता है किसी

समय यहाँ या आसपास में सचमुच कोई नगर रहा हो और उस पर किसी राजा या नवाब बहादुर का राजत्व रहा हो। फिर एक दिन लपलपाती हुई जीभ की तरह अड़ियालखाँ बढ़ने लगी। एक-एक करके उस नगर की सम्पूर्ण कीर्ति को अपने ग्रास में लेकर जब उसका पानी लौटा तो वहाँ कुछ ध्वंसावशेष और चरागाह की भूमि मात्र ही शेष रही थी। उस पर बाद में यह गंज बस गया। दूर-दूर से पालदार बड़ी-बड़ी सौदागरी नौकाएँ तरह-तरह का सामान लेकर आती हैं— जिसमें तेल, गुड़, नमक, तम्बाकू, नारियल और उसके साथ तरह-तरह की नये सभ्यता की चटकदार चीज़ें होती हैं। लौटती समय वे अपने साथ यहाँ की सब से कीमती पैदावार धान, पटसन, आदि साथ में ले जातीं। इसी बहादुरनगर के टूटे-फूटे घाट के पास हाट बाज़ार के कोलाहल से दूर एक घने बरगद के पेड़ की छाया में हेना अपने दादा के साथ आकर बैठती। गंज के पीछे नदी से कुछ दूर पर एक कतार में ही कई टीन के मकान थे—जहाँ थाना, उसके पास डाक-घर, डाक्टर खाना और फिर कुछ फासले पर रजिस्ट्रेशन आफिस था। उनके पिता सदाशिव मित्र उसी डाकघर के ब्रांच पोस्टमास्टर थे। बूढ़े विधुर थे। संसार में उनकी बस दो ही आसक्ति थी—एक तो पुरानी नौकरी और दूसरा वैष्णव-साहित्य। आफिस के साथ ही रहने का घर था जिसमें केवल दो कमरे थे। ऊपर टीन छाया हुआ था, नीचे कच्ची ज़मीन थी और उस पर बीच-बीच में बाँस की बल्लियाँ जैसी लगी थीं। बड़े कमरे के बीच से पार्टिशन कर लिया गया था। उसमें ही एक तरफ वह रहते और दूसरी तरफ हेना रहती। छोटे कमरे में उसके दादा रहते। आफिस का काम समाप्त होते ही वे अपने सोने के कमरे के बरामदे में आकर बैठते। बाँयें हाथ में हुक्का और दाहिने हाथ में कभी चण्डीदास, कभी विद्यापति अथवा कृष्णदास कविराज की चैतन्य-चरितामृत लेकर बैठते। एक तरफ सरकारी पियुन और गैरसरकारी कुली शम्भू बीच-बीच में आकर हुक्के को

भर देता।

हेना की अवस्था जिस समय सात वर्ष की थी तभी उसकी माँ का देहांत हो गया था। दादा उससे बारह-तेरह वर्ष बड़े थे। बी० ए० की परीक्षा देकर के घर लौटे थे। उसके बाद उनके पास होने का परीक्षा फल भी निकला पर अजय फिर बाहर न निकल सके। वह इसी बहिन को लेकर बँध से गए। घर में कोई औरत न थी। उसे खिलाने-पिलाने, उसके मन बहलाए रखने और उसके मन को कभी गिरने न देने का काम दादा के ही हाथ में था। कुछ बड़ी होने से पहले उसकी चोटियाँ करते। बड़े होने पर जब बाल गूँथना हेना ने सीख लिया तब भी बीच-बीच में फीता और काँटा लेकर वह दादा के कमरे में जा कर कहती, 'दादा जूड़ा ठीक से बाँध दो न ?' अजय उस समय पढ़ते-लिखते रहते। वह चिढ़ कर बोलते, 'भागो।' फिर किसी-किसी दिन वह सहसा गम्भीर हो उठते और बहिन को पास बुला कर उसे सिर और पीठ पर स्नेह से हाथ फेर कर पूछते, 'क्यों री, तुझे माँ की कुछ याद है ?'

हेना की आँखें भर आतीं। दादा के स्नेहस्पर्श से माँ की याद नहीं आती थी। मन ही मन कहती, 'कैसे याद आवेगी। तुमको छोड़ कर मैं और किसी माँ को तो जानती नहीं।'

उनके मकान के पास ही लड़कियों का एक छोटा स्कूल था। कापी-किताब लेकर हेना उसी में पढ़ने जाती थी। स्कूल में वह अच्छी और तेज लड़की समझी जाती थी। हेड-मिस्ट्रेस सूरमा दी उसको स्नेह भी खूब करती थीं। बीच-बीच में उसे अपने घर पर भी बुला कर पढ़ाती-लिखाती थीं। किन्तु हेना का असली स्कूल उसके घर पर ही अजय दादा का कमरा था। अजय के पास कितनी ही किताबें थीं। अधिकतर प्रबन्ध, जीवनी, भ्रमण-कहानी, महापुरुषों और मनीषियों के उपदेश की पुस्तकें थी। कुछ बड़ी होने पर बीच-बीच में वह उन्हें उलटती-पलटती रहती। श्रीम्-कथित कथामृत, स्वामीजी

की वीर-वाणी, भगनी निवेदिता की अपूर्व जीवन-कथा उसे बहुत अच्छी लगती। उसके दादा किसी समिति के सदस्य थे। कहाँ हैजे से ग्राम उजाड़ हो गया, कहाँ तीन हज़ार लोगों को कोई आश्रय नहीं है, कहाँ आग लगने से पूरा बाज़ार जल कर स्वाहा हुआ यह खबर पाते ही दादा दो-चार मित्रों को साथ लेकर दवादारू, चावल-कम्बल आदि लाद कर चल देते। कभी-कभी ऐसा भी होता कि दस-बारह दिन तक दादा घर न लौटते। हेना उस समय बहुत चिंतित हो जाती। किन्तु बाबा कभी भी यह न जानना चाहते कि उसका क्या हुआ। खोज खबर लेने की बात हेना कहती तो वह जवाब देते, "कोई जरूरत नहीं बेटी, उसका जब समय होगा तब आ ही जायगा।"

बीच-बीच में अजय के पास कोई काम न होता। तब वह हेना को पास बुला कर उसे पढ़ाते और कितनी ही देश-विदेश की कहानियाँ सुनाते किसी-किसी दिन अपने साथ वह शाम को टूटे घाट पर भी ले जाता। अड़ियालखाँ नदी की छाती पर तरह-तरह के आकार की नौकाएँ खड़ी रहतीं। उस पार पेड़ों से घिरे ग्राम का दृश्य बड़ा मनोरम लगता। हेना मुग्ध होकर वह सब देखती रहती। एक दिन उनके सामने से दोनों तरफ लहरें उठाता हुआ एक सुन्दर मोटर-बोट जा रही थी। लगता था कि वह किसी पटसन के साहेब की नौका थी। हेना हाथ उठा कर बोली, "देखो दादा कितना सुन्दर स्टीमर जा रहा है।"

अजय कुछ सोच रहा था। वह गम्भीरतापूर्वक बोले, "हाँ वह तो सामने का सीन है। दूसरी तरफ वह इतना ही असुन्दर है।"

हेना कुछ समझ न सकी। उसने जिज्ञासु भाव से अपनी आँखों को दादा पर डाला। अजय ने कहा, "हमारी बारोयारी-तल्ला की दुर्गा प्रतिमा को देखा है तो ? कितनी सुन्दर देखने में थीं ! एक दिन उसके पीछे जाकर उसे मार कर देख।"

"वहाँ क्या है ?" हेना ने प्रश्न किया।

"एक गधा कूड़ा-करकट और मिट्टी-कीचड़ ही रहता है। वह सब न होने से प्रतिमा तैयार नहीं होती।"

"वाह, यह कैसे हो सकता है?"

"ठीक उसी तरह यह जो स्टीमर देख रही है उसके भी पीछे हमारे कई लाख गंदे टूटे घर और कीचड़ से सने खेतों का दृश्य है। उस पर से सूखे कंकालों को नोच-नोच कर खाया जा रहा है। उनके रक्त और मांस से यह मयूर-पंखी तैयार हुआ है।"

इसका उत्तर हेना क्या देती। दादा जब यह सब कहते तब उनके चेहरे पर एक अद्भुत हँसी फूट पड़ती। उस हँसी को देख कर उसका हृदय भीतर से भयभीत सा होकर काँप उठता।

किसी-किसी दिन घर लौटते समय गंज के टीन के शेड वालों घरों दिखा कर वे कहते, "बीच-बीच मेरी इच्छा होती है हेना, कि इन टीनों में आग लगा कर राख कर दूँ।"

हेना चौंक उठती। फिर आश्चर्य करुण कण्ठ से अजय कहता, "यह विपत्तियाँ जब नहीं आयी थीं, हमारे घरों में क्या शांति नहीं थी? रोग नहीं था, अभाव नहीं था, सारा देश आनन्द मनाता था। इन टीनों की बाढ़ से वह सब समाप्त हो गया।" हेना की पूछने की इच्छा होती, 'यह सब कैसे समाप्त हुआ?' किन्तु दादा की मुख की ओर देख कर कुछ बोल न पाती। अजय कुछ देर मौन रहने के बाद फिर अपनी बात छेड़ता।

"यह कैसे समाप्त हुआ जानती है? यही पाट की माया है। साहेब लोग और उनके चेले यह कहते फिरते हैं कि पाट ही बंगाल की सम्पदा है। सम्पदा है जरूर! किन्तु उसी के लोभ में लोग रातोंरात अपने को भूल गए। जहाँ भी जितने खेत खभार, मैदान, डाँगा थे सभी को तोड़ कर अन्धाधुँध पाट के ही बीज छितराए गए। यह पटसन के बीज नहीं, सर्वनाश के बीज हैं। देश का खाद्य गया, स्वास्थ्य गया, उसके स्थान पर आई करारे नोटों की

गड्डियाँ। उन्हीं को देकर खरीदा गया विलायती टीन, जर्मन आलोयान, जापानी छाता और कुनैन की गोलियाँ। नोट का बण्डल रहता ही कितने दिन? यह टीन भी आज जवाब दे रहा है। पेड़ों की छाया में पड़े रहने के अतिरिक्त और कोई गति नहीं है। वह भी अब कहाँ हैं? पेड़ तो पहली चोट में ही गए।"

कहते-कहते अजय सहसा खड़े हो गए। पास के बगैर पेड़ों के एक जंगल की ओर उँगली उठा कर बोले, "तू देख रही है न हेना। यहाँ आम का बहुत बड़ा बाग था। बचपन में मैं कितनी ही बार यहाँ आम बटोरने आता था। कितने मीठे आम थे? और उसी तरह इस कोने में जामुन का पेड़ था। इस अंचल के बच्चे और बूढ़े सभी भर पेट खाकर भी उसे समाप्त नहीं कर पाते थे! उसके बाद एक बार गरमी की छुट्टी में जब घर लौटा तो देखा कि यह सब मैजिक की तरह गायब हो चुका है। उसकी जगह लम्बे-लम्बे पाट ले चुका था। यह सूखा हुआ तालाब जो देख रही है यह जल से भरा हुआ था। पाट ने पी-पी कर उसकी यह दशा बना दी है। यह तो उस दिन की बात है। आज तो पाट भी नहीं है। केवल काँटेदार झाड़-झंखाड़ ही चारों तरफ फैले हैं।"

इसी समय हेना ने प्रश्न किया, "और पाट क्यों नहीं लोग बोते?"

"उसका भाव ही नहीं है। किन्तु दूसरी तरफ धान-चावल के बाज़ार में आग लगी है।"

"तो इस बार चावल का दाम कम होगा न दादा?" हेना ने खुशी होकर पूछा। इन चीज़ों का दाम बढ़ जाना—एक पारिवारिक दुश्चिन्ता का कारण है, इसे समझ सकने की उम्र उसमें पहले ही आ चुकी थी। अजय ने कोई उत्तर न दिया, उसी प्रकार के दुश्चिन्त मुख से बोला, "वह अब नहीं होगा। यही तो बड़े मजे की बात है। एक बार दाम चढ़ जाने पर उसे कम नहीं किया जा सकता।"

"क्यों?"

स्निग्ध दृष्टि से उसकी ओर देख कर मधुर हँसी के साथ अजय कहता, 'बड़ी हो; पढ़ना-लिखना सीखो। तब अपने आप ही समझ जाओगी।'

देखते-देखते हेना बड़ी हो गयी। स्कूल आने-जाने लगी। उसकी साथिनों के नाम पर दादा और उनकी लायब्रेरी ही थी। उसकी उम्र की दूसरी लड़कियाँ खेलतीं-कूदतीं। वह उन सब से अलग रहती। उन लोगों के साथ उसमें कहीं कोई बड़ा अमेल था। मन के भीतर न जाने कैसी अस्थिरता रहती। वह देखती चारों तरफ अभाव, दैन्य, राग और शोक। क्या इसका कहीं अन्त नहीं? होगा क्यों नहीं? कभी एक दिन ऐसा जरूर आएगा जब मनुष्य को कोई दुःख न रहेगा। कब और कैसे वह दिन आएगा यही वह सोचा करती। लड़कियाँ उसे देख कर निकल जातीं। पीठ पीछे हँसी-मज़ाक उड़ाया करतीं। उनकी ओर उसका ध्यान न रहता। मोटी तौर पर वह परिवार की स्वस्थ लड़की थी। बहुत छोटी भी न थी। यह बात उसे किसी ने बताया भी नहीं। अपने सम्बन्ध में जैसे उसकी नींद नहीं टूटी है। अपने शरीर को सजाने-धजाने पर भी उसका ध्यान न था। ऐसे ही समय में एक दिन छुट्टी के बाद हेड मिस्ट्रेस सूरमा देवी के घर से उसे कोई बुलाने आया। उसके जाने पर दो एक मामूली कुशलक्षेम की बात करने के बाद सहसा वह पूछ बैठीं, "तुम्हारे पास कोई साड़ी नहीं है, हेना ?"

"हाँ, है तो! इस बार पूजा पर एक अच्छी सी साड़ी बाबा ने खरीद दी है।"

"बाबा से कहना कि और साड़ी खरीद दें, कल से फिर फ्राक पहिन कर न आना, समझीं ?"

"क्यों ?" कहते ही अकस्मात् किसी लज्जा से उसका शरीर संकुचित सा हो गया। क्षण भर में ही उसके दृष्टि का आवरण खुल गया। यह जैसे उसका अपना ही आविष्कार था। रास्ते से चलते

समय क्यों लोग उसकी तरफ देखने लगते हैं, क्यों उसकी साथिनें अपनी किसी हमजोलियों को चिकोटी काट कर कुछ फुसफुसा कर पास आने पर चुप हो जाती हैं, यह सब बातें अन्धकार में सहसा विद्युत-शिखा की तरह जल कर उसकी चेतना को चमका दिया।

पहली बार साड़ी पहिन कर दादा के कमरे जाकर जैसे ही उसने प्रणाम किया तो बनावटी विस्मय से चौंक कर अजय ने कहा, "अरे, वाह हेना! मैंने सोचा कि इस समय कौन भद्र महिला मेरे घर पर आ गई?"

"हटो", कह कर हेना अपना सिर नीचा करके खड़ी रही। कुहासामुक्त अरुणाभास की तरह उसके चेहरे पर लज्जा का स्पर्श अजय की दृष्टि में नूतन सा लगा। उसकी तरफ कुछ क्षण देख कर फिर बोला, "हठात् प्रणाम करने की आज क्या बात थी?"

"वाह बात क्या! नया कपड़ा जो पहिने थी तो प्रणाम न करती!"

"ओ हो, मैं तो समझ रहा था कि तुम नोटिस दे रही हो।"

"कैसी नोटिस!" भौं टेढ़ी कर हेना ने पूछा—

"नोटिस माने, तुम लोगों के घर अब मेरा गुज़ारा नहीं अब मैं अपने घर चलूँ।"

"तुम तो दादा बड़े वैसे हो गए हो!" कह कर वह अपने कमरे में भाग गयी।

हेना के मन में एक नए जीवन का आस्वाद आया! कापी के पन्नों पर इसका कुछ आभास देकर वह दूसरी बातों पर चली गयी। ताल्लुकदार साहब के मानस चक्षु से वह चित्र और भी स्पष्टतर हो गया। वह तो जानते हैं कि यह है चिर रहस्यमय वयःसन्धि, जब कि अपने को ही देखने में आश्चर्य होता है। ऐसा लगता है कि जैसे सो रही थी और जागने पर देखा कि रात ही रात में और किसी दूसरे देश में आ पड़ी है। जो कुछ भी दिखाई पड़ता है वह सभी

रँगीन है, सभी स्वप्नमय है। पास-पड़ोसी, आत्मीय-स्वजन सभी सहसा अवाक से देखते हैं कि उनकी वह क्षीणकाया चंचला किशोरी लड़की कहाँ भूल सी गयी है। उसके स्थान पर उसके अंग-प्रत्यंग में एक ज्वार सा उठता दिखाई पड़ रहा है। केवल शरीर में ही नहीं, उसकी गति में, उसके चलने-फिरने के ढंग में, उसके कण्ठ में उसके हाव-भाव आदि सभी में एक नया रूप आ रहा था। जहाँ-तहाँ अब वह आँधी की तरह नहीं आ पड़ती। जब-तब उसकी ठहाके की हँसी भी नहीं सुनाई पड़ती। उसकी आँखों से आँख मिलाने पर वह लज्जा के साथ सिर झुका लेती है। अकेले में बैठी सोचती है किन्तु सोच नहीं पाती कि अपने में हुए नए परिवर्तनों और सहसा बढ़ते हुए लावण्यभार को वह कैसे सम्हाल कर रखेगी? निर्जन कमरे के जँगलों से स्वप्नमय दृष्टि दूर-दूरान्तर तक डालती है। क्या देखती है नहीं जानती। बात-बात में अनमनी सी रहती है। किसी की पुकार पर चौंक उठती है। अकारण ही हृदय आनन्द उद्वेलित हो उठता है। कभी हृदय फाड़ कर अव्यक्त-वेदना निकल पड़ती है। वह कैसे जान सकती है कि कब किस असतर्क मुहुर्त में उसके किशोरावस्था ने विदा ले ली और हृदय के कोने-कोने में आ चुकी है यौवन की लिपि।

देह और मन का यह रूपान्तर प्रकृति का दान है। सभी लड़कियों के जीवन में ऐसा समय आता है। हेना के जीवन में भी आया। किन्तु यह नितान्त स्वाभाविक चीज़ भी यदि कोई विशेष रूप ले लेता है तो ताल्लुकदार की दृष्टि में उसका भी कारण था इस लड़की के जीवन में यह केवल आविर्भाव मात्र था। यह परिवर्तन आया किन्तु प्रत्याशित परिणति के पथ उसे सार्थकता की ओर नहीं ले गया।

बीच-बीच में उन दोनों में बराबरी जैसा व्यवहार चलता। प्रायः

दोनों में खटक भी जाया करती। यों ही एक दिन निरुद्देश्य देर में घर लौटने पर हेना चुप नहीं बैठ सकी। चाय पीने के बाद जब वह कप और डिश को उठाने गयी तो बोली, "बहुत जल्दी ही आज लौटे ?"

अजय हँसने लगा, कोई जवाब नहीं दिया। हेना झुँझला उठी और गुस्से के साथ बोली, "बापू, तुम्हारी यह हँसी देख चुके हैं, अच्छा मैं भी देख लूँगी, अब तुम कहीं बाहर जाओ।"

"क्यों ? क्या मेरी बड़ी-बूढ़ी हो जो तुम्हें यहाँ निगरानी करने की जरूरत है ?"

"माफ करो ! मेरे लिए तुमको कितनी पीड़ा है वह तो जानती ही हूँ। किन्तु बाबा की भी बात कभी नहीं सोचते ?"

अजय सिकुड़ा सा बैठा हुआ बोला, "बाबा के ही काम से तो इतनी देरी हुई ?"

हेना ने विस्मय से आँखें ऊपर की। "बाबा के काम के लिए !"

"हाँ रे ! सुन, सच बताता हूँ। हमारी एक बुआ हैं जानती है न ?"

"पटुया-खाली की बुआ ?"

"हाँ; तूने उनको नहीं देखा है। मैंने भी सिर्फ एक बार ही उन्हें देखा है, बचपन में। उनके यहाँ गया था।"

"सहसा इतने दिनों बाद बुआ कैसे याद आ गयीं ?"

"मन में आया, याद कैसा ? फिर यही बुआ तो हम लोगों के भविष्य की भरोसा हैं ?"

कहने के ढंग पर हेना हँस पड़ी। अजय उसी तरह के गम्भीर स्वर में बोला, "हाँ तुम्हारे लिए तो हँसी की बात ही है। गाजे-बाजे के साथ जब तुम चली जाओगी ससुराल। फिर बाबा की देखभाल कौन करेगा ?"

हेना के मुख पर रक्तिम आभा फूट पड़ी और फिर मिट भी गयी।

बोली, "क्यों ? तुम्हारी बहू ।"

"मेरी बहू ?" हो-हो कर के अजय हँस पड़ा ।

"हँसे क्यों ? बहू क्या कभी नहीं आएगी ?"

"ठहर भी, पहले तुझे तो पार कर लूँ तभी तो ?"

"क्यों, मैं तुम्हारी बहू के रास्ते में पानी डाल दूँगी । क्यों जी मुझे बला समझ कर टाले बग़ैर तुम्हें चैन नहीं है ?" कहते-कहते हेना का गला भर आया । दोनों नेत्र डबडबा आए । अजय हाथ बढ़ा कर उसे पास खींच कर बोला, "यह देखो, लड़की सिसक-सिसक कर रोने भी लगी । अरे मेरा असली प्लान तो आगे सुन !"

हेना ने सिर उठा कर देखा । अजय बोला, 'बुआ जी आकर बाबा को सम्हाल लेंगी तो हम दोनों कलकत्ते चले जायेंगे ।"

हेना के भीगे नेत्रों की पलकों पर हँसी खेल गयी । वह उच्छ्वसित स्वर में बोली, "मैं भी जाऊँगी, दादा ?"

"नहीं जाएगी तो करेगी क्या ? माइनर पास कर लिया समझ गयीं कि विद्या दिग्गज़ बन गयीं । अब तीन हाथ का घूँघट काढ़ कर किसी का हाथ पकड़ कर विदा होने में ही जीवन सार्थक समझती हो ! यह नहीं हो सकता ! सचमुच का पढ़ना-लिखना जिसे कहते हैं वही करना पड़ेगा । तुम्हारा विवाह तो इतनी जल्दी कर नहीं दूँगा ?"

"वाह, वाह, जैसे उसी फिक्र में मुझे नींद नहीं आ रही है !" हेना का मुख लज्जा से लाल हो उठा और धीरे-धीरे वह रसोईघर में चली गयी ।

बाबा के साथ अजय की थोड़ी बहुत बातचीत हुई । लड़की सयानी हो चुकी है । उसके विवाह की चेष्टा न कर के उसे कलकत्ते पढ़ने भेजने के प्रस्ताव को सदाशिव बाबू मन से नहीं चाहते थे । किन्तु बेटे-बेटी के किसी निर्णय में वह कभी बाधा नहीं डालते थे । आज भी आपत्ति नहीं की । विशेषतः अजय ने जब बताया कि उसने एक नौकरी भी प्रायः ठीक कर ली है और दोनों के खर्च का भार

भी वह उठा सकता है तो आपत्ति करने का कोई कारण भी न था। आखिर में यही निश्चय हुआ कि दो-चार दिनों में ही अजय पटुया-खाली जाकर बुआ को ले आवेगा, साथ में उनका चौदह-पन्द्रह वर्ष का पुत्र राखाल भी आ जायेगा, यहाँ के स्कूल में उसके पढ़ने की व्यवस्था भी अजय ने कर दी। फिर कलकत्ते जाकर वह नौकरी करेगा। पहले तो वह किसी मेस में ही रहेगा—फिर कोई छोटा-मोटा घर पाते ही हेना को भी ले जायगा। तीन वर्ष के बाद सदाशिव भी जब रिटायर हो जायेंगे तब वहीं आकर रहेंगे।

बहुत दिनों बाद शाम को दादा के साथ गंज के घाट की ओर हेना घूमने गयी थी। थाना और पोस्टआफिस के बीच खाली जगह पर टीन का एक मकान बन रहा था। उसकी ओर देख कर हेना ने पूछा, "वह क्या बन रहा है दादा, जानते हो?"

"पता नहीं, किसी छोटे या बड़े दरोगा की कोठी होगी शायद!

"नहीं बता पाए! यहाँ पर कोई इन्टरनी आकर रहेंगे।"

"इन्टरनी!" अजय को कुछ कौतूहल हुआ, "तुझे कैसे मालूम हुआ?"

"वाह, सभी जानते हैं। सिपाही लोग कभी से कहते फिर रहे हैं कि स्वदेशी बाबू आ रहे हैं। सूरमा दीदी से मैंने पूछा भी था कि 'स्वदेशी बाबू किसे कहते हैं?' तो उन्होंने कहा था इन्टरनी!' अच्छा दादा उनको स्वदेशी बाबू क्यों कहते हैं?"

"यह नहीं जानती? वह कुछ स्वदेशी पटाखों को छोड़ कर विदेशी सरकार को उड़ा देने का वह स्वप्न देखते हैं, उन्हीं को स्वदेशी बाबू कहते हैं।"

"तुम्हें तो सभी बात मज़ाक ही लगती है। केवल स्वप्न ही क्यों देखते हैं ऐसा क्यों कहते हो! क्या एक भी विदेशी को उन लोगों ने नहीं मारा?"

"वह तो मारा है! किन्तु एक को मारने के लिए खुद कितने

मारे गए, इसकी भी कुछ खबर है ? यदि वह मार डालते तो हमें अफसोस न होता पर बदले में दमन चक्र चला कर हमारे देश की युवक शक्ति को पंगु कर डाला है। आज अगर यह गोरी चमड़ी वाले अपना बोरिया बिस्तर बाँध कर चले भी जायँ तो जिस अभाव को वह छोड़ कर जायँगे उसे पूरा तो कभी भी नहीं किया जा सकेगा। फिर इस पटाखेबाज़ी से क्या लाभ हुआ बता सकती है।"

क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध में विशेष कुछ न जानने पर भी हेना के मन में न जाने कैसी एक अस्पष्ट अनुभूति सी हुई। यह छिट-पुट लोगों का एकदल, सभी सांसारिक सुखों को छोड़ कर केवल देश से ही प्रेम करते हैं और जिसके पग-पग पर केवल दुःख, दैन्य, मृत्यु और लाञ्छना ही रहती है, उनके लिए उनके हृदय में जितनी श्रद्धा थी उससे अधिक ममता भी। इन लोगों को उसने कभी भी नहीं देखा था। केवल एक दिन अँधेरी रात में सुरमा दीदी के मकान से नींद खुलने पर दबा हुआ एक कंठ स्वर सुना था। वह रात उसके जीवन में एक गहरी छाप रख गयी है। दादा से बात करते-करते सहसा उसे वह स्मरण हो आया। उसके कोमल अन्तर में एक हल्की सी चोट सी भी लगी। उसे प्रकट न करके वह बोली, "तुम केवल लाभ-हानि देख कर ही उनके बारे में सोचते हो दादा। क्या सब उतना ही है ? और कुछ भी नहीं ? इतिहास में पढ़ा है कि अपने देश को बचाने के लिए युद्ध के मैदान में न जाने कितने ही लोग शत्रुओं के सामने शहीद हो जाते हैं। हार-जीत की बात वह नहीं सोचते। उनको हम लोग वीर कहते हैं। इतना गौरव भी हम क्या इन्हें नहीं दे सकते !"

अजय को इन बातों को सुन कर विस्मय हुआ। जिसे वह बिल्कुल नादान समझ रहा था उसके मुख से ऐसी बातें सुन कर नहीं वरन् उससे भी अधिक उसके स्नेहसिक्त स्वप्नमय दोनों नेत्रों को देख कर। उस पर दृष्टि रख कर वह बोला, "निश्चय ही देख सकते हैं। यह गौरव तो उन्हें मिलना ही चाहिए। केवल गौरव ही क्यों उन पर हमें

गर्व भी होना चाहिए। फिर भी मैं कहूँगा मृत्यु के मुख में कूद पड़ना वीरत्व नहीं है। फलाफल की बात भी सोच लेनी चाहिए। ऐसा न करने से ही हठकारिता ही कहा जा सकता है। हम जिसे देशप्रेम कहते हैं उसमें भावावेग जितना है उससे अधिक बुद्धि की भी आवश्यकता है। ऐसा न होने पर आखिर में जो परिणाम निकलता है उसे प्राण-शक्ति का अपच ही कह सकते हैं।"

इन सब बातों का उत्तर देने की विद्या या बुद्धि हेना में अवश्य न थी। इसी से वह चुप हो गयी। किन्तु दादा का तर्क भी उसकी समझ में नहीं आया। प्रथम यौवन के ज्वार के मुख पर खड़ी उसके मन में आया कि बुद्धि की महिमा को हम अस्वीकार नहीं करते। किन्तु जो हमारा प्रिय है उसके लिए कोई आगा-पीछा न देख कर अपने को होम देने का जो सुख है उसे दादा नहीं जानते।

अजय के सामने उसकी यह अकेली स्नेहपात्री छोटी बहिन के नीरव मन की वेदना अस्पष्ट नहीं रही। स्नेह से उसके कन्धे पर हाथ रख कर गंभीर कण्ठ में बोला, "हेना! तू समझती है कि मैं इनको नहीं पहचानता। मनुष्य की मृत्यु कितनी करुण, कितनी शोचनीय होती है इसे मैं इतना देख चुका हूँ कि मृत्यु की बात सोचते ही हमें भय होता है। मन में आता है देश को आज़ाद करने की बात रहने दो, उसके लिए किसी को प्राण न देने या लेने से बचा कर यदि किसी को रखा जा सके तो उससे बड़ा काम और कोई नहीं है। इसी में हमारे देश का कल्याण है, उन लोगों में बहुतों को मैं जानता हूँ। श्रद्धा भी करता हूँ। किन्तु उनका यह मार्ग मुझे आकर्षित न कर सका। बचपन से ही मनुष्य के रोग-शोक, दुःख-दुर्दशा, और विपद्-आपद के बीच ही जुट गया। इसी के लिए मैं बीच में निकल पड़ता हूँ। बाबा के लिए और तेरे लिए मुझे जितना करना चाहिए नहीं कर पाता। इसका कम दुःख भी मुझे नहीं है। बीच-बीच में प्रतिज्ञा भी करता हूँ कि नहीं अब नहीं जाऊँगा। तुम लोगों को ही पकड़

कर बैठा रहूँगा। सहसा कहीं से मेरी पुकार हुई तो सारी प्रतिज्ञा ढह जाती है"—कहते-कहते अजय हँस पड़ा। अप्रतिम हँसी! उसके बीच में जैसे बहुत कैफियत के स्वर भी थे।

दादा के अन्तर के इस गोपन कक्ष की बात को हेना से अधिक और कौन जानता था? किन्तु आज की तरह हृदय द्वार कभी भी नहीं खुला था। दादा से जो कुछ भी सुनती थी उन सब के बीच में एक तरल स्निग्ध परिहास ही रहता था। इस प्रकार का गंभीर स्वर हेना ने पहली बार सुना था। मन न जाने कैसा अभिभूत हो उठा था। बोलने की बात वह कुछ खोजने से भी न पा सकी। केवल उसके कंधे पर दादा का जो हाथ था उसकी एक अँगुली दोनों हाथों में पकड़ कर दादा के निकट खड़ी रही।

रात में सोने के बाद जब चारों तरफ सन्नाटा हो गया। हेना के मन में वही स्मरणीय रात लौट आयी। यही एकाध वर्ष पहले की बात है। शाम को सूरमा दीदी ने उसे बुला भेजा था। दो घन्टे पढ़ने-लिखने और कथा-कहानी के बाद जब उसके लौटने का समय हुआ तभी चारों तरफ से तूफान और पानी आ गया। और रुकने का वह नाम ही नहीं लेता था। इसी बीच उन दोनों ने खाना भी खा लिया। प्रायः दस बजे तूफान रुका किन्तु वर्षा तब भी चल रही थी। छाता और लालटेन देकर नौकर के साथ हेना को वह भेजने ही जा रही थीं कि सहसा कुछ सोच कर सूरमा दीदी ठिठक गयीं। अन्धकार में भरा हुआ निर्जन रास्ता था। बोलीं, "रहने दो, आज घर जाने की जरूरत नहीं। यहीं सो जाओ। तुम्हारे बाबा को चिट्ठी लिख देती हूँ।"

नौकर चिट्ठी लेकर चला गया। सूरमा ने अपने सोने के पास ही तख्त पर उसका बिछौना लगा दिया। लेटते ही हेना सो गयी। सहसा आधी रात में किसी शब्द को सुनकर उसकी नींद खुल गयी। कमरे का दरवाज़ा खुला था। वहाँ बिछौना खाली पड़ा था। सूरमा दीदी

नहीं थीं । । पता नहीं कैसा उसे भय लगने लगा । किन्तु वह चुपचाप पड़ी रही । बरामदे में एक चिराग जल रहा था । सहसा कानों में दबी हुई आवाज़ आई । किसी पुरुष का स्वर था । कह रहा था, "वह लड़की कौन है दीदी ?"

"वह मेरी एक छात्रा है । यहाँ के पोस्टमास्टर की लड़की ।"

"जाग तो नहीं रही है ?"

"नहीं, वह सो रही थी । क्यों जागती भी होगी तो क्या ?"

"बाप रे ! पोस्टमास्टर माने सरकारी लोग । बाप को जाकर वह सब कह देगी तो पुलिस को पीछा करने में क्या देर लगेगी ?

"वह ऐसी लड़की नहीं है ।"

"तब तो ठीक है ।

"इसके अलावा यहाँ की पुलिस भी तो उसे नहीं पहचानती । इतना डरने की बात ही क्या है ?

"भय-टय हम नहीं करते दीदी ! सोचना बस इसी बात का है है जो कमर में है वह सब दूर से ही गन्ध पा जाते हैं । बिल्कुल शिकारी बिल्ले की तरह ।"

इतना कह कर लड़का हँस पड़ा । सूरमा बोलीं, "यह सब विपत्ति लेकर ही क्यों मेरे पास आता है ?"

"वाह, कितने ही दिनों से तुम्हें नहीं देखा था । सचमुच दीदी बीच-बीच में मन बहुत लगा रहता है ।"

सूरमा ने इस बात क्या जवाब दिया यह नहीं सुनायी पड़ा । फिर लड़के की बात सुनाई दी, "वाह आँखों में आँसू भर आए न ! इसी लिए तो तुमको कुछ नहीं बताता । अब यह रोना-धोना तो कोने में रखो कुछ खाने-पीने को हो तो दो । फिर सुबह भगवान मालिक है ।"

सूरमा ने भरे गले से कहा, "तू थोड़ा बैठ, चटपट मैं थोड़ा सा चावल बना दूँ ।"

"अब चावल बनाओगी ! तब तो हो चुका ! तुम्हारी हाँडी में

कुछ नहीं है?"

"है थोड़ा सा बासी भात! नौकर सुबह खायेगा, इसीलिए रख छोड़ा है। वह तू नहीं खा सकेगा।"

"तुम भी खूब हो! मेरे लिए वही ठण्डा भात पुलाव और कलिया है। जाओ उसे ही जल्दी ले आओ। अब समय नहीं है। भोर होने ही वाली है।"

इसके बाद और कोई बात नहीं सुनाई पड़ी। रोशनी भी कम हो गई। लगता है सूरमा दीदी भाई को लेकर रसोईघर में गयीं।

सुबह जब नींद खुली तो सूरमा दीदी का बिछौना तब भी खाली था। हेना उठकर बरामदे में आई तो देखा सूरमा दीदी बैठी थीं। दोनों नेत्र फूले हुए थे। उनके नीचे कालिमा छा गई थी। बाल बिखरे हुए थे। हेना की ओर उन्होंने न जाने कैसी खोई हुई दृष्टि से देखा। शुष्क कण्ठ से बोलीं, "रात में अच्छी नींद आयी तो?" हेना ने सिर हिला कर कहा 'हाँ।' फिर प्रणाम करके विदा लेकर चली गयी। छात्री की सुनिद्रा की खबर तो सूरमा दीदी को मिली किन्तु एक निद्राहीन रात्रि के करुण इतिहास को यह लड़की निःशब्द अपने अन्तर में छिपा कर ले गयी है जिसकी खबर उन्हें कभी भी न मिल सकी।

बुआजी को लाने का दिन भी आ गया। सुबह उठते ही झटपट दाल, भात और एक तरकारी हेना ने बना दिया। इसी बीच दादा के बेग में उनके दो-एक कपड़ों को भी रख आई। खा-पी कर अजय जाने ही वाले थे कि दो मित्र आ गए। कुछ मिनटों तक न जाने क्या बातें उनसे हुई। फिर हेना को पुकार कहा, "अभी-अभी एक दूसरा काम आ गया है। अभी बाहर जाना है। बाबा से कह देना तीन चार-दिन में लौटूँगा।" कह कर मित्रों के साथ तत्काल चले गए।

तीन-चार दिन के बाद और भी तीन चार-दिन कट गए। अजय ऐसे ही कई बार गया है। कह भी नहीं जाता कि कब लौटेगा। अगर कहता भी तो समय पर न लौटता। फिर भी हेना कभी इतना चिन्तित नहीं होती थी। इस बार उसके मन में तरह-तरह की दुश्चिन्ताएँ चल रही थीं। बाबा ने भी बुला कर पूछा, 'किसी ने आकर कुछ खबर दी कि नहीं ?'' सुबह होते ही हेना को लगता कि जैसे आज दादा आवेंगे। दोपहर में उसका खाना न बनाती। सोचती जैसे ही आवेगें भात तैयार कर देगी, किन्तु अधिक रात में लौटने पर तो बहिन को कुछ बनाने देगा नहीं, इसी से शाम का चावल चूल्हे पर चढ़ाने के समय दादा का भी चावल जरूर ले लेती। सुबह उसे किसी को दे देती या स्वयं ही खा लेती। दिन कटने का नाम न लेता था। अन्त में एक चिट्ठी आयी।

कोई दस मील की दूरी पर कई जगहों से अड़ियालखाँ का बाँध टूट गया था। एक गाँव पर दूसरे गाँव को वह अपने में समेटती जा रही थी। मनुष्य के संग्रहों को मिट्टी में मिला कर भी शांत न हुई वरन घर-द्वार सब को अपने सर्वनाशी ग्रास में लपेट चुकी थी। प्रलयंकरी नदी के अन्ध-आक्रोश से बचने के लिए जो कुछ भी अपने साथ लेकर भाग सकते थे मिट्टी के लोग भाग रहे थे। वहाँ भी अन्न नहीं और सिर पर भी कोई छाया न थी। अच्छा मौका देख कर व्याधियों ने भी आकर अपना जाल फैला दिया। चारों तरफ मृत्यु का ताण्डव होने लगा।

सरकारी रिपोर्ट अभी पूरी नहीं हुई। तथ्य-संग्रह करने का ही तोड़-जोड़ चल रहा है। माल-मसाला हाथ लगने पर ही अंग्रेजी में पक्की रिपोर्ट तैयार होगी। उच्च से उच्च अधिकारियों में धीरे-धीरे उन पर विचार होगा। तब कहीं जाकर हो सका तो कुछ सहायता मंजूर होगी। इस बीच में सरकारी सहायता की प्रतीक्षा न करके कुछ फटे तम्बू और बाँस, रस्सी तथा चटाई को इकट्ठा कर के अजय ने रिलीफ

कैम्प तैयार कर दिया। इसको चलाने के लिए भी एक ही सम्बल था दूर शहर से माँग-माँग कर लाए गए कई बोरे चावल और कुछ पुराने कपड़े। अर्थबल की कमजोरी के बावजूद भी बाहुबल से जितनी सहायता करना संभव था वही करने का लक्ष्य इस दल का था।

नदी बढ़ रही थी। कुछ दूर पर ही उसका रहते सभी सामान और पशुओं को लेकर लोगों को भागना पड़ता। इसी काम के लिए उनकी सहायता की जरूरत थी। ठीक समय पर न निकलने से रातों रात ही सम्पन्न गृहस्थ फ़क़ीर बन सकते थे। एक दिन सन्ध्या समय ऐसे ही एक घर को खाली कर के सामानों को लेकर अजय अपने दो साथियों के साथ निकला। बहुत देरी हो गयी थी। कुछ ही गज की दूरी पर अड़ियालखाँ नदी गर्जन कर रही थी। तेजी के साथ गेरू के रंग का पानी बढ़ रहा था। एक बार उस पर नज़र पड़ते ही सिर चक्कर खाने लगता। जहाँ पर वह काम कर रहे थे वहीं पर पास में एक करार कटा। किसी क्षण वह भी उसी कटाव में आ सकते थे। फिर वह कहाँ दबे या बहे इसका कोई चिह्न भी न मिल सकेगा। जल्दी-जल्दी वे लोग भाग कर कटाव से कुछ दूर पर आ गए। कोई डेढ़ वर्ष के शिशु को गोद में लिए उसी घर की एक स्त्री खड़ी थी। उसने कहा, "अरे, बच्चे का घोड़ा तो लाना ही भूल गए। वह बरामदे के कोने में पड़ा है।" इतना कह कर वह आगे बढ़ी।

"ठहरो!" उसके पिता ने उसे डाँटा, "घोड़ा नहीं हाथी लेगी सर्वस्व जा रहा है, अब कहाँ चल कर आश्रय लेगी इसकी तो चिन्ता नहीं इसे बच्चे के खिलौने की ही चिन्ता है।" फिर अजय की ओर देख कर वह बोला, "चलो भाई कहाँ चलना है हम लोगों को?"

धमकी खाकर लड़की चुप हो गयी। फुसफुसा कर वह अपने आप ही बड़बड़ाई, "जानते नहीं घोड़ा न पाकर बच्चा बहुत रोएगा।" यह बात अजय के कान में पड़ी। डबडबाई आँखों से वह लड़की देख रही थी। बिल्कुल बचपन था उसमें। ऐसा लगा पहली बार यह

माँ बनी है। पता नहीं क्या सोच कर अजय ने कहा, "ठहरो, मैं बच्चे का घोड़ा लाता हूँ।" सभी ने नहीं-नहीं कहा। उसके सभी साथी चिल्ला पड़े, "अजय दा जाइएगा नहीं।" अजय ने किसी की भी बात न सुनी। बरामदे में पहुँच कर उसने जैसे ही खिलौना उठाया कि प्रलयंकारी शब्द सुन कर सभी स्त्री-पुरुष काँप उठे—और सभी दूर छिटक कर अलग हो गए। दूसरे क्षण ही लोगों ने देखा कहीं भी कुछ नहीं था। केवल पैरों के पास अड़ियालखाँ का उन्मत्त जल हिलकोरे ले रहा था।

चिट्ठी चार लाइन की थी। उसमें इतनी सब बातें न थीं। थी उसमें असली खबर। अजय के मित्र गोविन्द ने लिखा था, बाकी बाद में उसके मुख से सुना गया। कई दिनों के बाद गोविन्द ने एक बात और कही थी, "वह लड़की भी तुम्हारी ही उम्र की थी और देखने में भी तुम्हारी जैसी लग रही थी।"

फिर कई दिन कट गए। अब भी किसी-किसी दिन अँधेरी रात में सहसा नींद खुल जाती तो मन में गोविन्द की ही बात चक्कर लगाने लगती। सारा हृदय पीड़ा से भर उठता। सभी युक्ति तर्क पर छाकर उसके मन में केवल यही बात आती कि दादा की इस मर्मान्तिक मृत्यु का दायित्व जैसे उस पर ही है। छोटी बहिन को अगर वह इतना स्नेह न करते तो इस तरह अपने को वह उत्सर्ग न करते।

चिट्ठी सदाशिव बाबू के नाम आई थी। उसे पढ़ कर वह निःशब्द हो गए और चुपचाप उसे हेना के हाथों में बढ़ा दिया। फिर शंभू को पुकार के रोज की तरह ही तम्बाकू भरने को कहा। हेना तो पहले कुछ न समझ सकी। कुछ देर तक स्तब्ध होकर मौन खड़ी रही। फिर कब वह पिता की गोद में जा गिरी वह जान न सकी। सदाशिव बाबू ने कोई भी बात नहीं कही, आँखों से आँसू का एक बूँद भी नहीं गिरा। बाएँ हाथ में हुक्के की नली थी।

काँपते हुए दाहिना हाथ लड़की के सिर पर रख कर तम्बाकू पीते रहे।

अजय की मृत्यु को छः-सात महीने हो गए। बुआजी अब नहीं आयीं। केवल राखाल ही आया। यहाँ के हाई-स्कूल में वह भर्ती हुआ। यह व्यवस्था भी अजय ही कर गया था। अभी वह बच्चा था, अकेले कमरे में सोने पर डरता था। इसी से पार्टीशन किए कमरे को हेना उसके लिए छोड़ कर अब दादा के कमरे में चली आई थी। अजय की लायब्रेरी वैसी ही थी। उसके रोजमर्रे की चीज़ें भी वैसी ही सँजों कर रखी हुई हैं। वैसे तो वे चीज़ें बहुत मामूली हैं पर हेना के सामने उसका बहुत मूल्य था। सभी चीज़ों को रोज अपने आँचल से पोंछ कर और साफ कर वह यथास्थान रख देती है। घर का सब काम निबटा कर बाकी समय वह यहीं काटती है। सखी-सहेलियाँ तो कभी थीं नहीं। अब तो बिल्कुल ही नहीं हैं। कभी-कभी सूरमा दीदी बुला लेतीं हैं तो वह शम्भू या राखाल के साथ जाकर थोड़ा समय काट आती है। इसके अतिरिक्त उसकी चिरसंगिनी थीं दादा की पुस्तकें।

कई दिनों से शम्भू बीमार था। सभी काम हेना पर ही आ पड़ा। बाबा का सुबह का खाना ठीक समय पर वह तैयार न कर पाती। शम्भू के न रहने पर उन्हें सुबह-सुबह दफ्तर में जाना पड़ा। थोड़ी देर में ही चाय और डिश में थोड़ा सा हलुआ लेकर यह बाबा के टेबिल के पास जा खड़ी हुई। बाबा कुछ लिख रहे थे। सिर उठा कर बोले, "यह सब लेकर यहाँ क्यों चली आयीं? आवाज़ दे देतीं तो मैं वहीं आकर खा लेता।"

"हाँ, जरूर बुलाने पर जाते। आठ बजे बुलाती तो दस बजे पहुँचते।"

"क्य ाकरूँ बेटी ? अब पहले जैसा काम नहीं होगा।"

पहले जब कभी वह ऐसी बात कहते तो वह चट जवाब देती, "इस बुढ़ौती में आप इतना काम करते ही क्यों हैं ? पेनशन ले लीजिए। दादा किस लिए हैं। हम तीन ही तो आदमी हैं ?" लेकिन आज ऐसी बात कहने का मुँह भी भगवान ने न रक्खा। बाबा की बात का कोई भी उत्तर न देकर उनके मुरझाए से क्लान्त मुख की ओर देखती रही। लड़की के सामने अपने अशक्त शरीर की दुर्बलता को प्रकट न होने देने के लिए वह झटपट उठकर बोले, "शम्भू को ठीक होते ही सब ठीक हो जायगा। वह कैसा है देखा तुमने ?"

"आज तो बुखार नहीं है। सोचती हूँ कल भात दूँ।"

"ठीक है ! तू कब तक खड़ी रहेगी ! यहीं सब रख कर जा। हाथ के काम निपटा कर खा लूँगा।"

हेना ने सिर झुका कर कहा, "नहीं; ऐसा नहीं होगा। तब तक तो सब ठण्डा हो जायगा। पहले खा लें फिर जो करना हो करें।" कह कर तश्तरी उसने बाबा के सामने बढ़ा दिया।

"आ सकता हूँ ?"

हेना चौंक पड़ी। अपरिचित गम्भीर स्वर था। जँगले के उस पार दृष्टि पड़ते ही उसका हृदय न जाने क्यों काँप उठा—केवल विस्मय से ही नही किसी अज्ञात भय से भी। साधारण चेहरे का कोई भलेमानुस सा लग रहा था; किन्तु उसकी दोनों आँखें अजीब थीं। जैसी तेज थीं वैसी ही उज्वल ! ऐसा लगा जैसे वह केवल बाहर ही नहीं देखती वरन् वह क्षण भर के दृष्टिपात में ही यह भी जान लेती है कि तुम्हारे अन्तर में क्या है। क्षण भर तक दोनों के नेत्र चार हुए तो हेना सिर झुका कर चली गयी। बाहर जाने पर भी उसको ऐसा लगा जैसे सर्चलाइट की तरह दृष्टि फेंक कर वे दोनों नेत्र उसका मानों पीछा कर रहे हैं।

सदाशिव चाय की चुस्की लेकर कप को रखते हुए बोले, "कौन ?"

"मैं विकास।"

"ओ, आप ? आइए, आइए।"

सदाशिव बाबू ने उठ कर दरवाज़ा खोला। फिर अपनी सोफ़ा पर आते-आते बोले, "उस दिन दरोगा साहेब के मकान पर बात-चीत होने के बाद रोज ही सोच रहा था कि आपके यहाँ आऊँ। पर अभी तक नहीं पहुँच सका। इसे छोड़ कर क्या कहूँ कि साहस ही नहीं हुआ। कौन जाने वह फिर—"

"ऐसी आशंका है क्या ? हमारे लिए भी यह बड़े दुःसाहस का काम था। फिर आज भी दरोगा साहेब की अनुमति से ही आया हूँ।"

पास के चेयर पर विकास को बैठाते हुए सदाशिव ने कहा, "चाय मँगाऊँ ?"

"केवल चाय ही नहीं, अगर आपत्ति न हो तो उसके साथ ही कुछ खाने को भी मँगावें। आपका यह हलुआ देख कर मैं भी ललचा गया हूँ।" कह कर विकास हँस उठा।

सदाशिव मुस्कराते हुए बोले, "भई खूब, आपत्ति कैसी ? अरे राखाल—"

राखाल के आते ही कहा, "अपनी दीदी से कहो कि एक डिश हलुआ और चाय ले आवे।"

'दीदी' ने खुद ही सब सुन लिया। आगन्तुक के सम्बन्ध में गहरा विस्मय और तेज कौतूहल लेकर वह कमरे के पीछे खड़ी थी।

विकास बोला, "मेरा प्रस्ताव सुन कर आप निश्चय ही खूब अवाक हो गए होंगे। गृहस्वामी खाने-पीने के लिए अनुरोध करते हैं और अतिथि 'ना'-'ना' ही करते हैं यही तो हमारे यहाँ का प्रचलित रिवाज़ है। किन्तु मैं तो इस समाज से बाहर हूँ। फिर खाने-पीने की

"क्या करूँ बेटी ! अब पहले जैसा काम नहीं होगा।"

पहले जब कभी वह ऐसी बात कहते तो वह चट जवाब देती, "इस बुढ़ौती में आप इतना काम करते ही क्यों हैं? पेनशन ले लीजिए। दादा किस लिए हैं। हम तीन ही तो आदमी हैं!" लेकिन आज ऐसी बात कहने का मुँह भी भगवान ने न रक्खा। बाबा की बात का कोई भी उत्तर न देकर उनके मुरझाए से क्लान्त मुख की ओर देखती रही। लड़की के सामने अपने अशक्त शरीर की दुर्बलता को प्रकट न होने देने के लिए वह झटपट उठकर बोले, "शम्भू को ठीक होते ही सब ठीक हो जायगा। वह कैसा है देखा तुमने?"

"आज तो बुखार नहीं है। सोचती हूँ कल भात दूँ।"

"ठीक है! तू कब तक खड़ी रहेगी! यहीं सब रख कर जा। हाथ के काम निपटा कर खा लूँगा।"

हेना ने सिर झुका कर कहा, "नहीं; ऐसा नहीं होगा। तब तक तो सब ठण्डा हो जायगा। पहले खा लें फिर जो करना हो करें।" कह कर तश्तरी उसने बाबा के सामने बढ़ा दिया।

"आ सकता हूँ?"

हेना चौंक पड़ी। अपरिचित गम्भीर स्वर था। जँगले के उस पार दृष्टि पड़ते ही उसका हृदय न जाने क्यों काँप उठा—केवल विस्मय से ही नही किसी अज्ञात भय से भी। साधारण चेहरे का कोई भलेमानुस सा लग रहा था; किन्तु उसकी दोनों आँखें अजीब थीं। जैसी तेज थीं वैसी ही उज्वल! ऐसा लगा जैसे वह केवल बाहर ही नहीं देखती वरन् वह क्षण भर के दृष्टिपात में ही यह भी जान लेती है कि तुम्हारे अन्तर में क्या है। क्षण भर तक दोनों के नेत्र चार हुए तो हेना सिर झुका कर चली गयी। बाहर जाने पर भी उसको ऐसा लगा जैसे सर्चलाइट की तरह दृष्टि फेंक कर वे दोनों नेत्र उसका मानों पीछा कर रहे हैं।

सदाशिव चाय की चुस्की लेकर कप को रखते हुए बोले, "कौन ?"

"मैं विकास।"

"ओ, आप ? आइए, आइए।"

सदाशिव बाबू ने उठ कर दरवाज़ा खोला। फिर अपनी सीट पर आते-आते बोले, "उस दिन दरोगा साहेब के मकान पर बात-चीत होने के बाद रोज ही सोच रहा था कि आपके यहाँ आऊँ। पर अभी तक नहीं पहुँच सका। इसे छोड़ कर क्या कहूँ कि साहस ही नहीं हुआ। कौन जाने वह फिर—"

"ऐसी आशंका है क्या ? हमारे लिए भी यह बड़े दुःसाहस का काम था। फिर आज भी दरोगा साहेब की अनुमति से ही आया हूँ।"

पास के चेयर पर विकास को बैठाते हुए सदाशिव ने कहा, "चाय मँगाऊँ ?"

"केवल चाय ही नहीं, अगर आपत्ति न हो तो उसके साथ ही कुछ खाने को भी मँगावें। आपका यह हलुआ देख कर मैं भी ललचा गया हूँ।" कह कर विकास हँस उठा।

सदाशिव मुस्कराते हुए बोले, "भई खूब, आपत्ति कैसी ! अरे राखाल—"

राखाल के आते ही कहा, "अपनी दीदी से कहो कि एक डिश हलुआ और चाय ले आवे।"

'दीदी' ने खुद ही सब सुन लिया। आगन्तुक के सम्बन्ध में गहरा विस्मय और तेज कौतूहल लेकर वह कमरे के पीछे खड़ी थी।

विकास बोला, "मेरा प्रस्ताव सुन कर आप निश्चय ही खूब अवाक हो गए होंगे। गृहस्वामी खाने-पीने के लिए अनुरोध करते हैं और अतिथि 'ना'-'ना' ही करते हैं यही तो हमारे यहाँ का प्रचलित रिवाज़ है। किन्तु मैं तो इस समाज से बाहर हूँ। फिर खाने-पीने की

चीज़ हम लोगों के जीवन में इतनी अनिश्चित है कि सामने देख कर उसकी अवहेलना तो कर ही नहीं सकता। यही मेरी आदत पड़ गयी है—" कह कर वह फिर हँस पड़ा।

सदाशिव ने उस हँसी में साथ नहीं दिया। बात मज़ाक में कहने पर भी जैसे उनके अन्तर को छू लिया हो। वह बोले, "आपका नौकर कैसा खाना बनाता है?"

"देखिए, यह तो मैं ठीक से नहीं बता सकता। अभी तक तो खाना मैं पेट भरने के लिए जानता हूँ। उसके लिए अच्छा-खराब होने की बात ही नहीं सोची। इसकी क्षमता भी नहीं!"

राखाल हलुआ और चाय का कप रख गया था। डिश से थोड़ा-सा मुँह में रख कर वह बोला, "किन्तु यह चीज़ तो बहुत अच्छी बनी है, इसे समझने में असुविधा भी नहीं है।"

सब हलुआ को साफ कर चाय की चुस्की लेते हुए उसने फिर कहा, "यह सब किसने बनाया?"

"मेरी लड़की हेना ने। उसके अलावा तो मेरा और कोई है भी नहीं।" दीर्घ निःश्वास फेंकते हुए सदाशिव बाबू ने कहा, "इसके लिए मुझे कोई क्षोभ भी नहीं है विकास बाबू! सभी राधा माधव की इच्छा है!"

विकास एक क्षण तक चुप रहा, फिर गंभीर स्वर में बोला, "मैंने कुछ-कुछ सुना है मास्टर साहेब! वैष्णव साहित्य में आपका अनुराग है एवं वैष्णव दर्शन में आपका अधिकार है यह भी सुन चुका हूँ।"

सदाशिव कुण्ठित से हो गए। प्रतिवाद में कुछ कहना ही चाहते थे कि विकास उधर ध्यान न देकर आगे कहता ही गया, "मुझे लगता है कितने ही अभावों के बावजूद भी भगवान ने आपको बहुत विशाल हृदय बनाया है। जीवन का यह बहुत बड़ा धन आपको अनायास मिल गया है। आपसे मैं भी बहुत कुछ सीखना चाहता हूँ। अनुमति दें तो मैं भी बीच-बीच में आकर आपका सत्संग

कर सकूँ।"

बहुत कम बोलने वाले सदाशिव बाबू और भी संकुचित हो गए। किन्तु एक अस्पष्ट विनय प्रकाश को छोड़ कर और कुछ भी नहीं बोल पाए। विकास ने कहा, "खैर जो भी हो मिस मित्र को मेरा धन्यवाद देंगे। उनका बनाया हुआ नाश्ता मैंने बड़ी तृप्ति के साथ खाया और इसी लोभ में भविष्य में फिर कष्ट देने की संभावना रहेगी।"

"क्या खूब! उसके सम्बन्ध में इतने संकोच से बात करने की क्या बात? वह तो अभी बिल्कुल बच्ची है? आप जब आये थे तब तो वह यहीं थी। देखकर ही समझ गए होंगे। अरे ओ राखाल, अपनी दीदी को जरा भेज दें!"

हेना कमरे के पीछे खड़ी सब बात सुन रही थी। बाबा के पुकारने पर उसके हृदय में फिर कम्पन-सा हुआ। यह कैसा भय था वह न जान सकी। किन्तु इतना वह समझ रही थी कि ऐसी अवस्था में वह उनकी आँखों के सामने नहीं जा सकती थी। नहीं, नहीं, वह तो हो नहीं सकता। मामा बुला रहे हैं यह सुन कर राखाल ज्यों ही तारघर से बाहर निकला उसी समय वह अपने कमरे में से गमछा-कपड़ा लेकर बाहर निकली और बोली, "बाबा से कह देना दीदी नहाने गयी हैं।"

विकास घोष के लिए सरकारी आदेश था कि मैदानों या बाग़ों को जितना चाहो देखो, आने जाने वालों को भी चाहे देखो। थोड़ा बहुत घूम-फिर भी सकते हो। किन्तु बगैर अनुमति के किसी आदमी से बातचीत नहीं कर सकते। जेल में विकास जब तक था उसे ऊँची-ऊँची दीवारें ही अखर रही थीं। इच्छा होने पर भी वह बाहर जाकर मुक्त वातावरण में नहीं खड़ा हो सकता था। कभी-कभी इसके

लिए उसे बहुत मानसिक पीड़ा भी होती। लेकिन आज की यह पाबन्दी उसे और भी खल रही थी। चारों तरफ जन-समूह है। उन्हीं के बीच घूमता-फिरता है, कितनों से आँखें चार होती हैं। दोनों तरफ से साग्रह कौतूहल होता। फिर भी आगे बढ़ कर किसी का हाथ पकड़ कर बोलने का कोई उपाय न था। किसी से वह यह भी नहीं पूछ सकता था, 'कैसे हो?' मनुष्य के साथ मनुष्य का जो सहज एवं सनातन सम्पर्क है उसका प्रथम सूत्र है वाक्य। कानून ने उसे ही निर्ममतापूर्वक छिन्न कर दिया था, उसे लगता इससे बड़ी असहनीय बात और क्या हो सकती है? घर के जँगले पर बैठे-बैठे रास्ते की ओर देखने में बीच-बीच में उसे बड़ा ही कौतुक-सा लगता। बहुत दिनों पहले पढ़ी किसी अंग्रेज कवि क दो लाइनें याद आ जातीं—

Water water everywhere
Nor any drop to drink

इन दो पंक्तियों का असाधारण गम्भीर तात्पर्य इतने दिनों से वह समझने लगा था। चारों तरफ जल ही जल है किन्तु अपने कण्ठ की तीव्र प्यास मिटाने के लिए एक बूँद भी तुम नहीं पा सकते।

सरकारी आदेश की पहली दफा है कि रोज दोनों वक्त थाने में जाकर हाजिरी दो। दरोगा हुस्सैन के साथ दो-चार मामूली बातें होतीं—पर उसी के लिए छटपटाया करता। उस दिन वे ही पूछ बैठे, "जगह कैसी लगती है?"

विकास ने हँसकर जवाब दिया, "आपने यह भी ठीक ही कहा। आप दरबे की मुरगियों से पूछिए कैसा लगता है?"

"क्यों, सुबह-शाम कुछ दूर घूमने फिरने का आर्डर तो है आपको। हमारे सिपाही भी मेहरबानी करके लगता है नहीं जाते। अच्छा ठहरो तो—"

"नहीं, नहीं; वे सब ठीक जाते हैं।" विकास ने जल्दी से कहा।

"फिर ? श्रो समझा आप क्या कहना चाहते हैं ? यह मेरी ही बात लीजिए। सात दिन खाने को बीबी साहिबा भले ही न दें पर इससे कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं, किन्तु हठात् यदि हुक्म दे दें कि एक घन्टा कुछ भी न बोलो तो मैं महाशय पागल हो जाऊँ। नहीं तो इसी अड़ियालखाँ में ही जाकर कूद पड़ना पड़ेगा।"

विकास हँसने लगा। दरोगा साहेब बोले, "तब एक काम करो, यहाँ पर हम सरकारी लोग जितने हैं—जैसे डाक्टर बाबू, पोस्ट-मास्टर साहेब, सब-रजिस्ट्रार, हेडमास्टर, इन लोगों के पास बीच-बीच में क्यों नहीं जाते ? लड़कों और छोकरों से बातचीत भी न होगी। और हाँ लड़कियों के स्कूल की सरदारिन सूरमा सेन। गजब की औरत है। उनसे कभी न मिलिएगा। मोटी बात यह ध्यान में रखेंगे कि मेरी नौकरी पर आँच न आवे—यही सोच-समझ कर चलें सर !"

उसके बाद विकास सभी घरों के दरवाज़े पर हो आया—पर कहीं भी किसी ने सन्तोषजनक व्यवहार उससे नहीं किया। सभी अपनी-अपनी समस्याओं में व्यस्त थे। बाल-बच्चों में ही सब फँसे रहते। किसी के घर में युवक लड़का था तो किसी के यहाँ सयानी लड़की, सभी डरते रहते। पता नहीं कब कैसी मुसीबत आ जाय इससे सभी को भय था। पहली मुलाकात में ही वह उनका संकोच भाँप जाता तो फिर वहाँ न जाता। केवल एक ही जगह वह बार-बार जाने-आने लगा—सदाशिव बाबू के बैठकखाने अर्थात् डाकघर में और बीच-बीच में उसके पीछे की ओर उसके सोने के बरामदे में। बात-चीत का विषय वैष्णव साहित्य ही होता। सदाशिव कहते जाते और विकास सुनता रहता। कभी-कभी रवीन्द्रनाथ का प्रसंग छिड़ता। उस दिन वक्ता तो होता विकास और सुननेवाले सदाशिव अपनी पुत्री के साथ बैठते। हेना का एक काम और था। बातचीत के बीच में कभी-कभी चाय और उसके साथ में अपने हाथ से तैयार किए कुछ

नाश्ते का प्रबंध।

स्वल्पभाषी सदाशिव हठात् ऐसे मुखर हो उठेंगे ऐसी कल्पना भी पहले नहीं की जा सकती थी। सभी देखते हैं कि सारा जीवन उन्होंने केवल संग्रह ही किया। देने के लिए भी उनके पास कुछ है इसे कौन जानता? उनकी लड़की ने भी कभी ऐसी बात न सोची थी। इस नए आगन्तुक के सम्पर्क से बाबा का एक नया व्यक्तित्व प्रकट हुआ—इसके लिए हेना कृतज्ञ थी। अपने पुत्र और कला से भी जो मन का मेल उन्हें नहीं मिला था वह उन्हें जीवन के सन्ध्या वेला में एक अनात्मीय, अपरिचित, क्रान्तिकारी से सहज ही उन्हें मिला—इससे बड़ी विचित्रता और क्या होती। किन्तु पिता ने जहाँ अपने को भुला दिया, वहीं कन्या का मेल न हो सका। वह नज़र उठाकर जब भी उसके नेत्रों की ओर देखती तो कलेजा न जाने क्यों काँप उठता। आज भी वह इसका कारण नहीं जान पायी। प्राणपन से वह अपने इस भय को दबाए रखने की चेष्टा करती। फिर भी अन्तर के कोने-कोने में यह कम्पन उठ ही जाता।

उस दिन सदाशिव गोविन्द दास की एक कविता का पाठ कर रहे थे। इसी समय तश्तरी में हेना कुछ मीठा लिए उनके पास आ खड़ी हुई। पद को शेष करके सदाशिव बोले, "अच्छा अब इसे यहीं रहने दिया जाय। अब हेना बिटिया की मिठाई का वक्त आ गया।"

हेना ने प्रतिवाद किया, "वाह, यह क्यों? क्या दोनों काम एक साथ नहीं चल सकता।"

"नहीं ऐसा नहीं चलेगा।" विकास ने उत्तर दिया, "एक साथ ही दोनों चलाने में दोनों आपस में घुल जायँगे—कौन अधिक मीठा है यह जान ही न सकेंगे।

"अच्छे पेटू हैं आप?

"लेकिन वह बुरी बात तो नहीं, अच्छी ही बात है। हम लोगों के

पेटू होने पर ही तो लड़कियों का इतना मान है। नहीं तो तुम लोग क्या करतीं ?"

"क्यों ? आप लोगों की पेट की भूख को ही मिटाना क्या हम लोगों का काम है ? क्या इसे छोड़कर और कुछ है ही नहीं ?"

हेना के कण्ठ में तेजी का आभास पाकर सदाशिव हँस पड़े, "क्या यह छोटा काम है रे पगली ? तुम लोग तो अन्नपूर्णा हो और तुम्हारे ही सामने तो हाथ फैलाकर देवादिदेव खड़े हुए। सुजाता का अन्न न पाते तो सिद्धार्थ कभी भी बुद्धदेव न बन पाते।"

सहसा शंभु के आते ही सदाशिव उठ पड़े। जाते-जाते बोले, "अच्छा, तुम बात करो। मैं आफिस तक घूम आऊँ। राधा माधव।"

यह है सनातन नारी वन्दना। इस तरह की स्तुतियों को सुनकर जो लड़कियाँ गद्‌गद् हो जाती हैं हेना उनमें से न थी। फिर भी इस बात को लेकर सचमुच में तर्क करने की उसकी इच्छा भी न थी। वह विकास की ओर देखकर हल्के स्वर में बोली, "आप भी क्या बाबा की राय से सहमत हैं ? इसके माने तो यही हुए न कि वह तो बस चूल्हे के सामने ही रहे और उसका कोई काम है ही नहीं, क्यों ?

इसके उत्तर में विकास से भी कुछ हल्की और मज़ाक की बात की वह आशा कर रही थी। किन्तु उसके मुख की ओर देखकर उसे आश्चर्य हुआ। वह इतनी गंभीर मुद्रा में आ गया था जितना पहले कभी नहीं देखा गया था। कुछ क्षण तक वह सामने शून्य दृष्टि देखने के बाद धीमें स्वर में बोला, "पाँच साल पहले पूछा होता तो मैं भी तुम्हारी बात का समर्थन करता। बड़े उत्साह से पूछता कि क्या लड़कियाँ चहारदीवारी के भीतर ही पड़ी रहेंगीं ? बाहर भी उनकी जरूरत है। जीवन संग्राम के हर क्षेत्र में उन्हें पुरुष के साथ रहना चाहिए। यह हमारा कोरा विचार ही न था बल्कि इसी आदर्श को सामने रखकर हम लोगों ने काम शुरू किया था। साधारण गृहस्थ

परिवार की ऐसी कितनी लड़कियों को इस खूनी पथ पर हम खींच भी लाए थे—यदि वे विवाह कर लेतीं तो एक आदर्श गृहणी बन सकती थीं। कितनों ने ही हमारे इसी हाथ से पिस्तौल चलाना सीखा। उन्होंने सीखा पिस्तौल को ऊँचे रख कर किसी आदमी के सीने को कैसे बींधा जा सकता है। उसकी परीक्षा भी उन्होंने दी। जरा भी उनका दिल न तो दहला और न हाथ हो काँपा। दया नहीं, करुणा भी नहीं; निर्मम, कठोर। गर्व के साथ कह सकता हूँ कि हमारे शास्त्र में नारी को जो 'शक्ति' कहा गया है वही रूप उनका था। यही उनका परिचय था। नारीत्व के माने कोमलता नहीं। कोमलता का दूसरा नाम तो दुर्बलता है; फिर—

इतना कहने के बाद विकास ने अपनी दृष्टि हेना पर डाली। वह नीरव किन्तु प्रदीप्त आग्रह के साथ सुन रही थी। गला साफ करके वह बोला "फिर, एक दिन ऐसी लड़की देखा जिसका रूप बिल्कुल ही अलग था।"

"आप लोगों की पार्टी की लड़की थी?" हेना ने प्रश्न किया।

"नहीं, पार्टी के साथ उसका कोई सम्पर्क न था।"

"तब?"

"यही बताऊँगा। किन्तु अब तो शाम हो गयी।"

हेना बाहर की ओर एक बार देख कर बोली, "जरा बैठिए मैं अभी आ रही हूँ।"

जहाँ पर बैठे वह बात कर रहे थे वहीं से कुछ दूर पर उठान के कोने में एक तुलसी मंच था। वेदी विधिवत् गोबर से लीपी हुई थी। हेना ने कमरे में जाकर झटपट कपड़े को बदल लिया, फिर भण्डार-घर से एक मिट्टी का दीप लेकर जलाया, उसे फिर ओट में लेकर तुल-सी वृक्ष के पास गयी। वेदी के ऊपर रखकर गले में आँचल लपेट कर बैठकर प्रणाम किया, फिर लौटकर अपनी जगह पर आ बैठी। विकास की ओर देखकर वह बोली, "अच्छा अब आप बताइए।"

विकास एकाग्र दृष्टि से अभी तक उसका अनुसरण कर रहा था। इस बार उसके मुख की ओर देखकर स्निग्ध कण्ठ से बोला, "तुम्हारा यह तुलसी प्रणाम बहुत अच्छा लगा।"

"अच्छा लगा!" विस्मय से हेना ने पूछा, ' किन्तु आप लोगों को तो यह सब अच्छा नहीं लगना चाहिए।"

"हाँ यह तो है! अब किसके लिए क्या उचित है और कौन अनुचित है, काश, इन बातों को मैं पहले जान जाता। खैर हटाओ इन बातों को। जो कह रहा था उसी को सुनो—

"यथेष्ठ हथियार-पत्तर न रहने से हम लोगों को काम में बड़ी असुविधा हो रही थी। इसी समय मुफस्सिल के किसी एक राजघराने में कुछ विशेष माल का पता लगा। कोई चार राइफल, दो रिवाल्वर, और दोनली बन्दूक, वह भी कुल सात-आठ थी। सभी सामान एक कमरे में था। देखने वाला भी कोई न था। नौकर रोज उनकी धूल झाड़ता। बस इतना ही होता। एक बूढ़ा दरबान बाहर के फाटक पर था पर वह भी देखने में बिल्कुल तुलसीदास मार्का पंडित जी लग रहा था। किन्तु समय पर देखा गया, वह भी रीतिवत् उदासीन ही बना रहा। काम निपटा कर जब हम लोग निकलने लगे तो उसने एक गोली चला दी। हमने भी जवाब दिया। फलतः उनकी तरफ एक आदमी मारा गया और हमारे दल में भी एक जख्मी हुआ। उसे उठाकर ले चलना पड़ा। कोई एक मील पर थाना था। दो दरोगा दल-बल के साथ हम लोगों के पीछा के लिए निकल पड़े। उनके आने से पहले ही हम लोगों का दल और माल सुरक्षित रूप में नौका पर जा पहुँचा। बोझा लादे हुए अकेले मैं ही रह गया। भाग्य से पास में एक जंगल था। वह भी बहुत घना नहीं था। मैं उसी में घुस गया। आसपास गोली की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। हमारे साथी को होश न था, शरीर भी बहुत भारी था। फिर भी भागना पड़ा। इस समय मैं समझ रहा था कि बस मेरे दिन पूरे हो चुके हैं, किसी भी समय अब मेरा

अन्त हो सकता है। इतने में ही मेरे सिर के ऊपर से सनसनाती हुई गोली आई। मैं समझा कि मेरा सिर उड़ गया। एक मिनट बाद देखा मेरा सिर तो बच गया पर मेरे साथी का सिर उड़ गया था! अब उसे ढोने से क्या लाभ? खून से लथपथ शरीर को जमीन पर लिटा दिया। आखिरी बार उसे देखने का मैंने चेष्टा की पर अँधेरे में कुछ भी नहीं दिखायी पड़ा। इसी समय कठोर स्वर सुनाई पड़ा 'हैण्ड्स अप' दो तरफ से दो यमदूत बढ़ रहे थे। एक हाथ में राइ-फल और एक के हाथ में रिवाल्वर थी।

रात को थाने की हिरासत में मुझे रखा गया। सीलन और दुर्गन्ध से भरी हुई कोठरी थी। बिछौने की भी व्यवस्था थी, कोने की ओर लपेटा हुआ एक फटा हुआ कम्बल। उसके लिए मैंने और लोभ नहीं किया। मैं मेज पर ही चित्त लेट गया। बहुत आराम मिला। देखते ही देखते सो गया।

"खूब, नौका के साथियों ने आपको बुलाया नहीं था?"

व्यथापूर्ण स्वर में हेना बोल उठी।

"उन्होंने पुकारा जरूर था फिर भी मैं सुन न सका था।"

हेना ने फिर कुछ न कहा। उसके चेहरे की ओर कुछ क्षणों तक देखकर विकास ने अपनी बात शुरू की—

"सोते में ही मुझे लगा कि जैसे मुझे कोई ठेल रहा है। आँखें मींज कर खोली तो देखा काल की तरह एक आदमी खड़ा है और दरवाज़ा खुला है। मेज के ऊपर ज्योत्स्ना की क्षीण रेखाएँ आकर बह रही थीं। उस आदमी ने दबे गले से फुसफुसा कर कहा, 'उठ आओ।' पहले तो लगा स्वप्न देख रहा हूँ। आँखें फाड़-फाड़ कर मैं देखने लगा। इस बार वह हमारा हाथ खींचकर उठाने की चेष्टा करने लगा। धमकी के स्वर में बोला 'क्या कर रहे हैं। उठ पड़िए।' कठपुतली की तरह उठ गया। बाहर आकर धीरे से उसने दरवाज़ा बन्द कर के ताले को लगा दिया। फिर मुझे इशारा कर के मैदान

की ओर भाग चला। मैं भी बच्चे की तरह उसके पीछे दौड़ा। कुछ दूर आने पर बोला 'ठहरिए, चाभी दे आऊँ।' कहकर एक मकान के पीछे की ओर गया। देखा कोई खुली खिड़की पर खड़ी है। हाथ में एक हरीकेन लालटेन थी। उसी के अस्पष्ट प्रकाश में कोई महिला दिखाई पड़ी। चाभी उसके हाथ से लेते ही उसने लालटेन को नीचे रख दिया और दाहिने हाथ से हमारी तरफ इशारा करके भाग जाने का संकेत किया। उस आदमी को पास आते ही मैंने पूछा, 'वह कौन हैं?"

"'चलो बाद में बताता हूँ।' कह कर तेजी के साथ नदी की ओर आगे बढ़ा। चलते-चलते एक बार मैंने पीछे की ओर देखा। उन्होंने और भी तेजी के साथ हाथ से भागने का इशारा किया। हरीकेन लालटेन के मंद प्रकाश में चेहरा स्पष्ट रूप से नहीं दिखायी पड़ा। वहाँ क्या था यह भी नहीं जानता। वह कौन हैं उसकी तो कोई न थीं, कभी उन्हें देखा भी न था। उसके लिए उनके मन में इतना व्याकुल उद्वेग क्यों है, उसे भी सोचने का मौका न मिल सका। उसी समय मन में केवल माँ की याद आई जिसे बचपन में ही खोकर भूल-सा गया था। फिर मन में बहुत दिन पहले पढ़ी रवीन्द्रनाथ की कविता कल्याणी का स्मरण हो आया। ऐसा लगता है कविगुरु ने इसी तरह किसी को देखकर उस कविता की रचना की होगी। महाकवि की कविता को याद कर के आखीर की दो लाइनों को गुनगुना उठा 'सर्वशेषेर श्रेष्ठ जे गान, आछे तोमार तरे।'

"घाट पर गहरे अन्धकार में एक छोटी नौका प्रतीक्षा कर रही थी। उस पर मेरे बैठने के साथ ही उससे पूरा जोर लगा कर आगे बढ़ाया। कुछ दूर जाने के बाद मैंने अपने पिछले सवाल को फिर दोहराया 'वह कौन थीं बताया नहीं?'

"'दरोगा बाबू का परिवार है।'

"यह सुन कर उसके मुख की ओर देखता ही रह गया। दूसरा

प्रश्न करने की इच्छा भी न रही। माँझी स्वयं बहुत सी बात बता गया। किसी समय यह दरोगा बाबू के घर में काम कर चुका था। कोई साल भर पहले जब बाढ़ में उसका घर-मकान ध्वस्त हो गया था तो उन्हीं की दया से बाल-बच्चों को पाल रहा था। वह उनके लिए अपनी जान भी दे सकता है। आज रात में एक 'स्वदेशी' डकैत पकड़ा गया है यह बात उनके कान में पड़ी थी, इसे सुनते ही उन्होंने मुझे बुला भेजा। वह उनके घर में लकड़ी रखने की कोठरी में तब तक छिपा बैठा रहा। जब सब कोई सो नहीं गए फिर दरोगा बाबू के तकिए के नीचे से चाभी निकाल कर मेरे हाथ में देकर आदेश दिया, 'बाबू जहाँ जाना चाहें वहाँ उन्हें पहुँचा दो तभी तुमको छुट्टी मिलेगी।' फिर कुछ क्षणों तक मौन रहने के बाद मांझी बोला, 'आप तो बच गए बाबू! पर उनके भाग्य में क्या है कौन जाने?'

"मैं चौंक उठा। पूछा, 'क्यों?'

"दरोगा बाबू बहुत गवाँर हैं। उस पर से शराब पीते हैं। उस बार एक स्वदेशी बाबू के लिए हिरासत घर में उन्होंने कुछ खाने की चीज़ भेजी थी। यह जानते ही उसने उनको मारते-मारते बेदम कर दिया था। मैंने अपनी आँखों से देखा था।

"मुझे याद है, मैं चिल्ला उठा था, 'नौका को वापस करो।' माँझी के कान में यह बात नहीं घुसी और न वह कुछ परेशान ही हुआ। हँसकर वह बोला, 'तब मेरी क्या दुर्गत होगी इसे भी आपने सोचा है बाबू?'

विकास की कहानी समाप्त हुई। उसके बाद कुछ देर तक मौन उसी बरामदे के अन्धकार में बैठा रहा। किसी को एक चिराग जलाने की भी बात मन में न रही। आफिस घर से सदाशिव बाबू के बाहर निकलने की आवाज़ पाकर विकास सहसा उठ खड़ा हुआ और

बोला, "अब जाना चाहिए। और देर करने पर दरोगा साहेब सोचेंगे कि उनका मुलज़िम भाग गया।" हेना उठती हुई बोली, "उस महिला की फिर कोई खबर नहीं ली ?"

"वह सुयोग मिला ही कहाँ ? कुछ दिनों के बीच में ही पकड़ लिया गया। फिर पाँच साल की जेल हुई। छूटते ही इनटरनी का परवाना मिला। तुम्हारे देश में आ गया।"

हेना बहुत दिनों से सूरमा दीदी के घर न जा सकी। एक रविवार को कुछ देर हेना इनके यहाँ हो आयी। लौटती समय एक किताब देख कर साथ में ले आयी। उस दिन शाम को दादा के कमरे में पड़े तख्त पर चटाई बिछा कर उसी पर लेट कर उस किताब को पढ़ रही थी। दरवाजे के बाहर बाबा की आवाज़ सुनायी पड़ी, 'हेना है ?' वह जवाब देती हुई जल्दी से उठ कर दरवाजे पर आयी। बाबा के पास विकास खड़ा था। आँख उठा कर देखते ही उसके हृदय में वह भय फिर से जाग उठा। विकास ने हँस कर कहा, "लग रहा था पढ़ रही थी ?" हाथ की किताब की ओर एक बार देख कर हेना बोली, "हाँ इसी को जरा देख रही थी। आप कब आए ?"

सदाशिव ने कहा, "मैं ही जाकर पकड़ लाया। चाय-टाय तो बनाओ। मैं तब तक डाक देख आऊँ।"

इसके पहले हेना के कमरे में विकास कभी भी नहीं गया था। उसमें जाय या शिव बाबू के बरामदे में जाकर बैठे वह कुछ सोच ही रहा था कि हेना ने कहा, "आइए न !" ड्योढ़ी पर खड़े होकर भीतर की ओर सामने देखते हुए विकास ने कहा, "क्या जूता पहिने ही आ जाऊँ ?"

"आप भी खूब हँसी की बात कर रहे हैं। नहीं तो जूता कहाँ रख आवेंगे। मन्दिर में आ रहे हैं क्या ?" कह कर हेना हँस उठी।

"हँसी की बात नहीं; सचमुच ऐसा ही लग रहा है जैसे मन्दिर में आ रहा हूँ। इतने करीने से सभी चीज़ें सजी हुई हैं। कोई विशेष टीमटाम भी नहीं है, फिर भी इतना साफ सुथरा घर मैंने कभी नहीं देखा। वह लगता है तुम्हारे दादा हैं?"

हेना के चेहरे पर मलिनता की छाया आ गयी। धीमें स्वर में बोली 'हाँ'।

विकास आगे बढ़ कर अजय के चित्र को कुछ देर तक बड़े ध्यान से देखता रहा। फिर उनकी किताबों की अलमारी को देखा। फिर एक-एक किताबों पर नज़र डाल कर वहाँ से दृष्टि हटा कर हेना की ओर देख कर कहा, "कौन किताब पढ़ रही थीं?"

हेना ने किताब आगे बढ़ा दी। सखाराम गनेश देवस्कर की "देश की बात" वह पुस्तक थी। विकास के चेहरे पर हल्की-सी हँसी दौड़ गयी। दो-चार पत्रों को उलट कर किताब को उसके हाथ में वापस कर के बोला, "दादा को तुम कितना चाहती थीं और अब भी चाहती हो यह मुझे अच्छी तरह से मालूम है। फिर भी लगता है कि तुम दोनों में कहीं कोई अमेल भी है।"

"ऐसी बात क्यों कह रहे हैं?

"वे यदि होते तो इतने आग्रह के साथ इस किताब को न पढ़तीं।"

"आपने इस किताब को पढ़ा है?"

विकास हँस उठा, "यही तो हम लोगों का प्रथम मार्ग है। इस मार्ग पर जो भी आया है उनमें बहुत से प्रारम्भिक दीक्षा इसी मराठी ब्राह्मण से ली है। किन्तु तुम्हारे दादा के अलमारी में उसके लिए जगह नहीं है।"

हेना बोली, "आपकी बात मैं ठीक से समझ नहीं पायी। जिस देश को दादा इतना प्रेम करते थे यह भी तो उसी के दुःख-दुर्दशा और अभाव अभियोग की कहानी है।"

"यह तो ठीक है। फिर भी दुःख देख कर किसी के हृदय में करुणा जागती है तो किसी मन में ज्वाला जाग उठती है। तुम्हारे दादा पहले किस्म के व्यक्ति थे। तभी तो उन्होंने अपने लिए सेवा पथ और कल्याण पथ को ही चुना था। हम लोग जिस रास्ते पर चले उसमें केवल हिंसा और प्रतिशोध ही था।"

चित्र की ओर एक बार देख कर वह आगे बोला, "विदेशी शासन के कठोर जाल से मुक्ति पाने की असहाय अक्षमताओं की वेदना के रहते हुए भी उनके मन की शान्ति नष्ट नहीं हुई थी। इस चित्र को ही देख कर समझा जा सकता है कि वह असुखी नहीं थे। उन्हें अपने सेवा कार्य से ही परम तृप्ति मिलती थी।"

"आप लोगों को अपने काम से तृप्ति नहीं मिलती थी?"

"हम लोगों को!" कहकर विकास हँस उठा और धीरे-धीरे उसके उज्वल नेत्रों से आग के गोले की तरह ज्वाला निकलने लगी। अस्फुट कण्ठ से वह बोला, "हमारी आँखों में शोले निकलते हैं उसे तुम नहीं समझ सकतीं हेना?"

अकस्मात् अपने आप को सम्हालते हुए सस्नेह दृष्टि से हेना की डरी हुई आँखों की ओर देखकर बोला, "इसी से मैं कह रहा था कि इस पथ पर तुम मत आना। क्षोभ, अभियोग, विद्रोह, और आक्रोश जितनी चीज़ें इस किताब में लिखी हैं वह सब हम लोगों के लिए ही रहने दो। तुम अपने पथ में स्नेह, प्रीति, और करुणा को ही रहने दो। ऐसा न होने पर हमारी तरह कौन अभागा होगा जो कहीं भी जाकर खड़ा नहीं हो सकता?"

हेना की ओर गहरी दृष्टि से देखकर फिर विकास बोला, "सुना है, मनुष्य के नेत्र उसके अन्तर का दर्पण होता है। यदि ऐसा है तो तुम्हारे सम्बन्ध में कदाचित मैंने भूल नहीं की।"

हेना ने निःशब्द खड़ी आँखों को नीची कर ली। ठीक उसी समय बाहर से सदाशिव की आवाज़ सुनाई पड़ी, "विकास को चाय

दिया ?"

"अभी जा रही हूँ बाबा ! आप कहीं जायेंगे नहीं।" कहकर अपने काम में लग गई।

विकास के सम्बन्ध में उसके मन में इस विचित्र अनुभूति को हेना स्वयं न समझ सकी। ऐसा क्यों होता है ? जिसे देखने की इच्छा होती, जिसकी बातें सुनते-सुनते घन्टों पर घंटे बीत जाते, दो दिन यदि वह न आता तो उसके आने के मार्ग में उसकी आँखें लगी रहतीं, वह जब पास आकर खड़ा होता तब पता नहीं क्यों हृदय में आतंक की छाया पड़ने लगती। उसके नेत्रों पर नज़र पड़ते ही न जाने कैसा लगता, 'न, मैं जाती हूँ।' उसके सामने से जाने के बाद भी मन शान्त न रहता। यह कैसा आश्चर्य और रहस्यमय व्यक्ति है जो एक साथ ही अपनी ओर खींचता भी है ढकेल भी देता है।

बीच-बीच में हेना के मन में सन्देह होता, 'कहीं इसी को प्रेम तो नह ी कहते !' किन्तु प्रथम यौवन के अनुकूल होने पर कुमारी हृदय के भीतर जो प्रेम का अंकुर जागता है, उसके साथ इसमें कहाँ मेल है ? कहाँ है वह पुलकमय सिहरन, वह अनास्वादित रोमांचक स्पन्दन, और वह अकारण ही आँखों पर छा जाने वाला आँसू ? पद्म कोरकों पर जैसे अरुणालोक, उसी प्रकार नारी हृदय में प्रेम का स्थान होता है। वही अदृश्य मोहन स्पर्श से एक-एक पंखुड़ियाँ खुलेगीं और धीरे-धीरे अपने गोपन सौरभ को वह बिखरेंगीं। दिन प्रति दिन उसके साथ ओस कणों का तरल स्पर्श होगा, वायु में मधुर अठखेलियाँ होगीं और भ्रमरों का मधुर गुंजम शुरू होगा। इसी तरह एक दिन शोभा, सुधा, आनन्द, वेदना के साथ उसके अन्तर माधुरी का सहस्र दल विकसित होगा।

हेना के मन में यही था प्रेम का रूप। कहानियों में पढ़े, प्रेम के

चित्र उसकी कल्पना को कभी भी हरा न सके। वह जो किताबें पढ़ली उनमें उपन्यासों की संख्या बहुत ही कम होती। किन्तु सचमुच के प्रेम का आस्वाद पाने वाली एक लड़की को गहराई के साथ जानने का उसे सुयोग मिला था। डाक्टर बाबू की लड़की शोभा थी। दोनों समवयस्क ही नहीं एक साथ ही बढ़ी भी थीं। कुछ दिन हुआ उसका विवाह हो गया। उसका बहुत दिनों पहले से ही उस लड़के से प्रेम था। पहले पहल प्रेम जब शुरू हुआ तब से ही उसके मन के प्रत्येक रंगीन मुहूर्त के साथ हेना की जानकारी थी। एक चिरपरिचित ग्राम्य नदी थी। न जाने कब से बगल के किनारे से वह बह रही थी। शान्त निस्तरंग क्षीण जल रेखा की तरह। उसने यदि सहसा एक दिन किसी दूरागत ज्वार के आह्वान पर लबालब भर कर किनारों को अपने में समेट लिया, मनुष्य के मन में जैसे विस्मय जागता है हेना भी उसी प्रकार विस्मित-सी अपनी बचपन की सखी के नव-नव रूपान्तर को देख रही थी। कभी वह उफन उठती, कभी गंभीर हो जाती, कभी चहकने लगती तो कभी सूख-सी जाती। किसी विशेष व्यक्ति को आश्रय कर के नारी हृदय का यह जो विचित्र विकास है उसे ही प्रेम कहते हैं। किन्तु उसके अपने अन्तर में ऐसा अमृत स्पर्श कहाँ! उसके जीवन में यदि वही विशेष मानव का आगमन हुआ है तो उसके हृदय के कोने-कोने में वह मोहमय मधु-संचार कहाँ है। उसे देखती है, उसके स्वर सुनती है, मन की गहराई में उसे स्मरण करती है, लज्जा में पुलक-व्यथा के उल्लास से उसका हृदय कहाँ भर उठता है? तब भी वह है, वह उसकी समस्त चेतना पर छाया हुआ है। अन्तर में या बाहर उसे भूलने का भी कोई उपाय नहीं।

कापी के इस अंश को तालुकदार ने बार-बार पढ़ा। उन्होंने अनुभव किया हेना के मन का वह गंभीर द्वंद्व और सोते-जागते उस

अस्थिर आकुलता को। उन्होंने अपने लम्बे अनुभव में मनुष्य के मन के सूक्ष्म से सूक्ष्म तन्त्रियों का भी पता लगाया था। नारी हृदय की जो अपरिसीम जटिलता संसार में प्रति दिन विस्मय की सृष्टि करता है, वह भी उनसे अज्ञात नहीं था। किन्तु इस कापी के तीन-चार पन्नों में ही कुछ रेखाओं में ही एक बालिका के विक्षुत अन्तर्लोक का जो चित्र उनके सामने उभर आया था, उसके साथ इस बहुदर्शी व्यक्ति का किसी दिन भी परिचय नहीं हुआ था। जीवन में सहसा वह ऐसी आ खड़ा हुआ जिसे ग्रहण करने को भी वह प्रस्तुत नहीं और छोड़ देने का भी कोई उपाय न था—इससे बड़ी समस्या और हो ही क्या सकती है? इस क्षण जिसे चाहती है दूसरे क्षण उसे नहीं चाहती। यह द्वंद्वात्मक बंधन और मुक्ति की कामना में अन्तर्निहित रहस्य भी महेश के सामने अस्पष्ट ही रहा। प्रेम नामक जैसे अप्रमेय वस्तु का पूर्ण सन्धान कोई भी किसी दिन न पा सका, यह भी उसका एक नया प्रकाश है कि नहीं, वह न जान सके। अतएव हेना के मन में जो प्रश्न जागा था, उनके सामने भी वह प्रश्न का प्रश्न ही रहा। केवल जो बात वह कह चुकी है और नहीं कह सकी है, उन सब को मिला कर एक सत्य उनके सामने स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ा। वही है इस—हेना के जीवन में विकास केवल आगन्तुक नहीं निकट रूप में छा गया। उसका यह आकस्मिक आगमन-प्रेमी का अभिसार नहीं, विजयी का अभिमान था। वह आया और उसने जीत लिया। किन्तु यह विजय वार्ता विजिता के सामने अज्ञात ही रह गयी।

इसी प्रसंग में तालुकदार साहेब के मन में एक बात और भी आयी। वह था हेना का और एक रूप। कितने सहज और कितने अनायास ही उसका गोपन नारी हृदय उस दिन किसी और के पकड़ में आ गया था। अग्नि तंत्री विप्लवी विकास के साथ इस निरीह, शान्त, व्यक्तित्व में कितना अन्तर था। उसमें न तो शक्ति का प्राबल्य था और न व्यक्तित्व की ही दृढ़ता थी। दोनों नेत्रों से आग बरसा कर

वाक्शैली का मोह फैला कर वह नहीं आया था। उसका कण्ठ था नीरव और आँखों में था भीरु आवेदन। फिर भी उसके सामने हेना का अन्तर प्रस्तुत था। उन दोनों में किसी ने कुछ भी अपने मुँह से नहीं कहा फिर भी वह समझ रहे थे। देवतोष को उस दिन विमुख होकर लौटना पड़ा था। किन्तु इसका आघात एक तरफा ही न था। जिसे आघात नहीं दिया गया उसे भी लगता था दुःख और भी अधिक हुआ है। डाक्टर के चले जाने पर हेना को जिस दिन पहली बार तालुकदार ने देखा था यह बात उसके मन में आयी थी।

कापी की कहानी आगे बढ़ी—

सुबह घूम कर लौटने पर कपड़ों को उतारते-उतारते सदाशिव बोले, "विकास को देख आया। आज भी बुखार है; पर पहले से कम।"

"क्या खाते हैं?" मृदु कण्ठ से हेना ने प्रश्न किया।

"यही तो मुश्किल है। दूध तो बिल्कुल पीते ही नहीं। उन्हें उसकी गन्ध अच्छी नहीं लगती। नौकर को थोड़ी बार्ली करने को दिया था। यह सब क्या उस बेटा का काम है? बिल्कुल ही मुख में न रख सका। तू एक काम कर न बेटी? थोड़ी-सी बार्ली पका कर नींबू वगैरह के साथ लड़के के हाथ भेज न दे।"

हेना ने सिर नीचा किए हुए ही अपनी भी सहमति दी और शंभू को बुलाने को कह कर बाबा के कमरे की ओर बढ़ी।

"शम्भू क्या करेगा?" सदाशिव ने पूछा।

"थोड़ी-सी बार्ली मँगानी है। घर में जो है वह पुरानी हो गयी है।"

"यह लो मैं महिम-साह की दुकान से बार्ली लेता ही आया हूँ। कहाँ रखा! देख तो, इसी कुर्ते के जेब में मालूम पड़ती है।"

शाम को खाली बर्तन लेकर विकास का नौकर आया। बोला, "वह कहते थे रोज की तरह आज भी कुछ नहीं खायगें, पर जब उन्हें बताया कि दीदीमनि ने बना कर भेजा है तो चों-चों कर के सब खा गए। कहा है कि सन्ध्या के बाद और एक गिलास मेरी बात बताकर ले आना। उन्हें बहुत अच्छा लगा।"

इसके बाद से कभी बार्ली, कभी साग, कभी थोड़ा सा मसूर की दाल का सूप हेना ही भेजती रही। फलों को भी छील-काट कर डिश में लगा कर भेज देती। यह न होने पर विकास मुँह में कुछ भी न लेता। शाम को फल के साथ एक गिलास दूध देते ही नौकर ने रोका, "बाबू दूध नहीं पीते।" हेना हँसती हुई बोली, 'नहीं पीने से काम नहीं चलेगा। कहना मैंने पीने को कहा है।"

शाम को खाली गिलास लौट आया।

कई दिनों की चिंता के बाद सुबह सदाशिव खबर लाए कि 'दो दिन से बुखार नहीं आया। कल भात देने को डाक्टर ने कहा है।' इसकी व्यवस्था भी हेना को करनी पड़ी। पुराने चावल और ताजी मागुर मछली की तलाश में सदाशिव बाहर निकले।

उस बार पूजा आश्विन के आखिर में पड़ी थी। और दिन ही कितने बाकी थे। धूप से झलमलाते आकाश में कैसा 'पूजा'-'पूजा' का गन्ध था। ऐसे समय एक दिन शाम को बड़ी तेजी के साथ बादल उठने लगे। विकास का रात का खाना दिन रहते ही भेज कर बाबा और राखाल को भी जल्दी ही हेना ने बैठा दिया। बिछौने पर लेट कर एक किताब पढ़ते-पढ़ते न जाने कब सो गयी। सहसा कोई आवाज सुन कर उसकी नींद उचट गयी। उसे लगा जैसे कोई दरवाज़े पर धक्का दे रहा हो। खोलने के लिए उठ कर भी खोल न सकी। पता नहीं कैसा उसे लग रहा था। बिछौने पर बैठे ही बैठे पूछा, "कौन?"

क्षीण कण्ठ से उत्तर मिला, "मैं।"

स्वर पहिचाना हुआ-सा था। दरवाज़ा खोलते ही चौंक उठी,

"आप ?"

"तुम तो खूब ही गयी थीं न ?" चौकठ पकड़ कर कमरे में घुसते-घुसते विकास ने कहा।

उस बात का जवाब न देकर उत्कंठित स्वर में हेना ने पूछा, "इतनी रात में यह अस्वस्थ शरीर ! कोई विपद-आपद् तो नहीं आ पड़ी ?"

"विपद से तुमने ही तो बचा लिया। तुम्हें देखने की बड़ी इच्छा हुई—इसी से चला आया।"

हेना के मुख की पेशियाँ हठात् दृढ़ हो उठीं। शुष्क कण्ठ से वह बोली, "विकास बाबू यह आपने अच्छा नहीं किया। जाइए घर लौट जाइए।"

"हूँ !" विकास जैसे चौंक-सा उठा। फिर जैसे उसका ज्ञान लौट आया, ऐसे स्वर में बोला, "हाँ, हाँ, ठीक कहती हो। मैं जा रहा हूँ।" कहते ही चलने के लिए दोनों पैरों को ज्यों ही घसीटा वैसे ही वह गिरने-गिरने को हुआ तो हेना ने कन्धे का सहारा देकर रोक लिया। साथ ही साथ बोल उठी, "यह क्या ! आपका शरीर तो बहुत गरम है। फिर बुखार चढ़ आया क्या ?"

आहिस्ते-आहिस्ते सहारे से ले जाकर तख्त पर बिछे बिछौने पर बैठा दिया।

विकास हाँफ रहा था। थोड़ा-सा सुस्ता लेने के बाद आहिस्ते-आहिस्ते बोला, "आज आया हूँ सन्ध्या बेला में। सिर में भयानक दर्द है। दो एस्पीरिन खाकर सो गया था। नींद से आँखें बंद होने लगीं। उसी समय देखा तुम मेरे पास बैठ कर सिर को हाथों से दबा रही हो। कितना ठण्डा और मधुर हाथ था। तन्द्रा टूटते मन पता नहीं कैसा छटपटाने लगा। भागा हुआ तुम्हारे पास चला आया।"

वह पूरी बात को ठहर-ठहर कर कह रहा था और भी कुछ कहना चाहता था कि हेना ने रोक कर कहा, "रहने दें, और बातें न करें।"

"किन्तु मुझे तो जाना है।" कह कर और एक बार उठने की चेष्टा की और साथ ही साथ सिर पकड़ कर बैठ गया खाट पर ही। बादल गड़गड़ाने लगे। खुले दरवाज़े के बाहर एक बार बिजली कौंध गयी। उसके प्रकाश में विकास के मुख को देखते हेना सिहर उठी। अस्फुट स्वर में बोली, "ना, ना, यह अस्वस्थ शरीर लेकर कहाँ जायँगे?" तकिए को आगे बढ़ा कर कहा, "इस पर लेट जाइए।"

"सो जाऊँ?" क्लान्त कण्ठ से विकास ने कहा, "ठीक! किन्तु फिर?"

हेना के मुख में इस प्रश्न का कोई भी उत्तर न मिला। एक बार उसने सोचा, 'बाबा को बुलाऊँ।' साथ ही साथ उसने सोचा, 'वह क्या सोचेंगे?' इसी समय जैसे सभी समस्या का समाधान कर के पानी बरसने लगा। हेना ने उठ कर धीरे-धीरे दरवाज़े को बन्द कर दिया। घर में योडिकलोन था। अलमारी पर हाथ से झलने वाला पंखा था। वह सब इकट्ठा कर के मोढ़े को खींच कर तख्त के पास बैठ गयी। विकास आँखें बन्द किए हुए अषाढ़ की तरह निस्पन्द पड़ा था। उसके बुखार से जलते हुए मस्तक पर कलोन की जल पट्टी रखने और बदलने लगी। उन भीगे कपड़ों के साथ ही उसके कोमल उँगलियों का भी स्पर्श होता। किन्तु आँख बन्द किए पड़े हुए व्यक्ति के हृदय में इससे कौन-सा स्वर जाग रहा था इसका आभास भी न मिला।

इस तरह बरसात से भरी रात कब गहरी हो गयी, कब नींद का झोंका आया और आवेशजड़ित दोनों थके हुए नेत्र बन्द होने लगे, कब विकास की तकिया के पास सिर रख कर वह सो गयी हेना को यह सब पता भी न चल सका।

इस बार भी दरवाज़ा पीटने का शब्द होने से नींद टूटी।

इसके साथ ही बाहर बहुत से लोगों का दबा हुआ कोलाहल था, पैट्रोमैक्स का प्रकाश चारों तरफ फैल रहा था। सहसा उठने में बाधा हुई। गले के चारों तरफ एक रोगी दुर्बल हाथ था। क्षण भर में ही हृदय की धड़कन बन्द सी होने लगी, सारा शरीर पत्थर होने लगा। दूसरे क्षण ही हाथ को हटा कर हेना उठ खड़ी हुई। बाहर गोलमाल क्रमशः बढ़ने लगा। किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा। जवाब देने के लिए गले से स्वर न फूट सका। दोनों पैर अचल से हो गए थे। अब ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़ा पीटा जाने लगा। विकास की नींद जैसे किसी भी चीज़ से नहीं टूटने की। उसके मुख पर झुक कर त्रस्त कण्ठ से हेना बोली, "सुन रहे हैं, जल्दी उठिए।" हड़बड़ा कर विकास उठ बैठा—"क्या हुआ?"

"पता नहीं कौन हैं दरवाज़ा तोड़ रहे हैं। क्या होगा!"

क्षण भर में ही विकास ने सोच लिया। एक बार उसने उसके भयभीत चेहरे की ओर देखा। फिर झटके से उठ खड़ा हुआ और शान्त कण्ठ से बोला, "डरने की क्या बात है हेना? मैं तो हूँ ही।" कह कर दृढ़ पैरों से आगे बढ़ कर उसने दरवाज़ा खोल दिया। ठीक सामने ही बड़े दरोगा हुसैन साहब अपने दल-बल के साथ खड़े थे। जोरों का एक निःश्वास फेंक कर वह बोल उठे, "खूब बचा लिया महाशय। नहीं तो नौकरी तो आज ले ही ली थी।" पीछे की तरफ एक बार देख कर बोले, "देखता हूँ तुम्हारा अन्दाज़ ठीक है छोटे बाबू। इनके घर के बाद यहीं सीधे आ जाने पर फिर इतनी हैरानी न होती और न पानी में इतना भीगना ही पड़ता।" छोटे बाबू के माने छोटे दरोगा, वे अपने आप ही हँसते हुए बोले, "मेरा अन्दाज़ कभी गलत नहीं होता, आपने भी तो देख लिया न? इतने दिनों से आप मेरी बातों पर विश्वास ही नहीं कर रहे थे। इस बार तो स्वयं ही देख लिया न सर? गरीब की बात यों ही हँसी में उड़ा दी जाती है।"

"जाने दो, अब चलो सब। इन कपड़ों को अभी नहीं उतार देंगे तो निमोनियाँ ही पकड़ लेगा। आप आइए विकास बाबू। मास्टर बाबू कहाँ गए ?"

छोटे दरोगा ने मुँह बिचका कर कहा, "हाँ, मास्टर बाबू को जरा बता जाइए सर, कि यह शरीफों का मुहल्ला है, यहाँ यह सब बिन्दाबनी लीला न कर के लड़की के लिए बाज़ार में एक मकान लेकर...."

'शट अप' विकास गर्ज उठा। बड़े दरोगा की तरफ देख कर बोला, "आप इस असिस्टेन्ट को अच्छी तरह से समझा दें हुस्सैन साहेब, कि अपनी स्त्री के सम्बन्ध में मैं कोई अभद्र इशारा नहीं सह सकता।"

"आपकी स्त्री !" हुस्सैन गंभीर विस्मय के स्वर में बोला, "माने हमारे पोस्ट मास्टर बाबू की यह लड़की।"

"हाँ, उसी की बात कर रहा हूँ।"

"लगता है गान्धर्व विवाह हुआ था ?" छोटा दरोगा बोल उठा।

"ओ हो, इन सब बातों में क्या रखा है !" धमकी के स्वर में हुस्सैन साहेब बोले। फिर कोई बात न कह कर आगे खिड़की की तरफ बढ़ गए।

कमरे के एक कोने में पत्थर की मूर्ति की तरह हेना खड़ी थी। उसके और भी निकट आकर विकास ने कहा, "तो अब और लज्जा करने का समय नहीं हेना ! चलो, तुम्हारे बाबा को प्रणाम कर आऊँ।"

हेना ने कोई भी उत्तर न दिया। विकास ने भी उसके लिए प्रतीक्षा न की। उसका एक हाथ अपने हाथ में पकड़ कर वह सदाशिव के कमरे की ओर आगे। बढ़ा दरवाज़ा खुला ही था। कोने की ओर रोज की तरह हरीकेन लालटेन टिमटिमा रही थी। किसी ने उसे तेज कर दिया था। उसके प्रकाश में दिखायी पड़ा कि सदाशिव बाबू बिछौने पर बैठे हैं। दोनों नेत्र खुले हुए थे—पर उससे कुछ

देख भी रहे हैं या नहीं इसका कोई लक्षण नहीं मालूम होता था। हेना का हाथ पकड़े हुए जब विकास सामने जा कर खड़ा हुआ तब भी उनकी दृष्टि उसी प्रकार से शून्य-सी थी। उन लोगों को वह देख सके यह भी नहीं मालुम हुआ। क्षण भर प्रतीक्षा करने के बाद विकास बोला, "हम आपका आशीर्वाद लेने आए हैं।"

जैसे किसी गंभीर ध्यान से सदाशिव बाबू जाग उठे हों, धीरे-धीरे बोले, "क्या कहते हो?"

विकास हेना को लेकर आगे बढ़, झुक कर उनके पैरों को छूकर बोला, "आशीर्वाद दीजिए जिससे हम सुखी हो सकें।"

सदाशिव बाबू ने उन लोगों को उठाने की कोई चेष्टा न की। पैर समेटे हुए वह जैसे बैठे थे वैसे ही बैठे रहे। पल भर के लिए एक बार हेना के वर्णहीन चेहरे की ओर देख कर बोले, "थोड़ा सोचने दो हमें विकास।"

"ठीक है," कह कर विकास हेना का हाथ छोड़ कर सीधा खड़ा हो गया। "वह सब खड़े हैं तो मैं अभी आता हूँ।"

सदाशिव की ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। विकास ने जाने के लिए पैरों को आगे बढ़ाया। दूसरे क्षण ही वह ठिठक कर बोला, "जो कुछ भी हुआ है, उसके लिए जिम्मेदारी मेरी ही है। दोष कहिए, अपराध कहिए, वह सब भी मेरा ही है। उसमें उसका कोई भी दोष नहीं।" थोड़ा ठहर कर उसने फिर कहा, "किन्तु इसी से आप दोनों को लज्जा और कलंक से बचाने के लिए मैं आपकी कन्या को ग्रहण करता हूँ। इसके अतिरिक्त कुछ और सोचें तो मेरे साथ अविचार होगा। मुझे आप स्नेह करते हैं और हेना को मैं स्नेह करता हूँ—केवल मेरा इतना ही जोर है और अधिक कुछ नहीं। आज की दुर्घटना के साथ उसका कोई भी लगाव न था। तुम्हें भी यही बता देना चाहता हूँ हेना। लगता है सुबह ही वे सब मुझे सदर चालान कर देंगे। हो सकता है जाने से पहले फिर मुलाकात भी न कर सकूँ।" कह कर

एकाध मिनट तक प्रतीक्षा की। फिर दोनों की ओर एक बार देख कर धीरे-धीरे चला गया।

बीमारी-खमारी या अन्य किसी कारण से पोस्ट मास्टर के आफिस न जा सकने पर स्थानीय स्कूल के एक शिक्षक आकर काम चला देते थे। यही बराबर का नियम था। सुबह उठ कर सदाशिव ने शम्भू से उनको बुलवा भेजा। हेना यथारीति चाय दे गयी। चुपचाप उन्होंने पी लिया। शम्भू हुक्का भर कर सामने रख गया। कुछ देर तक उन्होंने हुक्का पिया। फिर धीरे से उठ कर अपने बिछौने पर जा लेटे। हेना रसोईघर में थी। राखाल ने आकर उसे खबर दी तो वह परेशान सी हो गई, "यह असमय ही लेट क्यों गए? तबीयत तो कुछ खराब नहीं?"

"नहीं बेटी, तबीयत तो ठीक है।"

फिर कोई प्रश्न न कर के हेना जाने लगी। सदाशिव ने पुकारा और पास आकर बैठने को कहा। फिर लड़की के कन्धे पर हाथ रख कर विह्वल दृष्टि से उसके चेहरे की ओर कुछ देर तक देखते रहे, पता नहीं वह क्या कहना चाहते हैं सोच नहीं पा रही थी। कुछ देर बाद स्निग्ध कण्ठ से वह बोले, "तेरे चेहरे की ओर बेटी अब मैं देख नहीं पा रहा हूँ।"

हेना ने अपने को अभी तक बाबा से दूर ही दूर रक्खा था। उसके मन में जो तूफान चल रहा था उसे वह उनकी नज़र से बचाना चाहती थी। किन्तु बाबा के आर्तकण्ठ से एक बात सुन कर ही वह अपने को संयत न रख सकी। दोनों नेत्रों से आँसुओं की धारा निर्बाध गति से बह चली। वृद्ध ने फिर कहा, "आज यदि तेरी माँ होती तो मुझे कुछ भी करने की जरूरत नहीं थी। तेरे दादा भी होते तो मुझे तेरी कोई चिन्ता न थी। किन्तु आज मैं बिल्कुल अकेला हूँ। कोई

किनारा भी नहीं दिखायी पड़ रहा है। क्या करूँगा, कौन पथ जाऊँगा, तुझे तो बता देना ही होगा। ऐसा लगता है मैं तेरा बाप नहीं अक्षम बालक जैसा ही हो गया हूँ।"

फिर जरा ठहर कर बोले, "विकास की बात तो मैंने सुन ली, अब तू भी अपनी इच्छा मुझे बता दे। मेरे सामने लज्जा करने की जरूरत नहीं।"

उसके मन में क्या है, वह क्या समझी जो बता सके? थोड़ी देर में मन शान्त होने तक आमने-सामने बैठकर सब समझ-बूझकर जवाब देने का भी तो अवसर उसे नहीं मिला? विकास के मुख से वह अप्रत्याशित आकस्मिक उक्ति सुन कर हुस्सैन दरोगा और उनके पुलिस वालों को जितना आश्चर्य नहीं हुआ था उससे अधिक वह स्वयं चौंक गयी थी। अभी भी वही विस्मय उसकी समस्त चेतना पर छाया है, वह अन्तर की गहन दृष्टि में पहुँच ही नहीं पा रही है।

इधर उसके बाबा आकुल आग्रह से उसकी ओर देख रहे थे। उनके पीछे थीं पड़ोसियों की लाल आँखें, जिनका अपना मान-सम्मान, उनका पारिवारिक सम्मान, एवं सामाजिक प्रतिष्ठा थी। सोचते ही हेना के सभी स्नायुकेन्द्र जैसे जड़वत् होने लगे। अस्फुट स्वर में वह इतना ही कह सकी, "मैं कुछ नहीं जानती बाबा। मुझसे कुछ भी न पूछिए बाबा!"

इतना कह कर वह बाबा की छाती पर लोट गयी। सदाशिव धीरे-धीरे उसके मस्तक को सहलाने लगे।

दरवाज़े के बाहर शम्भू की आवाज़ सुनायी पड़ी कि थाने के बड़े बाबू आपसे एक बार मिलना चाहते हैं। हेना के कानों में बात पड़ते ही वह हड़बड़ा कर उठ कर पार्टीशन के उस पार चली गई। सदाशिव उठ बैठे और हुस्सैन को बुलाया। कुछ ही मिनट में वे आ गए। सदाशिव की खाट के पास ही एक चेयर खींचकर बैठ गए और बोले, "आपके आफिस में आया तो देखा यदु-मास्टर डाक खोल रहे

हैं। बाद में शम्भू से पता चला कि आप बीमार हैं। अब कैसी तबियत है ?"

सदाशिव ने तुरन्त जवाब नहीं दिया। मिट्टी की ओर कुछ देर तक देखते हुए बोले, "बीमारी क्या, आप से तो कुछ छिपा नहीं है दरोगा साहेब ! आप न आते तो अपने को थोड़ा सम्हाल लेने के बाद स्वयं ही मैं आपके पास जाता। मुझे तो कोई भी रास्ता नहीं दिखायी पड़ रहा है।"

हुस्सैन ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा, "मेरी समझ से रास्ता तो एक ही है मास्टर बाबू! और वही जिसे विकास ने दिखा ही दिया है।"

"किन्तु उनका उखड़ा हुआ जीवन है। घर-द्वार के नाम पर तो जेलखाना ही है। किसी दिन पकड़कर उन्हें झुला भी न दिया जाय कौन ठीक ? बगैर माँ की लड़की को आखिर मैं—"

स्वर रुद्ध हो गया। बात वह और पूरी न कर सके। हुस्सैन साहब भी कुछ क्षणों तक कोई बात न कह सके। लगता है उन्हें शान्त होने का समय दिया गया। फिर वह बोले, "आपकी आशंका तो बिल्कुल गलत नहीं है। फिर भी बुरा न मानेंगे सदाशिव बाबू, इस समय जो स्थिति है उसमें लड़की का भविष्य देखते हुए सबसे बड़ी चीज़ उसकी इज़्ज़त है। उसी को हाथ पकड़ा दें तभी कुछ मुँह दिखाने लायक हो सकते हैं। अगर ऐसा न करेंगे तो आपकी बिरादरी वाले लोग कैसे हैं—यह भी मेरा कम जाना नहीं है। फिर कौन लड़की का हाथ पकड़ेगा यह कहना भी कठिन है। आपको नीचा दिखाने का तोड़-जोड़ तो कभी से शुरू हो गया है।"

सदाशिव सोचने लगे।

हुस्सैन कुछ देर तक शान्त रहने के बाद फिर बोले, "फिर भी एक बात है, यह स्वदेशी वालों को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। उनमें और चाहे जो भी दोष हो फिर भी वह गलत बात कभी नहीं करते

और न कहते हैं। वे सब बहुत पक्के आदमी होते हैं। एक बार जिसका हाथ पकड़ लेंगे फिर अपनी जान देकर भी उसकी रक्षा करते हैं। कौन जाने आपकी हेना जाकर उनके जीवन को ही मोड़ दे। यही सब सोच कर तो उसका हाथ पकड़ कर वह आपके पास आये थे। अब उन हाथों से रिवाल्वर उठ सकता है इसे मैं विश्वास नहीं कर सकता।" कह कर जोरों से हँस पड़े हुस्सैन साहेब। हँसी रुकने पर दबे कण्ठ से वे बोले, "आप क्या जानते हैं कि इनटर्नमेंन्ट रूल्स ब्रेक करने पर भी मैं उस लड़के को चालान नहीं करना चाहता था। किन्तु हमारे साथी तो पीछे-पीछे रहते ही हैं। मगर मैं मामले को टाल जाऊँ तो वह ही एक चिट्ठी झाड़ देंगे। फिर नौकरी भी खतरे में पड़ जायगी। इससे सेंड अप तो करना ही होगा। फिर भी पुलिस मामला न चलावे इसकी चेष्टा मैं भी करूँगा।"

सदाशिव की आँखें और मुख उज्वल हो गया। उनके कुछ कहने से पहले ही हुस्सैन दरोगा ने कहना शुरू किया, "साहब भी अच्छा आदमी है। कोई बात कहो तो सुनता भी है और आपकी दुआ से मानता भी है। मैं यदि जाकर कहूँगा कि, 'साहेब तुम्हारे इस विकास घोष के विषदाँत टूट गए हैं और छोकरे का मन रँग गया है और अब शादी-विवाह करके संसारी हो रहा है तो होने दें हम लोग भी निश्चिन्त हो जायेंगे।' मुझे तो लगता है साहेब बात टालेंगे नहीं। अंग्रेज का बच्चा तो! खुदा ने चाहा तो एक बार छोड़ने की भी व्यवस्था हो जायगी।"

सदाशिव ने उनके हाथों को दोनों हाथों से पकड़कर कहा, "दया करके ऐसी ही मेरी मदद कीजिए दरोगा साहेब जिससे निश्चिन्त होकर मैं अपनी कन्या का हाथ उसके हाथ में दे सकूँ। भगवान आपका भला करेगा!"

हुस्सैन साहेब उठ खड़े हुए, "आप चिन्ता न करें मास्टर बाबू। मैं जितना भी कर सकूँगा, जरूर करूँगा। मैंने उसे बचपन से देखा है। आपकी लड़की जैसी कोई लड़की मुझे नहीं दिखाई पड़ी। उसकी

चाचो ता हेना पर संकट सुनकर परेशान हैं। वह सुखी हो हम सब यही चाहते हैं।"

गला साफ करके बोले, "फिर आपसे यह बताने में भी क्या बाधा है कि इधर कई दिनों से उस लड़के पर भी एक-माया मोह आ गया है महाशय! दोनों एक दूसरे को चाहेंगे भी खूब। अच्छा तो अब मैं चलूँ। कोड़ी भर लोग बैठे होंगे। आप भी उठें। आफिस जाना न बन्द करें। पड़े रहने से दुनिया भर की बेकार की चिन्ताएँ सताती हैं।"

सदाशिव बाबू उठ कर हुस्सैन के साथ दरवाजे तक आए। झिझकते हुए वह बोले, "विकास को एक बार—"

"यह कहने की जरूरत नहीं! उसको जाने से पहले एक बार मैं भेज दूँगा।"

ओ० सी० ने उनके आग्रह को रख लिया। सदर जोन के लिए तैयार होकर कुछ मिनट के लिए इस मकान में एक बार विकास आया भी। हेना रसोईघर में थी। खोजते-खोजते वह वहीं जाकर खड़ा हुआ। उसके उदास मुख की ओर देख कर बोला, "मैं अपनी बात तो केवल कह गया। तुम्हारी बात और सुन न सका। मैंने भूल तो नहीं किया, जाने से पहले इतना जान लेता तो मुझे सन्तोष होता।" दरवाजे के चौकठ पर नतमुख हेना खड़ी थी। कोई भी जवाब न दे सकी। हो सकता है जवाब देने को उसके पास कुछ था भी नहीं। अगर भूल भी हो तो उसे बताने से क्या लाभ? अच्छा-बुरा, उचित-अनुचित, इच्छा-अनिच्छा यह सब प्रश्न तो अब अलग की बात थी। हेना के सामने अब एक ही रास्ता था, अन्धेरे में नियति के हाथ में अपने को सौंप देना। उसने ऐसा ही किया था। कौन ठीक है कौन गलत इसे विचार करने का मौका न था।

विकास ने कुछ क्षणों तक प्रतीक्षा करके एक कागज़ को आगे बढ़ा दिया और बोला, "यह हमारा कलकत्ते का पता है। अभी तो कारागार जा रहा हूँ। वहाँ की मियाद शायद तीन महीने की है। फिर

भगवान मुझसे क्या कराना चाहता है, अभी तक जैसे उन्होंने स्थिर नहीं किया है। फिर भी एक दिन मैं छूटूँगा ही और तुमको पा सकूँगा इसी भरोसे पर जा रहा हूँ। यदि इस बीच तुम लोगों को कहीं और जाना हो तो इसी पते पर एक चिट्ठी भेज देना। मैं जहाँ भी रहूँगा वह मुझे मिल जायेगी। भेजोगी तो?"

हेना ने सिर हिला कर सहमति प्रकट की।

विकास ने इधर-उधर देख कर पूछा, "तुम्हारे बाबा कहाँ हैं?"

"आफिस में हैं।"

इतने ही में सदाशिव उन लोगों के पास आ खड़े हुए। विकास ने आगे बढ़ कर उनके चरणों को स्पर्श किया और बोला, "हुसैन साहेब ने मुझे सब कुछ बताया है। आप आशीर्वाद दें जिससे मैं जल्दी ही आप लोगों के पास आ सकूँ।"

सदाशिव उसे दोनों हाथों से पकड़ कर रो पड़े। फिर किसी तरह वह बोल सके, "बेटा, उसे छोड़ कर मेरा और कोई भी नहीं है। उसे कभी भी कोई दुःख न हो, इसका ही तुम ध्यान रखना।"

इतना कह कर आँखें बन्द किए हुए ही वह अपने कमरे में चले गए। विकास ने जाने के लिए पैरों को बढ़ाया। पीछे से किसी के मधुर कण्ठ के स्वर सुनाई पड़े, "ठहरिए।" ठिठक कर पीछे मुड़ते ही हेना ने आगे बढ़ कर गले में अपना आँचल बाँध कर झुकाते हुए चरणों में प्रणाम किया। विकास की दृष्टि में यही उसका प्रथम प्रणाम था। केवल प्रणाम ही नहीं, इसे उसके अन्तिम प्रश्न का वाक्यहीन उत्तर भी कहा जा सकता है।

बाहर से पहरेवाले की आवाज़ सुनायी पड़ी, "जहाज़ का टाइम हो गया बाबू।"

विकास के विरुद्ध जो अभियोग था उसे प्रमाणित करने के लिए

हेना को भी गवाही के रूप में जाना पड़ता। हुस्सैन दरोगा ने साहेब को समझाया कि इससे मामला फँस जायगा। वैसी गवाही पर भरोसा नहीं किया जा सकता। अन्त में मामला नहीं चला। एकाध महीने हिरासत में रहने के बाद विकास को अब रंगपुर जिला के किसी बद-नाम थाने में जाना पड़ा। बहुत दिन वहाँ भी नहीं रहना पड़ा। कुछ ही महीनों में सरकार ने उसे मुक्त करने की व्यवस्था कर दी। इस खबर को हुस्सैन साहेब ने सदाशिव बाबू को पहुँचा दिया। इस अप्रत्याशित सिद्धान्त के पीछे एक विधर्मी दरोगा के हृदय का दान कितना था, सरकारी नत्थीपत्र में उसका परिचय कदाचित नहीं पाया जा सकता, किन्तु उपहास एवं लांछना जर्जर दो प्राणियों के कृतज्ञ अन्तर में वह अक्षय हो गए।

कुछ दिनों में विकास की चिट्ठी भी आ गयी। हेना के पास मामूली दो-चार लाइनें लिखीं थी—कलकत्ता आ गया। सदाशय सरकार ने मुक्ति ऐसी दी है कि उसके साथ और भी एक चीज़ दान में मिली है—जिसका नाम है मलेरिया। अभी उसके कारण ही बिस्तर पर पड़ा हूँ। हालत सम्हलते ही बहादुरनगर के लिए टिकट कटाऊँगा इत्यादि।

सदाशिव कुछ दिनों से बीमार थे। उसी बीमारी में किसी तरह दफ़्तर का भी काम निपटाते। बिल्कुल निर्जीव-से हो गए थे। इस चिट्ठी को पाकर उनमें एक नए बल का संचार हुआ। हेना का विवाह ही उनका प्रथम और अन्तिम काम था। किन्तु लेने-देने में क्या करना होगा वह कुछ भी नहीं जानते थे। स्वजाति, बन्धु-बान्धव तो सभी बिल्कुल दूर ही हो गए हैं। समाज में दस लोगों को लेकर उन्हें चलना है। इतनी बदनामी के बाद उनका साथ में खड़ा होना भी उनके लिए मुसीबत थी। मित्र कहें चाहे सहायक कहें एक हुस्सैन साहेब ही थे। किन्तु वह तो मुसलमान थे। सामाजिक काम-काज में वे भला सहायता ही क्या कर सकते हैं? सदाशिव ने स्थिर किया

कि राखाल को भेज कर उसकी माँ को बुला लेंगे। अपने लोगों में बस वही एक बहन ही थीं। एक छोटे भाई भी थे पर वह अब नहीं रहे। उसकी बहू बाल-बच्चों को लेकर कलकत्ते में ही बस गयी थी। वह सब आवेंगे भी या नहीं इसमें सन्देह था। यह तो हुआ जन बल। धन बल भी कुछ विशेष न था। प्राविडेन्ड फन्ड में भी थोड़ी सी रकम थी। उसी में से थोड़ा सा अंश लेकर सदाशिव ने चीज़ों को खरीदना-रखना शुरू किया।

एक महीना कट गया। विकास अभी तक नहीं आया। चिट्ठी अगर आवेगी तो भी उनकी नज़र पड़ेगी ही। फिर भी एक दिन हेना को बुला कर पूछा, "विकास की कोई खबर मिली ?"

"नहीं तो ?"

इस बार सचमुच सदाशिव हताश हो गए। इसी बीच हुस्सैन दरोगा की भी बदली हो गयी। यह उनके स्थान पर जो दूसरा आया उसने बहादुरनगर की धरती पर पैर रखते ही प्रचार किया कि शरीफ बस्ती में भ्रष्ट लड़की को रखने से काम नहीं चलेगा। अतएव सदाशिव को अविलम्ब छुट्टी लेना होगा अन्यथा बदली करा कर चले जाना होगा। अन्यथा इन पापों को कैसे बिदा किया जाय वह अच्छी तरह से जानते हैं। अन्त में कुछ चापलूसों के सामने खिल्ली भी उड़ाते हुए कहा, "मैं हुस्सैन शेख नहीं, वरदापाल हूँ, औरत दरोगा नहीं, मर्द दरोगा हूँ।"

उस रात्रि के बाद से हेना किसी दिन भी बाहर न जाती। मोहल्ले की लड़कियाँ भी उसके पास नहीं आती थीं। केवल शोभा एक दिन आयी थी। उसके पिता को मालूम होने पर वह भी नाराज़ हुए। उसके बाद उसने फिर साहस नहीं किया। बीच-बीच में सुरमा दीदी आती थीं। परिवार का सारा बोझ उसी पर था। एक नौकरानी थी। बर्तन माँज कर वह भी चली जाती। डाक्टर की बीबी की धमकियों से उसने भी काम छोड़ दिया था। एक दिन रात में आकर चुपचाप वह भी अपनी मजबूरियाँ बता गयी थी। सदाशिव बाबू

का इतने दिनों से एक सहारा थो शम्भू, वह भी दरोगा बाबू के भय से बाहर मकान लेकर रहने लगा था। आफिस का काम निपटा कर वह चला जाता। घर में नहीं आता था। अगर कभी आता भी था वह भी लोगों की नज़र बचा कर। रोज बाज़ार-हाट का सारा काम राखाल को ही करना पड़ता।

नए दरोगा की नोटिस जब सदाशिव के कान में पड़ी तो सचमुच वह बहुत चिंतित हो गए। इस तरह के लोग मिथ्या दम्भ नहीं करते एवं इनके लिए कुछ करना भी असाध्य नहीं। इसके कई उदाहरण उन्होंने अपनी आँखों से भी देखे थे। उस दिन सुबह आफिस का काम खत्म करके जब भीतर आए तब प्रायः बारह बज चुके थे। शरीर और मन दोनों ही टूट गया था। बरामदे में आकर तम्बाकू की प्रतीक्षा में बैठ गए। शम्भू के जाने के बाद अपनी चिलम वह स्वयं भरते थे। हेना टिकिया जला कर ला देती थी। आज देखा था राखाल ने आकर चिलम को हुक्के में लगा गया। हुक्के का कश खींच कर वह बोले, "आज तेरा स्कूल नहीं है क्या ?"

"स्कूल गया नहीं मामा !"

"क्यों ?"

राखाल चुप रहा।

"खाली-खाली क्या कमाई करता है ?" विरक्तिभरे स्वर में सदाशिव बाबू ने जानना चाहा। लड़के ने फिर भी कोई उत्तर न दिया तो धमकाया। राखाल रोते-रोते बोला, "मैं उस स्कूल में नहीं पढ़ूँगा।"

"क्यों ? मास्टर ने मारा है ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

"दीदी का नाम ले-लेकर वह लोग गाली बकते हैं।" इधर-उधर देखकर दबी जबान से रोनी आवाज़ में राखाल बोला।

सदाशिव बाबू ने डरते-डरते कमरे की ओर देखा। जो आशंका थी, वही हुआ। दरवाजे के पीछे हेना का आँचल आँखों पर था। कुछ देर बाद वह स्नान करने को कहने आयी। सदाशिव बाबू उसकी बातों का जवाब न देकर बोले, "देख, वह नहीं आया और चिट्ठी नहीं भेजा तो हम लोगों को चुप बैठना ठीक नहीं है। बीमारी-मुसीबत भी तो पड़ सकती है। नहीं तो तू ही एक चिट्ठी भेज दे।"

हेना सूखी हँसी हँस कर बोली, "मुझे इतना समय नहीं बाबा!"

"ठीक है, तू न लिखेगी तो मैं लिखूँगा।"

हेना जाने लगी। फिर ठिठक कर दृढ़ कण्ठ से बोली, "नहीं।"

सदाशिव सहसा झुँझला उठे, "यह भी नहीं, वह भी नहीं तब क्या करना चाहती है, वही बता?"

हेना चौंक उठी। बाबा का ऐसा स्वर और ऐसी आँखें उसने पहले कभी भी न सुना था न देखा था। लड़की को चुप देख कर वह और भी झुँझला उठे, "तेरे लिए और कितना कलंक का बोझ उठाऊँगा, बताएगी भी? या तो तू ही विदा हो नहीं तो मुझी को विदा कर। अब मुझसे नहीं सहा जाता।" कहकर हुक्के की नली तैश में छोड़ कर तेजी के साथ अपने आफिस के कमरे में चले गए।

हेना पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी रही। अभी तक जीवन में उसने फटकार कौन कहे बाबा के मुँह से कोई बड़ी बात भी नहीं सुनी थी। तिनके जैसे नम्र और वृक्ष की तरह सहिष्णु परम वैष्णव थे सदाशिव।

बहुत दिनों बाद अकस्मात् दादा की याद आ गयी। किसी अव्यक्त यंत्रणा से उसका हृदय फटने लगा। दोनों हाथों से कलेजे को थामकर किसी तरह घसिटती हुई अपने कमरे में जाकर उसने दरवाजे को बन्द कर लिया।

कोई घंटे भर बाद बाहर निकलकर पहले राखाल को भात परोस दिया। फिर बाबा को बुलाने आफिस में गयी। एक ही बार की

पुकार में सदाशिव चुपचाप उठ कर चले आए। कुएँ पर जाकर जल्दी से नहा-धोकर दो-चार कौर बन पड़ा खाया। हेना भी अन्त में भात खाने बैठ गयी। किन्तु खाना गले के नीचे उतरना ही नहीं चाहता था। थोड़ी देर में दो-चार कौर वह भी खाकर उठ गयी। हाथ धोते समय उसके कान में आवाज़ गयी कि बाबा फुसफुसा कर राखाल से पूछ रहे थे, "क्यों रे तेरी दीदी ने खाना खाया?"

राखाल ने कहा, "हाँ खाया है।"

सारे दिन से ऐसा लगता रहा कि, 'सूरमा भी कितने दिनों से नहीं आयीं।' सन्ध्या के बाद वह और ठहर न सकी। रास्ते पर लोगों का आवागमन प्रायः बन्द हो गया था, ऐसे समय ही राखाल को बुला कर वह निकल पड़ी। दरवाज़े में पैर रखते ही सूरमा आगे आकर बैठीं और बोलीं, "अरे, आओ हेना। बड़ा अच्छा हुआ तुम आ गयीं नहीं तो मैं ही तुम्हारे पास आती।"

"कब जाती हैं आप?" कुछ कटाक्षपूर्ण स्वर में हेना ने उत्तर दिया। पता नहीं सूरमा दीदी ने क्या सोचा हो। कदाचित बात पर उन्होंने अधिक ध्यान नहीं दिया। राखाल बाहर से चिल्लाया, "तो मैं जाता हूँ दीदी, कितनी देर में आऊँगा?"

"नहीं, नहीं, जाओगे क्यों?" सूरमा ने उत्तर दिया, "बरामदे में आकर बैठ जाओ, दीदी को आज देरी तक न रोकूँगी।"

सोने के कमरे में ही हेना को उन्होंने बैठाया। साधारण कुशल प्रश्न के बाद बोलीं, "तुम्हारे बाबा जो छुट्टी लेने वाले थे, सो उसका क्या हुआ?"

"छुट्टी नहीं चाहते। लगता है आसपास कहीं दूसरी जगह बदली कराने की चेष्टा कर रहे हैं।"

"आसपास जाने से क्या लाभ? कुत्ते तो वहाँ भी धावा बोल देंगे।"

"बाबा यहाँ से हटना नहीं चाहते।"

सूरमा ने एक निःश्वास को दबा कर कहा, "जानती हूँ। किन्तु हाँ, तुम्हें एक बात बताना चाहती हूँ हेना। एक बार तो सोचा था रहने दो बताने की जरूरत नहीं। पर अब देख रही हूँ कि तुम्हें बता देना ही जरूरी है। हो सकता है सुन कर तुम्हें चोट लग सकती है। किन्तु तुम पर मुझे भरोसा है। इतने दिनों से देख रही हूँ कि आघात पाकर तुम गिरने वाली लड़की नहीं हो—फिर भी—" कह कर सूरमा दीदी रुक गयीं।

हेना ने स्थिर कण्ठ से कहा, "आप बताइए सूरमा दीदी, चोट-वोट मुझे नहीं लगती।"

सूरमा ने कहा, "आलोक आया था। उसे तुमने नहीं देखा। वह मेरा छोटा भाई है। यही स्वदेशी-टदेशी करता है।"

हेना को उस रात की बात याद हो आयी। एक बार मुँह में आया कि कह दे कि मैंने देखा है। पर बाद में वह चुप हो रही। सूरमा ने कहना शुरू किया, "उसे मैंने विकास की खोज-खबर लेने को कहा था। दोनों में परिचय नहीं फिर भी दोनों एक ही पथ के साथी हैं। खोज-खबर लेकर वह आया है कि पटना में उसने नौकरी कर ली। बीच-बीच में कलकत्ते आता है। और—"

हेना की ओर एकाग्र दृष्टि से देख कर नेत्रों को झुका कर शुष्क स्वर में बोलीं, "कुछ दिन हुए उसका विवाह हो गया है। उसी की पार्टी की लड़की थी। बहुत दिनों से दोनों में जान-पहचान थी।"

हेना को लगा जैसे घर जल रहा है। वह आँखों को बन्द कर के असह्य वेदना को छिपाने का प्रयत्न करने लगी। सूरमा सस्नेह दाहिने हाथ को उसके कंधे पर रख कर धीरे-धीरे सान्त्वना के स्वर में बोली, "लड़कियों का जीवन ही दुःख से भरा होता है। उसमें सबसे बड़ा दुःख उसके लिए उपेक्षा होती है। इसके लिए उसे साहस रखने की जरूरत सबसे अधिक है।"

अब तक हेना अपने को बहुत-कुछ सम्हाल चुकी थी। अविचल

कण्ठ से उसने कहा, "मेरे साहस में कोई कमी नहीं, सूरमा दीदी।"

और विशेष कोई बात नहीं हुई। चन्द मिनटों बाद उसने बाहर निकल कर रास्ते पर अपने बोझिल हृदय से एक निःश्वास फेंका। कुछ क्षणों तक वह अँधेरे से लदे शून्य की ओर देखती रही। जाड़े की कुहासे से भरी रात थी। सहसा उसे ऐसी ही एक रात का स्मरण हो आया। दालान के ऐसे ही अन्धकार में उसके नेत्रों पर अपने दीप्तिमय नेत्रों को डाल कर मधुर हँसी के साथ विकास ने कहा था, 'यदि मैं कवि होता तो तुम्हारे इन्हीं दोनों नेत्रों पर एक कविता लिखता।' हेना के मुँह में आया था कि वह कह दे कि, 'भाग्य से अच्छा ही हुआ, इससे मेरे दोनों नेत्र बच गए।" किन्तु वह इस बात को कह नहीं सकी थी। उससे पहले ही विकास का गम्भीर कण्ठ स्वर उसके कानों में पड़ा, 'वह जब हँसती हैं तो लगता है कि रात्रि के भीतर से शिशिर झर रहा है।'

और एक दिन सन्ध्या हुई ही थी। शुक्ल-पक्ष की एकादशी या इसके आसपास की ही कोई रात थी। विकास घर लौट रहा था। हेना खिड़की के पास चम्पई रंग की साड़ी पहने हुए खड़ी थी। जूड़े में बेले की कलियों का गुच्छा लगाए थी। सर्वाङ्ग बासन्ती ज्योत्सना में स्नात था। विकास कुछ पैर आगे बढ़ा कर ठिठक गया, फिर एक बार मुग्ध दृष्टि से देख कर बोला, "तुम्हारा यह नाम, किसने रखा था, हेना?"

"यह तो नहीं जानती। शायद दादा ने, क्यों? यह क्यों पूछ रहे हैं?"

"सब लोगों का नाम खाली नाम होता है पर तुम्हारे नाम से तुम्हारा परिचय भी मिलता है।"

"आश्चर्य!" मुग्ध कण्ठ की यह बदनामी उस दिन उसके नारी हृदय में किसी मोह का संचार न कर सका। केवल हृदय काँप-काँप सा उठा था। आज उन्हीं बातों को स्मरण करके उसके दोनों नेत्र जल-

से उठे थे, जैसे चैत्र की दोपहरी में अनावृष्टि का आकाश से अग्नि दाह निकलता है। लोग यही चाहते हैं कि थोड़ा-सा जल मिल जाय। वहीं एकांत में हेना यदि रोना रो सकती! पर रोएगी कैसे? सूरमा दीदी ने भूल समझा! यह तो वंचना का दुःख नहीं प्रवंचना का अपमान है। इससे उसके नेत्रों के जल में ज्वाला है।

हेना ने घर लौटने पर देखा बाबा का कमरा बन्द था। देर से खाना खाने के कारण रात में वह कुछ नहीं खाएँगे। इससे खाना नहीं बनाया गया था—यह उन्होंने पहले ही कह दिया था। हेना ने भी इसके लिए ज्यादा जोर नहीं दिया। रोज की तरह उनके उषः पान की व्यवस्था करके अर्थात् एक गिलास जल उनके सिरहाने तिपाई पर रख गयी थी। दरवाज़े के बाहर से ही उनके नाक बजने की आवाज़ सुनाई पड़ी। सदाशिव सो रहे थे। राखाल को कुछ खाने को देने के बाद दो-चार कौर अपने मुँह में उसने डाला। फिर अपने कमरे में जाकर एक अखबार में दो-एक सेर कपड़े लपेट कर चिट्ठी लिखने बैठी। कुछ क्षणों तक सोचती रही। लिखने के लिए कलम को हाथ में लेते ही उसके हृदय से एक गहरी निःश्वास निकली फिर जल्दी-जल्दी उसने लिख दिया—

बाबा,

मैं जा रही हूँ। कुछ कह कर जाने पर तुम जाने नहीं दोगे। तुम्हारी ओर देख कर मेरे पैर भी न उठेंगे। इसी से रात्रि के अन्धकार में ही मैं भाग रही हूँ। हमारे पड़ोसी अब इत्मीनान की साँस लेंगे। हो सकता है मन ही मन खुशी भी होंगे कि मेरे जैसी एक कुलटा लड़की का यही एक स्वाभाविक परिणाम है। वे क्या सोचेंगे इसकी हमें कोई चिन्ता नहीं है। चिन्ता केवल तुम्हारे लिए है। तुमको छोड़ने कर जाने का दुःख किसी दिन तो मुझे सहना ही था। किन्तु तुम यदि एक क्षण के लिए भी यह सोचो कि तुम पर नाराज़ होकर, या रूठ कर मैं जा रही हूँ तो दूर जाकर भी मुझे कष्ट सह्य न हो सकेगा। नहीं, बाबा मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर जा रही हूँ कि मैं गुस्से में नहीं

जा रही हूँ। जा रही हूँ केवल इसलिए कि मेरे सामने अब कोई दूसरा चारा नहीं है।

तुमको इसकी कितनी गहरी चोट लगेगी, इसे भी मुझ से अधिक कौन जानेगा? फिर भी मैं जा रही हूँ।

कहाँ जाऊँगी यह सोच कर भी मैं नहीं जा सकती। हमारे अपने लोगों का दरवाज़ा मेरे लिए बन्द हो चुका है। सुना है हमारी खोज-खबर न रखने पर भी हमारी कलंक-कहानी काकी माँ के कानों में भी पहुँच गयी है। मामा को भी मेरा परिचय मिल ही गया होगा। आज हमारे सामने केवल अन्तहीन पथ खुला हुआ है। मैंने उसी का आश्रय लिया है।

अब तुम्हें जो कहना है वह भी कहे जा रही हूँ। इसे न भूलेंगे। कि मेरा मस्तक निष्कलंक है। खैर सुबह उठते ही शम्भू को बुलवा लेंगे। पहले की तरह वह यहाँ रहेगा। तुम्हें और राखाल को खाना बना कर खिला दिया करेगा। फिर दो-चार दिनों में ही राखाल को भेज कर बुआ जी को बुलवा लेंगे। वह मुझसे प्रसन्न नहीं थीं, इसी से तुम उन्हें नहीं ला रहे थे। कदाचित चाहने पर भी वह न आतीं। किन्तु इसके लिए उन पर कोई क्षोभ न रक्खें। इसमें बुआ जी का कोई भी दोष नहीं है। इसके अलावा तुम तो जानते हो कि दादा उनको वचन भी दे आए थे। बुआ जी आकर रहें और वह तुम्हारा भार सम्हाल लें यही मेरी शेष इच्छा है।

मेरे लिए चिन्ता करके अपने शरीर को खराब न करेंगे। अथवा खोजने की भी चेष्टा न करेंगे। जब तक जहाँ भी जिस अवस्था में रहूँगी तुम्हारा आशीर्वाद मेरा मंगल करेगा इसी विश्वास को लेकर जा रही हूँ।

मेरे सब अपराधों को क्षमा करें।

तुम्हारी
हेना

पुनश्च के बाद फिर लिखा था—हैण्ड बक्स की चाभी अपनी तकिया के नीचे रखे जा रही हूँ। घर खर्च के सभी बाकी रुपए उसी में हैं। नहीं, बाबा मैं खाली हाथ नहीं जा रही हूँ। कई सालों से पूजा के समय जो मैंने तुमसे अपने खर्च के लिए पाया था उस सबको मैं इतने दिनों से बचाती रही हूँ। वह अधिक न होने पर भी मेरे लिए बहुत बड़ी पूँजी है।

फिर एक कागज़ लेकर राखाल को लिखा—राखाल, भाई, हमेशा खुश रहो। मामा को कोई कष्ट न हो। उन्हें सभी समय अपनी आँखों में रखना। उनसे पूछ कर जल्दी ही बुआ जी को बुला लाना। मेरी बातों को लेकर स्कूल के लड़कों से कोई लड़ाई-झगड़ा न करना। जो भी जैसा कहे कहने देना। मन लगा कर पढ़ाई-लिखाई करना जिससे किसी दिन आदमी बन सको। इसी आशा को लेकर दादा तुम्हें लाए थे इस बात को कभी न भूलना।

दीदी के लिए कभी मन में दुःख न लाना। —"दीदी"

अलग लिफाफों में उनको बन्द करके बाबा के कमरे के बाहर बरामदे में जो मोढ़ा था उस पर दबा कर रख दिया। सुबह उठते ही रोज सदाशिव यहीं बैठ कर तम्बाकू पीते थे। फिर एक बार दरवाज़े पर कान लगा कर उनके नियमित खर्राटों को सुना। फिर हाथ जोड़ कर प्रणाम करने के लिए खिड़की के दरवाज़े को थोड़ा सा खोला। फिर वह बाहर निकल पड़ी। चारों तरफ घोर सन्नाटा था। कोहरे के पतले आवरणों में इधर-उधर मकान खड़े थे। शरद रात्रि का सिक्त वायु कहीं से हरसिंगार के फूलों का सुगंध उड़ा लाया था। आँचल को सिर पर रख कर चादर को शरीर पर लपेटे हेना स्टेशन की ओर चल पड़ी। कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक बार पलट कर छोड़ आए घरों पर उसने एक दृष्टि डाली। जन्मभूमि न होने पर भी वहाँ उसने बहुत वर्ष बिताए थे। इसी मकान में उसकी

माँ ने अन्तिम साँस छोड़ी थी, वहीं से दादा शेष यात्रा के लिए निकले थे। आज वह भी विदा हो रही थी। कदाचित उसकी भी यही शेष यात्रा है। सहसा उसका हृदय हू-हू कर उठा। पता नहीं कहाँ से आँखों में आँसू भर आए। रास्ते पर कुछ अन्धकार-सा मालूम हुआ। आँचल से उसने अपनी आँखों को पोंछ कर बड़े रास्ते पर पैर आगे बढ़ा दिये।

कोई घंटे भर बाद ही बहादुरनगर घाट छोड़ कर स्टीमर खुलना के लिए रवाना हुआ।

सारी रात इधर-उधर की तरह-तरह की चिन्ताओं में कटी। फिर हेना की आँखों में कब तन्द्रा छा गयी वह जान न सकी। सहसा सीटी की तेज आवाज़ सुन कर उसकी आँखें खुलीं तो उसने देखा सुबह हो चुकी है। किसी एक स्टेशन पर थोड़ी देर के लिए कुछ क्षणों के लिए ठहर कर स्टीमर फिर चलने लगा। जनाने कमरे के सामने एक खाली जगह देख कर रेलिंग पकड़ कर वह जा खड़ी हुई।

पानी को चीरता हुआ स्टीमर चल रहा था। किनारे पर बड़े-बड़े पेड़ झुके हुए थे। पता नहीं किस समय राक्षसी अड़ियालखाँ के अतल गर्भ में वह समा जायेंगे। बीच-बीच में बाँस के भी वन दिखायी पड़ जाते। उनके पास ही टीन और फूँस के छोटे-छोटे झोपड़े भी दिखायी पड़ जाते। कुछ देर में ही पेड़ वगैरह की ओट में वे छिप जाते। सहसा दादा की याद आयी। यहीं कहीं दुर्दान्त नदी के किसी थपेड़ों में वह खो गए थे—उनका कोई भी चिन्ह कभी भी कोई खोज कर भी न पा सकेगा। धीरे-धीरे करके उसकी आँखों के सामने से पता नहीं कब वन श्रेणी और बीच-बीच में खड़े टूटे-फूटे झोपड़े भी गायब हो गए। इसके बाद ही उसके जीवन के कई चित्र उभरने लगे। बार-बार बाबा का क्षीण चेहरा नाच उठता। उस पर ज्योतिहीन और क्लान्त दो नेत्र दिखायी पड़े जिनमें दुःख, शोक और वेदना भरे हुए थे।

अभी उस दिन की बात है। सदाशिव बुखार में पड़े थे। आँखें बन्द किए हुए पड़े थे निर्जीव से। हेना धीरे-धीरे उनके मस्तक पर हाथ फेर रही थी और सोच रही थी कि 'यदि बाबा जल्दी अच्छे न हुए तो वह सब कैसे सम्हालेगी।' सदाशिव कुछ देर तक शांत पड़े रहने के बाद बोले थे, "क्या सोच रही है बेटी।"

"कुछ नहीं बाबा तुम सो जाओ।"

"मुझे नींद नहीं आ रही है। तू और कब तक बैठी रहेगी? अब उठ जा; थोड़ा-सा बाहर घूम आ।"

हेना ने उसका कोई जवाब न देकर निःश्वास फेंक कर कहा था 'लड़की न होकर मैं अगर लड़का होती?' सदाशिव का मुँह सहसा फीका हो उठा। भयभीत कण्ठ से वे बोले, "नहीं, बेटी तुझे लड़का होने की जरूरत नहीं। लड़का भी मुझे भगवान ने दिया ही था। लाभ ही क्या हुआ? बूढ़े बाप की ओर भी कभी उसने देखा था? घर को छोड़ कर दूसरों के लिए भागता था। दूसरों के लिए ही उसने अपना प्राण भी दे दिया। नहीं, नहीं, मुझे लड़का नहीं चाहिए। तू लड़की होकर ही मेरे पास रह।"

हेना ने हँस कर जवाब दिया था, "यही तो तुम्हारी उल्टी बात हुई बाबा! लड़की तो सभी चाहते हैं पर पास रहने में भी वह बोझ होती है और दूर जाने पर भी चिन्ता लगी रहती है। बूढ़ा बाप दिन-रात काम में जुटा रहता है। विश्राम लेने को जरा भी अवसर नहीं तब भी वह क्या काम में आ सकती है? लड़कियाँ क्या किसी दिन कह सकती हैं कि, 'बाबा, तुम अब आराम करो, तुम्हारे बोझ को अब मैं अपने कंधे पर सम्हाल लूँगी?" '

सदाशिव सिर डाले-ही-डाले प्रतिवाद के स्वर में बोले, "यह तो लड़कियों का काम नहीं। बाप का बोझा न सम्हालने पर भी उसे बहुत सा भार सम्हालना पड़ता है। वह अगर कुछ भी न करे तब भी वह हर समय मुँह ही ताकती रहती है—जरा भी तकलीफ-

आराम हुआ नहीं कि वह अपना हृदय निकाल कर रख देती है और जानने की कोशिश करती है कहाँ क्या अभाव है, क्या पीड़ा है आदि। यह कम है? संसार भले ही उसका मूल्य न समझे पर मैं तो समझता हूँ न।"

इतना कह कर हेना के हाथों को खींच कर अपने छाती पर रख लिया था। उस निःस्व असहाय व्यक्ति को अकेले में डाल कर भी उसका हृदय धड़क रहा था। उसे दुःख, अपवाद एवं लांछन के हाथों से बचाने का कोई भी मार्ग नहीं था। कौन जाने बाबा के साथ कदाचित यही अन्तिम भेंट हो। उसके नेत्रों के सामने अन्धेरा छा गया।

सुबह जब ट्रेन स्यालदा के पास आ पहुँची तो पास में बैठी एक अधिक उम्र की महिला ने पूछा, "तुम कहाँ जाओगी, बेटा?" हेना बैठी हुई बाहर की ओर देख रही थी। सहसा चौंक उठी, वह कहाँ जायगी यह तो जानती नहीं किन्तु उत्तर तो कुछ देना ही होगा। बोली, "पटलडाँगा।"

"वहाँ कौन हैं?"

"मेरी काकी माँ का मकान है।"

"तुम्हारे साथ कोई मर्द नहीं है।"

"नहीं।"

"अकेले कैसे जाओगी?"

"स्टेशन पर हमारे दादा आवेंगे।"

महिला ने फिर कोई प्रश्न नहीं किया। किन्तु उसके इस एक बात से ही हेना के मन में द्वंद उठ खड़ा हुआ। उसके दिमाग में बस एक ही प्रश्न जोरों से चक्कर लगाने लगा कि, 'वह कहाँ जावेगी?' काकी माँ के घर तो वह जा नहीं सकती। कालीघाट में मामा के घर में कौन सब रहे हैं वहाँ भी उसका जाना असम्भव है। बचपन में बस एक बार कलकत्ते आयी थी। उस समय की सभी बातें

ठीक से उसे याद भी नहीं है। चेष्टा करने पर उसके जैसी लड़की किसी आश्रम-टाश्रम में कुछ दिनों तक आश्रय पा सकती है, इसी प्रकार की एक अस्पष्ट धारणा को छोड़ कर इस संबन्ध में वह कुछ भी नहीं सोच पा रही थी। अब यह चिन्ता एक समस्या का रूप लेकर उसके सामने खड़ी थी। संभव-असंभव बहुत सी बातों को सोचते-सोचते सहसा उसे अतसी की याद आयी। दो वर्ष पहले उसके बाबा बहादुरनगर में सब-रजिस्ट्रार थे। वहीं उसका विवाह हुआ था। कलकत्ते में उसकी ससुराल थी। हेना के साथ उसका बहुत मेल था। जाते समय गले लग कर वह कह गयी थी 'कलकत्ते जाने पर मेरे यहाँ ही आना नहीं तो इस जन्म में फिर तेरा मुख नहीं देखूँगी।' ठिकाना भी बार-बार बताया था। अभी भी उसे स्मरण था २२।७ बैठकखाना रोड। स्यालदा स्टेशन के आसपास ही है—यही उसके पति ने बताया था। वह भी बड़े शर्मीले व्यक्ति थे। अतसी के पीछे खड़े किसी तरह कोशिश करके कहा था, 'यह निमंत्रण हम दोनों के तरफ से ही समझिए।' अगर उन लोगों के पास जाकर ठहरे तो कैसा रहेगा। फिर कदाचित वे ही कुछ व्यवस्था कर देंगे।

स्टेशन से बाहर निकल कर रास्ते पर आने पर हेना फिर चिन्ता में पड़ गयी। अनगिनत लोगों की भीड़ आ-जा रही थी। असंख्य गाड़ी-घोड़ों का सिलसिला था। सभी अपने-अपने धन्धे में व्यस्त थे। किसी को भी एक-दूसरे को देखने की फुर्सत नहीं। चलते-चलते दो-एक व्यक्ति ने केवल उसे देख भर लिया। कौतुहलहीन निर्वाक दृष्टि से। हेना इतने समय से जानती आ रही थी कि मनुष्य की आँखों से ओट होने के लिए निर्जनता चाहिए। आज उसने पहली बार अनुभव किया कि यह जनारण्य ही सबसे गहरा आवरण है जिसके नीचे स्वच्छन्दता के साथ छिपा रखा जा सकता है। रास्ते पर एक ओर खड़ी वह कदाचित यही सब सोच रही थी।

"कहाँ जाओगी दीदी?" यह सुनकर वह चौंक-सी उठी।

आवाज़ उसके थाने के सिपाही बलराम सिंह जैसी थी। वह भी उसे दीदी कह कर ही पुकारता था और बात भी वह ऐसी ही टूटी-फूटी बङ्गला में करता था। उसने सामने देखा तो एक बूढ़ा रिक्शावाला था। उसने चेहरे को देख कर ही यह पता लग रहा था कि सुबह से उसे अभी तक कोई सवारी नहीं मिली है। हेना बोली, "बैठकखाना जाऊँगी।"

"उठ जाओ! बोहनी का समय है। चार आना लूँगा।"

हेना उस पर बैठ गयी।

नम्बर देख-देख कर २७।७ नम्बर के मकान के दरवाज़े पर रिक्शे को रोक कर कुण्डी को खटखटाया। एक स्त्री ने उसे खोला। "किसे चाहती हैं?" हेना जवाब न देकर हँसने लगी।

"ओ माँ, तुम कहाँ से आ गयी?" कह कर उसका हाथ पकड़ कर अतसी भीतर ले गयी।

"तुम दोनों ही निमंत्रण दे आए थे, इसी से आयी।"

"हिश! थोड़ी ही देर हुआ नहीं तो उनसे भी भेंट हो जाती। अभी दस ही मिनट हुए होंगे उनको गए।"

"कहाँ गए?"

"बर्दवान! इसी तीन महीने से उनकी वहाँ बदली हो गयी है।"

"तो अब विरह ही चल रहा है।"

"विरह न खाक! कोई भी शनिवार नहीं जाता। किन्तु "हेना की माँग को देख कर अतसी बोली, "तेरा मतलब क्या है? तू क्या योगिनी ही हमेशा बनी रहेगी?"

हेना फिर हँसने लगी। अतसी ने पूछा, "किसके साथ आयी?"

"किसी के साथ नहीं, अकेली।"

"कौन है, बहू?" कहती हुई पास के कमरे में से एक प्रौढ़ा विधवा बाहर निकली। अतसी ने फुसफुसा कर कहा, "यह हमारी सास हैं," फिर जवाब दिया, "हमारी सहेली हेना।"

हेना ने आगे बढ़ कर महिला के चरणों को छूकर प्रणाम किया। उन्होंने उसके मस्तक को स्पर्श करके कहा, "आओ बेटी! कहाँ से आयी हो?"

"बहादुरनगर से।"

"ओ, तुम्हारे बाबा जहाँ थे।" अतसी से प्रश्न किया। उसने सर हिला कर 'हाँ' कहा।

"वहीं तुम्हारा मकान भी है क्या?"

"नहीं, मेरे बाबा वहाँ नौकरी करते हैं।"

"कैसी नौकरी?"

"पोस्टमास्टर हैं।"

साथ ही साथ वह कुछ गंभीर हो गई। कई मिनट तक तीक्ष्ण दृष्टि से हेना की ओर देख कर फिर पुत्र वधू को अलग बुला कर पूछा, "इसी लड़की की बात तो उस दिन तुम्हारे बाबा नहीं बता रहे थे?"

अतसी ने दबी आवाज़ से कहा, "बाबा तो स्वयं कुछ जानते नहीं। जब हम वहाँ रहते थे तो एक क्लर्क उनके साथ में काम करता था। बात-बात में पता नहीं वही क्या खाक-पत्थर उनसे कह गया था। वह आदमी भी अच्छा नहीं है। उसकी बातों पर हम लोग विश्वास नहीं करते।"

"नहीं बहू! जब बात उड़ती है तब कुछ न कुछ तो रहता ही है।"

अतसी ने उसी तरह से धीरे से फुसफुसाकर कहा, "धीरे से बोलो, नहीं तो वह सुन लेगी।"

किन्तु उनकी सास की आवाज़ और भी तेज हो गयी। वह बोलीं, "उसे रसोईघर में मत लाना, वहीं से दो-चार बातें करके बिदा कर दो। और मेरे कपड़ों को नल पर डाल आओ।" कह कर ऐसा लगा वह एक बार फिर स्नान के लिए चल दीं।

अतसी के वापस आते ही हेना उठ खड़ी हुई और बोली, "अच्छा अब चलूँ, क्यों ? तुम्हारे घरवालों को—"

अतसी ने झपट कर हाथ पकड़ कर दृढ़ स्वर में कहा, "नहीं।"

हेना ने मलीन हँसी के साथ कहा, "पागल ! छोड़ेगी, देर हो रही है।"

"नहीं छोड़ूँगी नहीं, कम-से-कम आज तो तुझे रहना ही पड़ेगा।"

"अपना दिमाग खराब न करो अतसी", गम्भीर स्वर में हेना बोली।

"नहीं, हेना, मेरा दिमाग बिल्कुल ठीक है। तू यदि सचमुच में चली गयी तो मैं समझूँगी कि हम लोगों की इतने दिनों की सब मेल-मुहब्बत बेकार थी।"

हेना सोच में पड़ गयी। सहसा पुलकित कण्ठ से अतसी बोली, "ओ भगवान, एक चीज़ तो तुझे अभी दिखाया ही नहीं"—कह कर वह जल्दी से कमरे में घुसी और लौटने पर अपनी गोद में कोई साल भर की कुन्दन जैसी एक नन्हीं-सी बच्ची को गोद में ले आयी और हेना की तरफ बढ़ाकर कहा, "कैसी हुई है बताओ तो ?" हेना कुछ भी न बोल सकी। बच्ची को छाती से चिपका कर चुपचाप रही।

सास ने और अब तेज बात नहीं की। खाना खाकर अपने कमरे में चली गयीं। फिर दोनों सखियाँ एक साथ खाने बैठीं और बात-चीत का भण्डार खुल गया।

शाम होने को आयी। हेना बरामदे में बैठी थी। अतसी नहाने-धोने के लिए नल पर गयी थी। सहसा उठान के उस तरफ के एक कमरे में न जाने कैसी किसी के कराहने की आवाज़ सुनायी दी। कोई लड़की मालूम पड़ती थी। आवाज़ धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। हेना कुछ हड़बड़ाई। फिर भी वह क्या करे कुछ समझ न पायी। इसी समय एक नौकरानी लपकती हुई गेट की तरफ बढ़ी। हेना के पूछने पर उसने बताया, "सुबह से ही पीड़ा उठी है। पहले-पहल की बात

है न। तकलीफ तो होगी ही बेटा। कहती है 'हमारा दम निकल· रहा है।' इस समय बताओ मैं क्या करूँ ? बाबू डाक्टर को बुलाने गए हैं। घर में और कोई भी नहीं है।"

"तुम कहाँ जा रही थीं ?"

"जाती कहाँ। देख रही थी कि बाबू आ रहे हैं कि नहीं।"

"चलो तो देखें।"

"तुम चलोगी ? आओ, बेटा आओ। तुम लगती हो उन लोगों की कोई हो ?"

"हाँ," चलते-चलते हेना ने कहा।

"वह भी इन्हीं के किराएदार हैं। एक कमरा लेकर पति-पत्नी रहते हैं। मैं छुट्टा काम करती हूँ। बाबू ने कहा, 'तुम ज़रा सा बैठो बतासी की माँ, मैं अभी आ रहा हूँ।' सो अभी तक लौटने का नाम नही लिया। मेरा एक ही जगह बैठने से तो काम नहीं चलेगा ?"

बहू तेज पीड़ा से छटपटा रही थी ! हेना के पास जाकर बैठते ही फटे हुए से दोनों नेत्रों को उसके मुख पर डाल कर बोली, "वह अभी तक नहीं आए ?"

"अभी आ रहे होंगे। आपको क्या तकलीफ है ?"

"दम घुट रहा है। साँस लेने में भी बहुत तकलीफ है"—और बाकी बात रुक गयी।

"रहने दीजिए, शांत रहिए। मैं अभी मालिश कर देती हूँ, अभी दर्द कम हो जायगा।"

थोड़ी सी सेवा-सुश्रुषा से बहू को बहुत आराम मिला। हेना का हाथ पकड़ कर फिर वह बोली, "कहो, हमें योंही छोड़ कर तो नही जाओगी ?"

"नहीं, नहीं आप स्वस्थ हो जाइए। आपका बच्चा देख कर ही मैं जाऊँगी।"

बहू ने सन्तोष की साँस ली, फिर बोली, "तुम्हारी· कुछ-कुछ बातें

मुझे भी मालूम हुई हैं। अतसी बड़ी अच्छी लड़की है। किन्तु बूढ़ी बड़ी कर्कशा है। तुम उनके यहाँ नही रह सकोगी, भाई।"

हेना चौंक उठी। किन्तु बात को टालने के उद्देश्य से कहा, "मैं तो उनके यहाँ रहने भी नहीं आयी। खैर हटाओ इन बातों को। आप और बातें न कीजिए।"

सहसा दबी हुई पीड़ा फिर तेज हो उठी। बहू फिर आर्त्तनाद कर उठीं। ठीक उसी समय डाक्टर भी आ गए। उनके पीछे उनके पति थे। रोगिनी की परीक्षा करके वह बोले, "इन्हें अभी किसी अस्पताल में ले चलने की जरूरत है।" अस्पताल की बात सुनते ही बहू ने रोना शुरू कर दिया। उनके पति ने उन्हें समझाया कि 'इसमें' तुमको मरने की कोई बात नही बीनू। बहुत अच्छे अस्पताल में ले चलूँगा। वहाँ तुम्हें कुछ भी कष्ट न होगा।' किन्तु विनता का एक ही उत्तर था कि 'मरना है तो यहीं मरूँगी, अस्पताल नहीं जाऊँगी।'

डाक्टर ने उनके पास बैठकर स्नेहपूर्वक पूछा, "अस्पताल जाने में आपको एतराज क्यों है? छुआछूत का विचार तो नही है?"

"नहीं! मैं वह सब नहीं मानती।"

"फिर।"

इस बात का जवाब स्वामी ने दिया। बोले, "वह चौबीसों घन्टे जो मुझे पास नही रहने देंगे।"

"अच्छा, ऐसी बात!" कह कर डाक्टर मुस्कराए, फिर बोले, "तब तो मेरे ही नर्सिंग होम में ले चलो। वहाँ आप भी रह सकते हैं—कोई दिक्कत न होगी।"

स्वामी को लगा जैसे उनके हाथ में स्वर्ग लग गया। फिर वह शुष्क मुख से बोले, "किन्तु वहाँ का भारी खर्च मेरी औकात में होगा?"

"अरे, चलो तो! खर्चे के लिए क्यों घबड़ा रहे हैं?" कह कर एक बार फटकार कर डाक्टर सेन चले गए।

विनता राजी हो गयी। किन्तु साथ में यह भी ज़िद की कि हेना भी उनके साथ जायगी। स्वामी की ओर देख कर वह बोली, "वह हमारी पूर्वजन्म की बहिन है। अचानक कहाँ से आ गयी। नहीं तो तुम आकर मुझे देख भी पाते? पता नहीं कब मर जाती।"

हेना भी विकट समस्या में पड़ी। अत्यन्त अपरिचित लड़की की इतनी खातिर देख कर वह चकित भी हुई। किन्तु वह उस भाव को गोपन रख कर बोली, "आप डर क्यों रही हैं? वहाँ तो कितनी ही अच्छी-अच्छी नर्सें होंगी। वही आपको देखेंगी। मेरी तो वहाँ कोई जरूरत भी नहीं। मैं बाद में आकर आपको और आपके बच्चे को देख आऊँगी।"

विनता के स्वामी ने भी बहुत तरह से समझाया। आखिर में झुँझलाहट के साथ कहा, "उन्हें और कितना कष्ट दोगी? अपना घरद्वार छोड़ कर तुम्हारे साथ कहाँ जायगीं। फिर उनके अविभावक भला क्यों जाने देंगे?"

विनता ने कोई भी उत्तर नहीं दिया। ऐसी अवस्था भी उसकी न थी। किन्तु हेना के हाथ को उसने नहीं छोड़ा। अत्यन्त निरुपाय होकर वे अनुनयपूर्ण स्वर में हेना की ओर देख कर बोले, "आप थोड़ी-सी दया करके हम लोगों के साथ एक बार चलिए। फिर सुविधा देख कर आपको पहुँचा दूँगा। देरी होने से उसे नहीं बचाया जा सकेगा।"

इस पर आपत्ति ही क्या चल सकती थी। सभी बातों को देख-सुन कर अतसी ने भी समर्थन किया।

उसके छत्तीस घन्टे बाद बच्चे का जन्म देकर विनता बच गयी। यमराज ने पिण्ड छोड़ दिया। पर बदले में वह एक को ले ही गए। माँ के लिए अनागत सन्तान ने अपना प्राण दे दिया। बच्चा धरती पर आया पर पृथ्वी के प्रकाश को वह नहीं देख सका। वृद्ध डाक्टर ने सांत्वना दिया—वही चिरंतन सांत्वना, 'जिसे जाना

है वह जायगा ही। उसके लिए दुःख न करो, माँ। पेड़ पर क्या सभी फल तो टिके नहीं रहते ?"'

अस्पताल की मियाद जिस दिन पूरी हुई, डाक्टर देखने के लिए आए। घर में और कोई न था। विनता ने उनके चरणों को छूकर प्रणाम किया और बोली, "आपसे मेरा एक-अनुरोध है डाक्टर बाबू।"

"कहो न, क्या बात है।"

"हेना को तो आप कई दिनों से देख ही रहे हैं। उसे एक आश्रय देना है।"

हाथ में कुछ लिए हुए हेना कमरे में घुस ही रही थी। अपना नाम कान में पड़ते ही वह ठिठक गयी। डाक्टर ने तुरन्त ही कोई जवाब नहीं दिया, ऐसा लगा मानो वह कुछ सोचने लगे। विनता ने कहा, "वह हमारी सगी बहिन तो नहीं है पर उसे आप उससे भी अधिक ही समझिए। इसे तो आपने भी अपनी आँखों से भी देखा होगा। उसने मेरे लिए जो कुछ भी किया है, बहिन क्या, माँ भी नहीं कर सकती थी। उसके कौन हैं कौन नहीं हैं यह सब तो ठीक से नहीं जानती पर इतना जरूर जानती हूँ कि उसे कहीं भी जाने की जगह नहीं है। हमारे पास बस एक ही कमरा है, वहाँ भी उसे नहीं ले जा सकती। ले भी जाऊँ तो वह नहीं जाना चाहेगी। वह किसी के गले का हार बन कर नहीं रहना चाहती। यहाँ आपके यहाँ तो बहुत तरह का काम है। उसी में उसके लिए भी कुछ व्यवस्था कर देंगे तो एक लड़की का जीवन बच जायगा।"

डाक्टर की आवाज़ सुनायी पड़ी, "इधर कई दिनों से जो देखा लड़की सचमुच में तेज है। किन्तु उसके लायक मेरे यहाँ कोई काम तो दिखायी नहीं पड़ रहा है।"

"नर्स का काम ?"

"जरूरत भर की नर्सें तो हैं हीं, फिर भी नर्सिङ्ग करने के लिए इस लाइन में कुछ पढ़ने-लिखने और ट्रेनिंग की जरूरत पड़ती है।

ऐसा न होने से काम तो चल नहीं सकता। मुझे यहाँ एक नौकरानी की जरूर आवश्यकता है। किन्तु यह काम तो उसे दिया नहीं जा सकता!"

"नहीं, नहीं, छिः! नौकरानी का काम वह क्यों करने लगी? तब तो मैं ही कह-सुन कर उसे ले जाती हूँ। पर हमें आपका ही भरोसा रहेगा।"

डाक्टर कुछ बोलना ही चाहते थे कि ठीक उसी समय हेना कमरे में आ गयी। विनता ने कहा, "तेरी उम्र बहुत बड़ी है! अभी तुम्हारी ही बात डाक्टर बाबू से कह रही थी।"

हेना बोली, "मैंने सब सुन लिया है दीदी। कान लगा कर छिप कर सुनना अच्छी बात नहीं थी फिर भी मेरी जो अवस्था है उसमें यह नहीं सोचा जा सकता।"

डाक्टर की ओर देख कर अनुनय भरे स्वर में वह बोली, "आपके यहाँ जिस नौकरानी की जरूरत है, वही काम मुझे दे दें डाक्टर बाबू। मैं उसे बहुत अच्छी तरह से निभा सकूँगी।"

"क्या बक रही है" धमकी के स्वर में विनता बोली।

"नहीं, दीदी तुम एतराज न करो। नौकरानी के माने यही न कि बर्तन माँजना, सफाई करना, बिस्तरों को लगाना-उठाना? इन सब कामों का मुझे बहुत अच्छा अभ्यास है। मकान पर तो यही सब हम लोगों को करना पड़ता है।"

डाक्टर हँस पड़े, "तुम भूल कर रही हो। यह अभ्यास और कर सकने न कर सकने की बात नहीं।"

"आप जो कहना चाहते हैं उसे मैं समझ रही हूँ।" हेना ने बात काटते हुए कहा, "मैं सब कुछ सोच कर ही अपने मन को तैयार करके आपसे कह रही हूँ। काम को काम ही समझ कर करूँगी। मान-मर्यादा की बात लेकर मैं उससे उदासीन नहीं रहूँगी और न आपको कभी कुछ कहने का मौका ही दूँगी। आप यदि मेरी सब बातें जानते

तब समझ लेते कि उसका बोझ लेकर मेरी गाड़ी नहीं चल सकती। घर छोड़ने के साथ ही साथ उन सभी बोझों को मैं कन्धे से उतार आयी हूँ।"

हेना बात को साधारण रूप में ही कहना चाहती थी पर आखिर में उसका स्वर न जाने क्यों गम्भीर हो उठा। डाक्टर और वनिता दोनों सहसा कुछ लक्ष्य कर के विस्मित दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे।

आखिर में दोनों को अपनी भी सहमति देनी पड़ी। मनोरमा नर्सिंग होम में हेना मित्र नौकरानी का काम करने लगी। इसी घर में मनोरमा सेन एक दिन स्वामी-पुत्र-कन्या के साथ रहती थीं। तीसरी सन्तान के जन्म के समय इस संसार से उन्हें विदा लेना पड़ा। धात्री विद्या में इतने बड़े दिक्पाल होने पर भी डाक्टर सेन अपनी स्त्री को बचा न सके। माँ बनते समय ऐसे ही न जाने कितनी ही लड़कियों को अपना प्राण खोना पड़ता है। किन्तु मनोरमा की मृत्यु के लिए जिम्मेदार था अस्पताल और चिकित्सा में बहुत सी त्रुटियाँ। डाक्टर सेन इस क्षोभ को कभी भी नहीं भूल पाते थे। एक पुत्र और एक कला ही उनके परिवार में थे। लड़का पढ़-लिख कर नौकरी पा कर दिल्ली चला गया। लड़की का भी विवाह कर चुके थे। मकान अब सूना हो गया था। तीसरे तल्ले पर दो कमरा अपने लिए रख कर बाकी में नर्सिंग होम खोल दिया। प्रसूति एवं नाना प्रकार के जटिल स्त्री-रोगों से पीड़ित स्त्रियाँ ही यहाँ रक्खी जाती थीं। इस छोटे प्रतिष्ठान के साथ अपनी प्रियतमा पत्नी का नाम जोड़ कर उसे अमरत्व दान करेंगे ऐसी कोई उच्चाकांक्षा उन्हें नहीं थी। यहाँ जो आवेगीं वह मनोरमा की तरह किसी उपेक्षा, अवहेलना अथवा अव्यवस्था से प्राण न दें—बस इसी बात की चिन्ता उन्हें लगी रहती थी।

जिस नौकरानी की जगह पर हेना को बहाल किया गया, यहाँ पर उसे रहने के लिए कोई व्यवस्था न थी। वह अपने घर से रोज

आती-जाती थी। किन्तु हेना का प्रथम प्रयोजन आश्रय था। दो. तल्ले पर कोने की तरफ एक छोटा सा कमरा था, वहाँ से सभी चीजों को हटा कर उसे रहने की जगह भी कर दी गयी। बर्तन माँजना, घर में झाड़ू लगाना, और ऐसे ही दूसरे काम तो दूसरी नौकरानी के जिम्मे था। रोगियों को खिलाना, पहनाना, एवं अन्य फुटकर काम-काज हेना के हाथ में था। नर्सों का काम रूटीन से बँधा था। वही उनकी 'डियुटी' थी। किन्तु रोगिनों की सभी जरूरतें तो रूटीन से चल नहीं सकता था। नर्सों की घड़ी के अनुसार सेवाएँ निर्दिष्ट थीं, पर उससे अधिक थोड़ी सी भी सेवा और परिचर्या करने पर रोगियों के लिए उसका बहुत मूल्य होता। हेना के साथ भी नर्सिंग होम के लोगों का यही योग था। यह लड़की भी जो उनकी कोई न थी, अस्पताल की थी यह बात वे प्रायः भूल जाते थे, वह कभी कुछ करने से इन्कार न करती।

सफरिंग ह्युमनिटी की बात हेना ने किसी पुस्तक में पढ़ा था। अपनी आँखों न देख कर भी दादा से सुन-सुनकर इस सम्बन्ध में उसके मन में चित्र बन गया था। मनुष्य की दुःख-दुर्दशा का जैसे कोई अन्त नहीं है उसी तरह उसकी विचित्रता भी अन्तहीन है। जरा, व्याधि, अभाव, दरिद्रता, उसके नित्य सहचर हैं। उस पर से बीच-बीच में निर्मम प्रकृति का दुर्जय रोष—आँधी, तूफान और बाढ़ और भूमिकम्प भी दिखायी पड़ता है। मनुष्य पतंगों की तरह प्राण देता है, अथवा असहाय पशु की तरह वन में या जंगल में खुले आकाश के नीचे पड़ा हुआ छटपटाता है। विधाता का दिया हुआ यह दुःख का बोझ उसे ढोना पड़ता है, उसमें नारी-पुरुष का समान अंश होता है। इस सेवा निवास में आकर हेना की आँखों के सामने दुःखी एवं आर्त मनुष्य का और एक रूप आया। यहाँ नारी अकेली है। यह सकंट उस नारी जन्म का संकट है। लड़की होकर जन्म लेते ही उसे माँ बनने की जिम्मेदारी को मान ही लेना पड़ता है। मातृत्व उसका गौरव

है, और यही मातृत्व उसका अभिशाप भी। सन्तान के जन्म लग्न के साथ ही जननी का मृत्यु योग भी छिपा रहता है। माँ बनने के लिए जो आती है उसकी एक आँख में आशा का प्रकाश और एक में मृत्यु की छाया होती है। कोई नहीं जानता कि इस प्रकाश-अन्धकार के खेल में कौन जीतेगा और कौन हारेगा। अभय का वर लेकर जो भी आकर खड़े हों, कितने ही बड़े धन्वन्तरि क्यों न हों शिशु की तरह ही अज्ञ और असहाय होते हैं। तभी तो कदाचित देखा गया कि सूतिका-गृह के द्वार पर उत्सव के दीप जलाने जाने पर जला नहीं, शुभ शंख बजाते समय ही वह रुक गया। माँ होने का स्वप्न और वेदना लेकर जो आयी, वह खाली हाथ लौट गयीं। कोई लौट न सकीं तो उनका किसी अनजाने देश का बुलावा आ गया और सूनी शैया पर अनादर के साथ मातृघाती शिशु पड़ा रह गया।

किन्तु आरोग्य निवास का यह एक ही पहलू है। इसके पास ही सफल मातृत्व का परिपूर्ण रूप भी है। वहाँ नवजात शिशु के रोने के स्वर से मृतप्राय जननी की देह में जीवन स्पन्दन लौट आता है, रक्तहीन पीले चेहरे पर यन्त्रणा की रेखा मिट जाती है। दोनों भरे नेत्रों से हेना देखती तरुणी माँ मृत्यु-यत्रंणा को भूल कर काँपते हुए दोनों हाथों को बढ़ा कर अपनी छाती की ओर सद्यःजात प्रथम सन्तान को खींच लेती। जिसका हाथ नही उठता वह क्षीण कण्ठ से लज्जा के साथ प्रश्न करतीं, 'बच्चा कैसा हुआ है?' अपनी गोद से कोमल बबुए को माँ की गोद में डाल कर उच्छ्वसित कण्ठ से हेना कहती, 'आपका बच्चा चाँद जैसा हुआ है। यह देखो न!'

बाहर के 'काल' आने पर हेना को भी बीच-बीच में डाक्टर सेन साथ में ले जाते। आवश्यकता होने पर कहीं-कहीं उसके हाथ में ही प्रसूती को खड़ी करने का भार आ पड़ता। ऐसे ही एक मकान में उसे कई दिन गुज़ारना पड़ा। वह दृश्य आज भी उसकी आँखों के सामने स्पष्ट है। बाग बाज़ार की एक बस्ती में, प्रसव करा कर डाक्टर

चले गए। उसके बाद कई घन्टे बीत गए। फटी कथरी पर प्रसूती का रक्तहीन जीर्ण देह पड़ा है। उसके घरद्वार की हालत और भी खराब थी। नवजात शिशु देखने से आदमी का बच्चा न लग कर पक्षी का छौना मौलूम होता था। उस क्षीणप्राण जीव को गोद में लेकर उसे ताल मिश्री का पानी पिलाने की चेष्टा हेना कर रही थी। हठात् रोने की आवाज कान में आते ही पीछे मुड़कर देखा तो एक प्रोसेशन ही खड़ा था। सबसे आगे जो था उसकी उम्र कोई साढ़े तीन साल की मालूम होती थी, उसके पीछे भी दो थे और उसके पीछे जो बाबा की गोद में बैठा हुआ सबसे ज्यादा रो रहा था ऐसा लगता है वह शांत ही नहीं होना चाहता। वे अपनी स्त्री के निस्पन्द देह की ओर देख कर अम्लान मुख से बोले, "किसी को भी तो सम्हाल नहीं पा रहा हूँ।" कोई भी उत्तर न मिला तो पति महोदय तेज आवाज़ में बोले, "चुप रहने से कैसे चलेगा ? इन लोगों को कौन सम्हाले? इन्हें थोड़ा-सा भात तो खिलाना ही है।"

हेना स्थान, काल, पात्र को भूल कर तेज स्वर में बोली, "आप क्या कह रहे हैं ? वह ऐसी हालत में कैसे भात खिलावेगी।" वे हँसकर बोले, "क्या करूँ, बताइए। हम लोग बड़े आदमी तो हैं नहीं जो दो-चार नौकर चाकर लगे हों। इस परिवार में...." उसकी बात समाप्त होने से पहले ही उस कंकाल के मुख से एक क्षीण स्वर निकला, "मुन्ना को वहीं बैठा कर एक थाली में भात दे दो।"

उनके चले जाने पर हेना की ओर देख कर बहू जी बोलीं, "मैं नहीं चाहती भाई। मैं एक को भी नहीं चाहती। सभी अगर एक दिन खत्म हो जाते तो मेरी ज़िन्दगी बच जाती।"

"उनका क्या दोष है !" हेना ने रुष्ठ स्वर में कहा।

"नहीं भाई, दोष उनका नहीं दोष तो विधाता का है जो अच्छा है। जो भार नहीं सम्हाल सकता उसी के मत्थे पर बोझा वह डालता जाता है। और जो सम्हाल सकता है—कुछ बुरा न मानना भाई, तुम

कुमारी कन्या हो, किन्तु तुम्हें देख कर तभी से सोच रही हूँ कि बच्चे कैसे पाले जाते हैं वह तुम्हारी जैसी ही लड़की समझ सकती है। तुम्हारी आँखें, तुम्हारा मुख, हृदय, दोनों हाथ, गरज़ तुम्हारा सभी अंग माँ बनने लायक है।" इतना कह कर एक दीर्घ निःश्वास फेंक कर वह देखती रही।

इसके कुछ दिन बाद ही हेना ने एक विचित्र स्वप्न देखा था। एक सुन्दर सी लड़की गोदी में लिए हुए वह बहादुरनगर के मकान के बरामदे में बैठी थी। उसके पीछे विकास खड़ा था। मुग्धदृष्टि से लड़की को कुछ देर तक देख कर बोला, "बच्ची का नाम रक्खा ?"

"वाह, मैं नाम क्यों रखूँगी ?" सलज्ज हँसी के साथ हेना बोल उठी।

"ठीक, मैं ही रख रहा हूँ। उसका नाम मंजरी रहा। हेना की मंजरी। कवि गुरु की लाई न।"

जब नींद खुली तो लज्जा, घृणा और अस्थिरता से जैसे अपना मुँह आप ही नहीं देख पा रही थी। दूसरे दिन भी किसी काम में उसका मन न लगा। छिः-छिः ! उसने यह कौन सा स्वप्न देखा। उन्मत्त कल्पना में भी जो बात कभी सोच न सकी थी, उसे भी क्या कभी वह स्वप्न में देख सकती है ? इस तरह की असंगत आकांक्षा बुदबुद सी किसी और क्षण भी उठी थी ? उठ कर मिट गयी हो, कौन जाने वह न जान सकी हो ? यदि यह है तो अपने सामने ही उसके अपराध की कोई सीमा न थी।

बहुत दिनों बाद बाबा की याद आते ही हृदय चंचल हो उठा। कौन जाने कैसे हैं वे ? कितने दिनों से यही इच्छा हो रही थी कि एक चिट्ठी लिख कर उनका समाचार मालूम करेगी। कागज़ और कलम लेकर भी दो-एक बार बैठी। दो-एक लाइन लिख कर फिर फाड़ दिया। नहीं, चिट्ठी लिखने का पथ उसके लिए बन्द हो चुका है। खबर मिलते ही वह भागे हुए आवेंगे। आकर देखेंगे कि उनकी

हेना आज अस्पताल की नौकरानी है। यह आघात वह सह न सकेंगे। इससे यही अच्छा है। उसका कोई भी नहीं है। स्वजन, बान्धव सभी से वह अलग—अकेली है। सहसा सूरमा दी की याद आयी। दोनों आँखें जलने लगीं। सुराही में से थोड़ा सा जल लेकर आँख-मुँह धोकर जल्दी से वह रोगियों के वार्ड में आई। काम में ही अपने को व्यस्त करके उसने उन सभी बातों को भुलाने की चेष्टा करने लगी। किन्तु मनुष्य का मन कोई स्लेट तो है नहीं जिस पर पुरानी लिखी बातें सब पोंछ कर मिटा दी जायँ और जब मन में आवे नई बातें लिख कर उसे भर दिया जाए। सारा दिन उदासीनता में कटा। शाम होते ही डाक्टर बाबू के पास जा कर छुट्टी माँगी।

"कहाँ जाओगी?" डाक्टर सेन ने प्रश्न किया।

"विनता के पास जाऊँगी, हो सका तो आज नहीं लौट सकूँगी।"

डाक्टर ने एक बार उसके चेहरे की ओर देखा। क्या देखा, कौन जाने। फिर बोले, 'अच्छा जाओ।"

विनता के ही कमरे में अतसी सास से छिपा कर आयी थी। इधर-इधर की बात के बाद बोली, "बाबा, इधर आए थे। ताऊ जी (हेना के पिता) वहाँ नहीं है। छुट्टी लेकर कलकत्ते में आ गए हैं।"

"कहाँ हैं!" हेना के मुख से व्याकुल प्रश्न निकला। अतसी कुछ बता न सकी। बता भी वह कैसे सकती थी। इस जन कोलाहल से भरे निष्ठुर शहर के अन्तहीन मार्गों के किसी कोने में कहाँ किसने आश्रय लिया और कैसे दिन काट रहा है इसकी खबर जानने का कोई उपाय भी तो उसके सामने न था। काकी माँ की याद भी आयी। हो सकता है उनके यहाँ जाने पर कुछ खबर मिल सके। उसने सोचा एक बार जाकर उन्हें देख आवे। पर दूसरे ही क्षण मन को दबा कर हेना बैठ गयी, 'नहीं यह हो नहीं सकता।'

दूसरे दिन वह सुबह नर्सिंग होम में लौट आना चाहती थी। पर विनता ने आने नहीं दिया। खिला पिला कर शाम होने से पहले

उसने बिदा कर दिया था। अपने कमरे में लौट कर जूनियर नर्स वीना आकर बोली, "कहाँ चली गयी थीं ? तीन नम्बर तुझे बुला-बुला कर हैरान हो रही है।"

तीन नम्बर का नाम सुनते ही हेना का मन उदासीन हो उठा। बोली, "क्यों ?"

"वाह, जानती है न बूझती है ? उसका आदमी जो आ रहा है। सहसा उसके आने की खबर मिलते ही उसे सजने-धजने की जरूरत है। उसकी इच्छा हुई कि तुझसे ही अपनी चोटी बँधावे। वह तो अभी तक हुआ नहीं। अपने आप ही जो कर सकी थी किया। एक बार चाय-पानी तो देना ही होगा। तुझे खोज रही थी।"

वीना जाने लगी। लौटती समय रुक कर बोली, "जानती है, पत्थर पर दूब उपजाना है। इस बार डाक्टर बाबू ने उसके आदमी को कह दिया है कि—आपरेशन से ही यह हुआ है। कुछ दिन में ही वह छोड़ दी जायगी। उसके जाने पर जान बचेगी। एक मुसीबत खतम हो। क्या कहती है ? तुझ पर ही तो वह बहुत तमतमाया करती है ?"

नर्स की आखिरी बात जैसे हेना के कानों में नहीं गयी। उसके मन में बस यही एक बात चक्कर लगा रही थी कि, 'पत्थर पर दूब उपजाना है।' इतने दिनों बाद शिवानी माँ बनेगी। उसके पुरुषोचित शरीर पर मातृत्व की श्री आवेगी। पहले दिन ही जब वह नर्सिंग होम में आयी थी तभी उसके मन में यह बात आयी थी। यह कोई महीने भर पहले की बात है। किसी काम से वह डाक्टर के चेम्बर में जा रही थी। दरवाजे पर पहुँचते ही उसके कानों में बात आयी डाक्टर बाबू किसी से कह रहे थे, 'मैं डाक्टर हूँ, बात कितनी ही अप्रिय क्यों न हो हमें तो कहना ही पड़ता है। मैंने जो देखा है तुम्हें सन्तान होने की कोई सम्भावना नहीं है। मेरी ही बात मान लो ऐसी बात भी नहीं। हो सकता है मैं भूल करता होऊँ। तुम किसी और को

भी दिखा लो।'

बात जिससे कही जा रही थी वह दरवाजे की ओट में था। हेना उसे देख न पा रही थी किन्तु उसने उत्तर सुना। शुष्क क्षीण-कण्ठ के बीच निराशा भरा स्वर था। वह बोली, "और किसे दिखाऊँ आप बतावें? सभी तो यही एक बात कहते हैं। किन्तु इसका कोई इलाज नहीं?"

डाक्टर ने तुरंत ही कोई जवाब नहीं दिया। टेबिल के ऊपर एक कागज़ काँच के नीचे पड़ा था। कुछ देर तक उन्होंने उसे ही उलटा-पलटा। फिर सिर उठा कर कहा, "एक आपरेशन करके देखा जा सकता है। किन्तु उससे आपकी समस्या हल होने की जितना आशा है उससे अधिक खतरे की भी आशंका है।"

"खतरा!" मलीन हँसी हँस कर शिवानी बोली, "मैं बड़े-से-बड़े खतरे के लिए तैयार होकर आप के पास आई हूँ डाक्टर बाबू। इस तरह ज़िन्दा रहने से अच्छा तो...." बीच में ही वह रुक गयी।

डाक्टर गंभीर दृष्टि से रोगिनी की ओर देख कर बोले, "तुम्हारे पति राजी होंगे?"

"निश्चय ही! मेरी किसी इच्छा में वह बाधा नहीं देते। फिर आप यह नहीं जानते डाक्टर बाबू कि एक बच्चे की साध उनकी मुझसे भी अधिक है।"

इसके बाद आपरेशन के बारे में दो-चार बातें हुई। तय हुआ कि सात दिन बाद अपने पति को राजी करके उनको लेकर आवेगी। शिवानी उठ गयी, ठीक उसी समय हेना कमरे में जा खड़ी हुई। डाक्टर बाबू को खाली देख कर उनसे बात करने के लिए खड़ी थी तो पास ही देखा दो तीक्ष्ण आँखें देख रही थीं जैसे उसे खा जाना चाहती हों। उदासीनता कितनी ही हो हेना के मन में आज कोई विस्मय दिखायी नहीं दिया। पर कुछ दिनों से गौर से देखने के बाद उसे लगा कि अपरिचित औरतें उसकी ओर सहज दृष्टि से नहीं

देखतीं। बहुत-सी आँखों में लोभ होता है, नहीं तो निराशा, या ईर्ष्या अथवा विद्वेष का विष ही। बहुत सोचने पर भी वह कोई कारण नहीं जान पाती थी। वह तो सुन्दर भी नहीं। तब वह क्या देखती रहतीं हैं? उसके बाद उसकी आँखों के सामने बागबाज़ार की उस रुग्णा बहू की एक बात याद आयी—कि 'तुम्हारा प्रत्येक अंग जैसे माँ बनने के लिए तैयार हैं।' कुछ दिन पहले यहीं की एक अल्पवयसी नर्स ने उसे एक किताब शरतचन्द्र की 'चरित्रहीन' पढ़ने को दी थी। इतने चरित्रों में उसे सब से अच्छा चरित्र किरणमयी का लगा था। उसी में की एक दुस्साहसिक उक्ति याद आ गयी, 'सन्तान धारण की क्षमता ही नारी का रूप है।' पढ़ते-पढ़ते उसके दोनों कान लाल हो उठे थे। शिवानी की रुक्ष दृष्टि का अनुसरण कर के उसने अपनी तरफ ज्यों ही दृष्टि फेरी, वही लज्जा रंगीन अव्यक्त अनुभूति उसके अन्तर में होने लगी।

ठीक सात दिन बाद शिवानी आयी। उसके पति बंगाल से बाहर रहते थे। वह नहीं आ सके। डाक्टर बाबू को उन्होंने लिखित अनुमति दी कि आपरेशन के सबंध में वह स्त्री के साथ एक मत हैं। उस दिन शाम होने से कुछ पहले हेना तीन नम्बर के कमरे के सामने से जा रही थी। शिवानी ने उसे पुकारा, "सुनो, तुम यहाँ क्या करती हो?"

"नौकरानी का काम!"

"नौकरानी का काम!" कह कर कपाल को कुंचित करके शिवानी ने देखा था। इतनी साधारण-सी बात में कितनी घृणा, अवज्ञा, और तिक्तता एक साथ ही जुड़ी हुई थी, हेना ने ऐसा कभी भी न देखा था। उसने पहली बार इस बात को तेजी के साथ अनुभव किया कि नौकरानी होने में कितनी वेदना और अपमान है। उसके बाद क्रमागत लांछना और रूखे व्यवहार छोड़ कर उसने इस तीन नम्बर से और कुछ भी नहीं पाया। हेना कोई जवाब नहीं देती थी, प्रतिवाद

भी नहीं करती थी। किन्तु मन ही मन वह जल-भुन कर रह जाती।

तीन दिन के भीतर ही आपरेशन हो गया। फिर धीरे-धीरे शिवानी ठीक होने लगी। अब वह संकट को पार कर चुकी थी। बात इतनी भी न थी। डाक्टर सेन ने इसे बड़ा असामान्य काम समझा था। द्विधा, सन्देह एवं आशंका के साथ उन्होंने अस्त्र धारण किया था। आज वह भी खुश थे। उनकी परीक्षा सफल रही। शिवानी की मनोकामना भी पूरी हुई थी। खबर मिलते ही परदेश से पति भी दौड़े हुए आए थे। हो सका तो साल भी पूरा न होगा कि उनकी गोद में बच्चा आवेगा। सहसा हेना को भी उस असंभव स्वप्न की याद आ गयी। सारे शरीर में काँटा-सा चुभने लगा। फिर अन्तर के किसी कोने से एक गंभीर दीर्घ निःश्वास निकल पड़ी।

तीन नम्बर से फिर तगादा आया कि चाय चाहिए। एक कप नहीं दो कप। शिवानी अकेली नही, दोनों थे। इतने क्षणों में निश्चय ही हँसी और उल्लास से उसका पत्थर जैसा कठोर मुख भर उठा था। पास ही पास बैठ कर वह और उसके पति चाय पीयेंगे। फिर वह चली जायगी, जैसे बहुत-सी औरतें चली गयी हैं। वही केवल पड़ी रहेगी, जो नई आवेगी उसके लिए चाय की व्यवस्था करने के लिए। तेज कठोर कण्ठ से आवाज़ आयी, "ओ, नौकरानी!" शिवानी चिला रही थी। और सभी उसका नाम लेकर पुकारती थीं। किन्तु शिवानी उसे 'नौकरानी' ही पुकारती थी। बिल्कुल अनिच्छा से वह धीरे-धीरे रसोईघर की तरफ बढ़ी।

दोनों हाथ में चायँ के प्यालों को लेकर वह तीन नम्बर के कमरे के सामने आकर खड़ी हुई तो उसके कानों में कोई परिचित स्वर सुनाई पड़ा। वह ठिठककर वहीं खड़ी हो गयी। कुछ मृदुल कण्ठ से किन्तु विपुल वेग से मानो उसके सीने पर आघात-सा कर रहा था। दरवाजे का परदा हवा में उड़ने पर हेना सिहर सी उठी। यह क्या! यह तो उसके ही तरह हैं। नहीं, नहीं, यही तो वह है। वही

दी आग जैसे नेत्र, जो तेजी के साथ आकर्षित करते हैं, न्याय-अन्याय और भविष्य की बातें जो सोचने नहीं देते। हेना के दोनों पैर जैसे मिट्टी में धँस गए। निकालने की उसमें शक्ति नहीं रही। ठीक सामने खाट की पाटियों पर वह बैठे थे। शिवानी बगल में थी। धीरे-धीरे वह एक दूसरे से सट गए थे। उसने अपना मस्तक उसके सीने पर डाल दिया और उसका सारा शरीर प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध हो गया। यह वही हाथ थे जो एक दिन सारी रात उसके गले में पड़े थे। वह उत्तप्त गहरा स्पर्श विद्युत शिखा की तरह हेना के प्रत्येक रक्त कणों में फिर आया। हृदय में दावानल जलने लगा। दोनों नेत्रों से जैसे वह निकला पड़ रहा था। सिर चक्कर खाने लगा। कम्पित हाथों से चाय का प्याला छूट गया।

कमरे के भीतर से शिवानी का कर्कश स्वर गरज उठा, "कौन ?" हेना ने कोई जवाब नहीं दिया। वह नीचे बैठ कर प्याले के टूटे हुए टुकड़ों को बटोरने लगी। शिवानी बाहर आयी और गरजती हुई बोली, "कप को फोड़ दिया न ? तुझे आजकल हुआ क्या है बोल। तेरी दोनों आँखे कहाँ रहती हैं ?" कह कर तेजी के साथ कमरे में घुस गयी। हेना के कानों में गभींर कण्ठ के मृदु प्रश्न सुनाई पड़ा—"कौन है वह ?"

"वही नौकरानी, और कौन !"

"ओ हो, उसका दोष भी क्या," कह कर वह हँसता हुआ बोला। "हम लोगों के काण्ड को देख कर उसका भी सिर चक्कर खा गया होगा।"

"ठीक कह रहे हो ! वह सब कुछ कर सकती है। निश्चय ही उसने छिपे-छिपे देखा होगा।" कह कर शिवानी फिर बाहर आयी और निकट आकर बोली, "यहाँ खड़ी होकर क्या कर रही थी ?" हेना ने कोई जवाब नहीं दिया। शिवानी के क्रोध का पारा और चढ़ गया। आगे बढ़ कर उसके कन्धों को झकझोर कर बोली, "क्या देख रही

थी ! हम पति-पत्नी कमरे में थे। लज्जा भी नहीं आती कि देखती रही। बेहाया कहीं की।"

"पति-पत्नी !" तेजी से झकझोरने से हेना काँख उठी और उसकी पूरी चेतना काँप उठी। एक सूखी विषाक्त हँसी उसके ओठों पर खेल गयी—"पति-पत्नी !"

टूटे हुए प्यालों के टुकड़ों को फेंक कर हेना अपने छोटे कमरे में लौट आयी। दोनों नेत्रों से अभी तक आग बरस रहे थे। उन्नत सीना धौकनी जैसा चल रहा था। दुःख नहीं, व्यथा भी नहीं •दुःसह प्रतिहिंसा की प्रताड़ना से वह काँप रही थी। 'पति-पत्नी।' दोनों ओंठ फिर सिकुड़ गए-उसके भीतर से एक विकृत स्वर निकल आया—"पति पत्नी ! तुम्हारे पति-पत्नी के इस सुखी घर को तोड़ दूँगी, मैं तुम्हारी मनोकामनाओं के संसार को मिट्टी में मिला दूँगी। नहीं, हर्गिज़ नहीं; मैंने जो नहीं पाया, तुमको भी मैं नहीं पाने दूँगी शिवानी !"

किन्तु वह क्या कर सकती है ? उन लोगों को वंचित करने की, और उनके इस सम्मिलित जीवन के सुख-ऐश्वर्य को ध्वंस कर देने के लिए उसके हाथ में अस्त्र ही क्या है ? है क्यों नहीं ? दृढ़ कण्ठ में अपने प्रश्न का उत्तर हेना ने दिया। हमारे ही हाथ में है उनका मृत्यु-बाण। एक बार केवल उसके सामने जाकर मस्तक ऊँचा करके बोलूँगी—'इतने दिनों से जिसे 'नौकरानी' कह कह घृणा कर रही थीं, पद-पद-पर अपमानित किया, उसकी ओर एक बार ठीक से देख तो शिवानी। अपने प्रेमी पति से एक बार पूछ लेना कि वह 'नौकरानी' कौन है। उसके सामने उसका परिचय क्या था। सुनो शिवानी, विवाह की रात में जिस हाथ की माला पाकर तुम धन्य हुई थीं वह केवल नौकरानी के गले की सूखी माला थी।'

निष्ठुर उल्लास से मन ही मन हेना हँस उठी। दूसरे ही क्षण फिर सन्देह और आशंका से सकुंचित हो गयी। विकास यदि सब अस्वीकार करे तो ? यदि वह कहे कि तुम कौन हो ? मैं तुम्हें नहीं

पहचानता, कभी भी तुमको नहीं देखा। तुम जो कह रही हो वह सब झूठ है, सब पागल का प्रलाप है। तब ? उसका क्या प्रमाण है ? कौन विश्वास करेगा एक मामूली नौकरानी की बात को ? सभी हँसी उड़ावेंगे। बोलेंगे 'छिः-छिः हेना कितनी निर्लज्ज है।' हो सकता है मिथ्या अभियोग के अपराध में डाक्टर बाबू भी भगा दें। किन्तु इतने से ही मुँह बन्द कर के हेना हार मान जाए, और उन लोगों की जीत हो ? वे हाथ पकड़ कर चले जावेंगे और वह दरवाजे के पास ही खड़ी रहेगी। हाथ फैलाकर उन लोगों से भिक्षा माँगेगी, या उपहास ! वह उस उपहास को खत्म करने की कोई भी चेष्टा न करेगी ?

बन्द दरवाजे की कुण्डी खड़की। उसके खुलते ही हेना ठिठक कर खड़ी हो गयी। हो सकता है शिवानी फिर पुकारे। कोई नया हुक्म भेजा हो। नहीं, वह नहीं खुलेगा। किसी तरह नहीं, किसी उपाय से नहीं। बाहर से कम्पाउन्डर विपिन बाबू की आवाज़ सुनायी पड़ी। निश्चय ही कोई जरूरी काम होगा। दरवाज़ा खुलते ही एक कोटो को आगे बढ़ा कर विपिन बोला, "डाक्टर बाबू बाहर जा रहे हैं। अरजेन्ट काल है। ऊपर जाने का समय नहीं। इसे तुम रख देने के लिए कहा है। सावधानी से रखना। मैं भी उनके साथ जा रहा हूँ।" कह कर लपकता हुआ कम्पाउन्डर चला गया। दरवाज़ा बन्द कर के हेना ने अपने हाथ की चीज़ को देखा। शाम के वक्त डाक्टर सेन थोड़ी सी अफीम खाते थे। यही उनका कोटो था। धीरे-धीरे उसने उसे खोल डाला। काली-काली बहुत-सी गोलियाँ थीं। विष ! उसके गले से न जाने कैसी एक उखड़ी सी आवाज़ निकली। तीव्र दृष्टि से वह कुछ देर तक देखती रही। धीरे-धीरे उसकी दोनों आँखें चमक उठीं। यही तो वह महास्त्र है। इतनी देर से जो देख रही है, यही वह मृत्यु-बाण है। एकान्त मन की कामना को भगवान ने जैसे सुन लिया। यह अफीम नहीं वरन उनका प्रत्यादेश है।

किवाड़ों पर फिर थपथपाहट सुनायी पड़ी। अब किसने पुकारा !

फोटो को सीने में हेना ने जल्दी से छिपा लिया। दरवाज़ा खुलते ही कमरे में वीना घुस आयी। उसका मुख देख कर वह चौंक सी गयी, "यह क्या? आँखें धँस सी क्यों गयीं? कुछ तबीयत खराब है क्या?"

"नहीं, नहीं तबीयत क्यों खराब होगी?" म्लान हँसी के साथ हेना ने जवाब दिया।

"बहुत गरम हो रही हैं। सावधान रहना! हाँ, तीन नम्बर फिर पुकारेंगी। कप तोड़ दिया है, चाय फिर देना होगा न?"

बाहर निकलते-निकलते ठिठक कर बोली, "एक कप देना! वे चले गए हैं। कल आकर ले जावेंगे। देखा वे खुशी से झूम रहे थे।"

पहले तल्ले के रसोईघर के बरामदे में चाय तैयार करने का सामान था। टेबिल के पास खड़ी चीनी मिलाते-मिलाते हेना ने एक बार चारों तरफ देखा। कोई न था। सीने में से फोटो को बाहर करके खोलते समय उसके दोनों हाथ काँप उठे। और एक बार चेष्टा किया कि बरामदे की दूसरी तरफ से किसी के पैरों की आहट मिली। साथ-ही-साथ उसने फिर आँचल में उसे छिपा लिया। अब देरी करने से काम नहीं चलेगा। फोटो बाँएँ हाथ की मुट्ठी में थी और दाहिने हाथ में चाय का प्याला लेकर सीढ़ी पर चढ़ कर दोतल्ले में जाने लगी। तीन नम्बर के कमरे में घुसते ही देखा शिवानी नहीं थी। पास में ही बाथरूम था। वहाँ पानी गिरने की आवाज़ आ रही थी। कप को नीचे रखते ही पीछे से वीना भीतर घुसी। हाथ में मेजर गिलास था। हेना ने इशारे में बाथरूम को दिखा दिया। गिलास को टेबिल पर रख कर मुँह में एक किताब दबा कर वीना बोली, "दवा खा लेने को कह देना। यह क्या! किसकी तस्वीर है। ओहो, युगल मूर्ति! लगता है दोनों बाहर निकालकर उसे देख रहे थे! ओ मा! यह किस तरह खड़े होने का ढंग है! देख कितनी असभ्य है।"

तसवीर को उठा कर हेना की आँखों के सामने किया। फिर रख

कर वह हँसती-हँसती चली गयी। पल भर में नज़र पड़ते ही हेना का विष जर्जर अन्तर में दावानल सुलग उठा। सहसा उसे ऐसा लगा कि उसके आँखों के सामने पृथ्वी का सभी प्रकाश मिट गया है, विधाता की सभी सृष्टि समाप्त हो चुकी है। चारों तरफ केवल गहरा अन्धकार था और उसके बीच में ही विद्रुप की तरह यह असह्य चित्र नाच रहा है। एक सुखी दम्पत्ति का प्रेमपूर्ण आलोक चित्र। सामने की तरफ शिवानी खड़ी है और उसके कंधे पर चिबुक रख कर विकास हँस रहा है। क्षण भर में ही न जाने कैसी प्रतिहिंसा उसकी समस्त चेतना पर छाने लगी। धमनियों में बहती रक्त धारा खौल सा उठा।

उसके बाद क्या हुआ उसे वह आज भी स्मरण नहीं कर पाती। केवल इतना ही याद है कि यंत्रचालित छाया की तरह, अफीम की कोटो को खोल कर उसने न जाने कब फेंक दिया और दो गोलियाँ निकाल कर मेजर गिलास में डाल दिया। ठीक उसी समय खट् शब्द ध्वनि के साथ बाथरूम का दरवाज़ा खुला और उसके साथ ही उसे इतना भय लगा कि जैसे वह दैत्य की तरह आगे बढ़ कर उसे पकड़ना चाहती है। उसका अन्तर चिल्ला उठा 'भागो!' पल भर में ही वह वहाँ से भाग कर अपने बिछौने पर जाकर पड़ गयी। उसके बाद उसे किसी भी बात का होश न रहा। वह कब तक शिला जैसी पड़ी रही नहीं जानती। जब उसे ज्ञान हुआ तो चारों तरफ अन्धेरा हो चुका था। वार्ड की ओर से रोगियों की कोई आहट नहीं मिल रही थी। सिर उठाते ही उसे लगा कि सारा घर घूम रहा है। प्यास से कण्ठ सूखा जा रहा था। उठ कर वह पानी भी पीले इतनी भी शक्ति उसमें नहीं रही। समस्त शरीर अवसाद से भरा हुआ था।

और कुछ क्षणों तक निर्जीव-सी पड़ी रहने के बाद आहिस्ते-आहिस्ते उठ कर सुराही के पास टहलती हुई सुराही के पास गयी तो देखा उसके पास ही उसका रात का खाना ढका हुआ है। लगता है ठाकुर ने उसे सोता देख कर पुकारा नहीं और उसका खाना ऐसे ही

पड़ा रहा। दो गिलास पानी पीकर दीवार पकड़ कर हेना फिर बिछौने पर लौट आयी। गहरी थकावट से उसकी आँखों की पलकें ढँकने लगीं। इसे ठीक से नींद भी नहीं कह सकते, एक प्रकार से आवेशपूर्ण कठोरता से सभी स्नायु जाल जड़वत् से हो गए।

सुबह होने पर वह आच्छन्न भाव कुछ तरल होने लगा। हेना के कानों में कुछ गोलमाल की भनक पहुँची। जैसे लोग दौड़-धूपकर रहे थे। कई लोग आपस में मिल कर कानाफूसी कर रहे थे। सहसा उसे पुकारता हुआ कम्पाउन्डर भागा हुआ आया। कमरे में घुसते ही वह चिल्ला उठा, "अफीम की कोटो कहाँ फेंका?"

हेना के हृदय की धड़कन एक पल के लिए जैसे बन्द सी गयी। आँखों से न देखते हुए भी वह समझ गयी कि उसका चेहरा तमतमा कर लाल हो गया है। सफेद से सूखे दोनों ओंठ एक बार हिले पर एक क्षीण स्वर भी न सुना जा सका।

"क्यों बताती क्यों नहीं?" विपिन उबल पड़ा, "डाक्टर बाबू ने तुमको बुलाया है। जल्दी चलो।"

हेना ने उठने की चेष्टा की पर सिर उठा न सकी। रग-रग जैसे टूटा जा रहा था। सारे शरीर में पीड़ा हो रही थी। इतनी देर तक विपिन जैसे उसकी तरफ देखता रहा। थोड़ा-सा आगे बढ़ कर बोला, "क्या तबीयत ठीक नहीं है? पड़ी रहो हो उठने की जरूरत नहीं। सोयी रहो। आखिर में मेरे ही हाथों में हथकड़ी पड़ेगी।" कह कर वह उसी तेजी के साथ बाहर निकल गया।

कुछ मिनटों के बाद ही आँधी की तरह वीना कमरे में घुसी। दबी आवाज़ में वह बोली, "अरे, तू अभी तक उठी नहीं। उधर सर्वनाश हो गया। शिवानी ने आत्महत्या कर लिया है। डाक्टर बाबू की अफीम की कोटो उसके टेबिल के नीचे पायी गयी है।"

'आत्महत्या!' हेना को लगा जैसे उसकी छाती पर से कोई भारी पत्थर हट गया हो। हृदय की धड़कन मालूम होने लगी और

चेहरा तमतमा उठा। उसकी ओर दृष्टि पड़ते ही वीना सिहर कर पास में ही बैठ गयी और सिर पर हाथ रख कर बोली, "ओ माँ, बुखार कब से चढ़ा ? कुछ बताती क्यों नहीं।"

पैरों के पास जो चादर पड़ा था उसी को खोल कर उसे गले तक ओढ़ा कर कहा, "सोयी रह, मैं डाक्टर बाबू को बुला लाती हूँ।"

"नहीं, नहीं," डरे हुए कण्ठ से हेना जैसे चिल्ला पड़ी। बाद में धीरे-धीरे उसने कहा, "डाक्टर बाबू को बुलाने की जरूरत नहीं, मुझे कुछ भी नहीं हुआ है।"

वीना हँस पड़ी, "पागल, तू क्यों डर रही है ? तूने तो विष दिया नहीं ?"

न जाने क्यों हेना एक बार चौंक सी उठी।

कुछ देर बाद डाक्टर सेन आये। दोनों गाल जैसे लटके जा रहे थे। चेहरा तमतमाया सा था। आँखों के कोने में कालिमा थी। मौन ही उसके हाथों को लेकर नाड़ी देखा। फिर धीरे-धीरे उसे रख कर बोले, "दरवाज़ा बन्द कर के चुपचाप पड़ी रहो, वीना को कह देता हूँ कि वह सिर को तर करती रहेगी।"

जाने के लिए दो कदम बढ़ाते ही डाक्टर पलट कर ठिठके और एक क्षण तक कुछ सोच कर बोले, "अफीम कोटो को कहाँ रक्खा था ?"

"हमारे हाथ में ही था।"

"फिर।"

हेना कोई जवाब न दे सकी। गला रुँध सी गया।

"शिवानी के कमरे में क्यों गयी थी ?"

"चाय देने ?"

डाक्टर ने और कोई प्रश्न नहीं किया। चिन्तान्वित चेहरे से वह धीरे-धीरे बाहर चले गए।

हेना ने भी उठ कर सुराही से कई मग पानी भर कर अपने माथे

को तर किया। इससे उसे बहुत आराम मिला। इसी के साथ ही. साथ सभी घटनाएँ एक-एक कर के साफ हो गयीं। उसके मोहाविष्ठ मस्तिष्क में जो मूढ़ भय इतनी देर से उसकी चेतना पर छाया था वह भी जैसे साफ हो गया। बिछौने पर पड़े रहना अब उसके लिए असह्य सा हो गया। किसी दुर्दम प्रेरणा से समस्त जड़ता को छोड़ कर सीधी खड़ी हो गयी। कमरे में ही अस्थिरता के साथ कुछ देर टहलती रही। फिर रोगियों के वार्ड की ओर सहसा निकल पड़ी।

तीन नम्बर के सामने जाते ही वही गम्भीर स्वर सुनायी पड़ा—स्पष्ट और दृढ़ स्वर! उसमें न तो कंपन था और न उत्तेजना थी—"मैं आपकी बात को विश्वास नहीं कर सकता डाक्टर सेन। मेरी स्त्री ने आत्महत्या नहीं किया, वह कर ही नहीं सकती। जिस कारण से भी हो, किसी ने विष देकर उसे मारा है।"

हेना का हृदय धक्-धक् करने लगा। दोनों पैर अचल से हो गए। वहाँ खड़ी-खड़ी डाक्टर सेन का उसने प्रतिवाद सुना, "यह आप क्या कह रहे हैं, विकास बाबू! हमारे यहाँ ऐसा कौन हो सकता है जो एक अस्वस्थ महिला को बगैर किसी दोष के खून कर देगा? हमारी एक नौकरानी भूल से हमारे अफीम के कोटा को उसके कमरे में भूल गयी थी। उन्होंने निश्चय ही उसमें से कुछ गोलियाँ खाली होंगी।"

न जाने क्यों हेना के मन में क्या आया और प्रचण्ड वेग के साथ वह आगे बढ़ी और कमरे के भीतर पैर रख कर बोली, "नहीं, मैंने ही दो गोलियाँ उसकी दवाई में मिली दी थी।"

विकास दूसरी तरफ मुँह किए बैठा था। सहसा जैसे बिजली का झटका लगने से वह उठ खड़ा हुआ। मुख से केवल एक शब्द निकल पड़ा, "तुम!"

"हाँ, मैं! मैंने ही खून किया है आपकी-आपकी स्त्री का। कारण भी जानना चाहते हैं? तो सुन लें। कारण-कारण।" और कुछ

बोलने से पहले ही वह दो कदम बढ़ा कर। शून्य हाथ बढ़ा कर जैसे उसने कुछ पकड़ा। डाक्टर कमरे में दूसरी तरफ थे। वे चिल्ला उठे। किन्तु किसी के आगे बढ़ते ही शिवानी की सूनी खाट पर उसका संज्ञाहीन शरीर लुढ़क गया।

डाक्टर सेन आखिर तक लड़े। खून के अभियोग से हेना को बचाने के लिए संभव-असंभव सभी उपायों को किया। पुलिस के सामने उन्होंने अपना बयान दिया था, "आज सुबह ही उसकी परीक्षा की थी तो उसमें ब्रेन फीवर का लक्षण दिखायी पड़ा। यह जो कुछ भी कह रही है वह विकार का ही प्रलाप है। उसकी बातों को गुरुत्व न दें।"

पुलिस ने जब उनकी बात न मानी, तब छोटी अदालत में हलफ लेकर उन्होंने कहा था, "शिवानी का वैवाहिक-जीवन सुखद नहीं था। उसके अतिरिक्त वन्ध्या होने के कारण उसे अपने पर बहुत असंतोष था। उसकी मनोदशा ऐसी थी और मुज़रिम ने भूल से अफीम का कोटो भूल से उसके कमरे में फेंक आयी थी। इसके लिए मैंने उसे बहुत फटकारा था और निकाल देने की धमकी भी दी थी। दुनिया में उसका अपना कोई भी नहीं है, मुझी को वह अपना पिता तुल्य मानती है। उसी रूप में वह मुझे स्नेह करती है और मुझ पर श्रद्धा रखती है। हमारे इस कठोर व्यवहार से इसके मन पर जो भीषण आघात लगा है उसी से इसने खून का अपराध अपने ऊपर ले लिया है। इसे मैं बहुत समय से देख चुका हूँ। खून करने की बात तो दूर की है, खून की कल्पना भी ऐसी लड़की के लिए संभव नहीं है।"

इसके बाद छोटे हाकिम ने जब मामले को दौर सिपुर्द किया तब भी डाक्टर सेन शांत न रहे। वहाँ वे आवेग रुद्र कण्ठ से अपने लम्बे आवेदन में जज साहब के इजलास पर उन्होंने कहा, "मैं बहुत

पुराना और अनुभवी डाक्टर हूँ। मैं बारम्बार यह बात पूरी जिम्मेदारी के साथ कह रहा हूँ कि मुज़रिमा निर्दोष है। अफीम का कोटा उसके कमरे में फेंक आने का जो अपराध उसने किया है वही उसके कनफेशन का कारण है। इसे भी हम एक प्रकार की मानसिक विकृति ही कह सकते हैं—जिसे हम लोग मेन्टल डिरेन्जमेंट कहते हैं। एक विचित्र प्रकार की चेतना अथवा किसी विशेष आवेश में वह बहकी-बहकी बातें करती है। उसमें इसके अतिरिक्त और कुछ सोचने की क्षमता भी नहीं है। ऐसी अवस्था में केवल एक मिथ्या-स्वीकृति पर ही निर्भर कर के इस निरपराध, निष्पाप लड़की को खूनी करार देकर सजा दी गयी तो इससे बड़ा और कोई अन्याय न होगा।" लक्षणों को नहीं देखा, कदाचित इसी से स्व कारोक्ति को अविश्वास भी नहीं किया। वह हेना से बार-बार प्रश्न करते थे कि, "तुमने शिवानी को विष क्यों दिया? उसके विरुद्ध तुम्हारी अभियोग क्या था?" उत्तर में हेना अपने पहले के ही बयानों को सही बताया और कहा, "मैंने जो कुछ भी कहा है उससे अधिक कुछ भी मैं कहना नहीं चाहती। मैंने खून किया है। इसके लिए मुझे सजा मिलनी चाहिए वह मुझे दीजिए। बार-बार एक ही बात दुहराने में मुझे कष्ट होता है।"

खून के मामले में यदि मुज़रिम अपने बचाव के लिए वकील न रख सके तो सरकार उसकी व्यवस्था कर देती है। हेना की ओर से एक तरुण वकील खड़े थे। उन्होंने अपनी बहस में अपराध को अस्वीकार किया। सरकारी पक्ष के अनुभवी वकील ने अपनी बहस में उसे अपराधी सिद्ध कर के भी छोटी सज़ा देने की सिफारिश की। कदाचित इसी से जज साहेब ने लम्बी सजा न सुना कर केवल पाँच वर्ष के कारावास का दण्ड दिया।

जब मुकदमा चल रहा था, विनता अपने पति के साथ कभी कभी हिरासत में मिलने आती थी। जितनी बार भी आयी उतनी बार उसने कहा, "तुम अपनी काकी माँ का पता दो, एक बार तुम्हारे

जीजा जी को भेज कर पता तो लगाऊँ कि वहाँ बाबा हैं कि नहीं।" हेना राज नहीं हुई। बार-बार जोर देने पर उसने कहा था, "क्या जरूरत है खबर लेने की। मेरा मन तो यही कह रहा है कि बाबा नहीं हैं। और यदि होंगे भी तो यह खबर सुनते ही उनका हार्टफेल हो जायगा।"

यह दृश्य जैसे उसकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो गया हो वह रूँधे हुए स्वर में फुसफुसा कर कहा, "नहीं, नहीं मैं वह नहीं सह सकूँगी।"

फिर भी उसे सहना ही पड़ा। जेल होने के बाद अतसी से विनता ही यह चरम दुःख का संवाद लायी थी। हार्टफेल नहीं, तरह-तरह की बीमारियाँ भोग कर सदाशिव अस्पताल में मर गए। हेना की आँखों में उस दिन एक बिन्दु जल भी नहीं निकला, ऐसा लगता है सब जल समाप्त हो चुका था। फिर यही सोच कर गहरी निःश्वास फेंक कर कहा था, "आखिर में उनको चाहे जितना कष्ट क्यों न हुआ हो, पर भगवान ने इतनी कृपा की कि उनको अपनी कन्या का चरम परिणाम देखने का अभिशाप अन्त समय नहीं मालूम हुआ।"

११

तालुकदार जब पूरी कापी को समाप्त कर चुके तो इन पन्नों में जो लड़की छायी हुई थी उसे एक बार देखने की इच्छा हुई। देख तो वह बहुत ही दिनों से रहे थे। विभिन्न अवस्थाओं में उसका विचित्र परिचय भी उन्हें कम नहीं मिला था। फिर भी इतने दिनों से जिसे देख रहे थे और आज जिसे देखेंगे वह दोनों अलग-अलग व्यक्तित्व हैं। उनके बीच में अनेक फर्क भी हैं। अतीत जीवन के बीच मनुष्य का जो परिचय है वह जैसे सत्य नहीं है, उसी तरह अतीत को अलग कर देने से भी वह अपूर्ण है। हो सकता है देव-तोष इसे न माने। उसका कहना है मनुष्य का असली रूप यदि जानना चाहते हो तो उसे अपने ही बीच में पा सकते हो उसके इतिहास में नहीं। उसके अतीत से बड़ा उसका वर्तमान है और उससे भी बढ़कर है उसका भविष्य। वह क्या थी उससे हमारा काम नहीं वह क्या है और क्या हो सकती है इसी में उसे पहिचानना है।

बात तो उड़ा नहीं दी जा सकती। फिर भी चित्र पर विचार करते समय जैसे उसकी पृष्ठभूमि को अलग नहीं किया जा सकता। उसी तरह मनुष्य के परिपूर्ण-रूप को देखने के लिए भी उसके विगत जीवन को देखना ही होगा। इतने दिनो से जिस हेना को तालुकदार देखते आ रहे थे वह तो बगैर रंग का रेखाचित्र मात्र थी; अब उसका जो रूप उनके सामने आया वह एक बहु वर्ण-रंजित निपुण शिल्प सृष्टि जैसी थी।

मिलने की और भी जरूरत थी। हेना उस ढंग की लड़की थी, जिसे बहकाकर कुछ नहीं पाया जा सकता। दूसरे कि दया अथवा अनुकम्पा पर भी उसको लोभ नहीं है। इस कारागार की दीवारों के बीच में बैठी-बैठी भी नारी जीवन की जो श्रेष्ठ सम्पत्ति उसे अनायास मिली थी उसकी तरफ भी उसने हाथ नहीं बढ़ाया। हृदय मर्माहत हो चुका है, फिर भी श्वास रोककर कहती है, 'जब तक मेरी सब बात वह नहीं जान जाते और मुझे जो देना चाहते थे वह मेरा प्राप्य नहीं है। उसे वापस ले लो।' कापो भी उनके हाथ में देने से पहले महेश को भी यही बात कह गयी कि, 'जिस काम का भार आप मुझे देना चाहते हैं उसे पाकर मैं धन्य होऊँगी। किन्तु उससे पहले मेरी सब बातें आप सुनकर विचार कर लें कि, वह अधिकार मेरा है या नहीं?'

इस प्रश्न के उत्तर देने की आवश्यकता है। हो सकता है कि वह इसी की प्रतीक्षा कर रही हो।

तालुकदार ने स्थिर किया कि उसे कल बुलावेंगे। ठीक उसी समय डाक खोलते ही देवतोष की चिट्ठी मिली। बहुत सी बातों के बाद डाक्टर ने लिखा था कि 'छुट्टी मेरी खत्म होने वाली नहीं है, यह बात मैं भूल ही चुका था। सरकार ने मेहरबानी कर के चार दिन आगे ही मुझे स्मरण करा दिया और उसी के साथ मेरा चालान राँगामाटी के जंगल' में कर दिया है। वहाँ कुछ बढ़ती अर्थात् भत्ते की भी व्यवस्था हुक्मनामा में लिख दी गयी है। किन्तु भत्तेका लोभ और राँगामाटी की रंगीन माया दोनों को ही त्याग करके इसी काली मिट्टी में रहने का ही मैंने स्थिर किया है। हो सकता है आप कहेंगे कि यह तो केवल धूल फाँकने का ही काम किया है। क्या करता दादा, हमारे भाग्य में ही नहीं है। यह सोच कर यहीं कुछ करने का आयोजन करूँगा, पर मन में उसके लिए भी उत्साह नहीं है। बीच-बीच में मन में आता है कि अपने यात्रा कार्यक्रम को अब शुरू कर दूँ। किन्तु माँ को लेकर जाना भी मुश्किल है। संग चलने में

भी नाराज हैं अकेले रहने की भी इच्छा नहीं है। मेरे विषय में ही वह बड़ी चिन्तित रहती हैं और मुझे भी चिन्तित कर दिया है।

बेलघरिया का समाचार ठीक है। शान्ति ठीक हो गयी है और यथा रीति कामकाज चला रही है। माँ बीच बीच में जाती हैं। वह आपको बुला रही हैं। नहीं; वहाँ की कोई समस्या नहीं है। ऐसा लगता है कि उनकी एकमात्र समस्या मैं हूँ। कब आ रहे हैं?

बीरू-नीरू से मिल कर आ रहा हूँ। दोनों मजे में हैं।

सुलोचना देवी के चिन्ता का कारण तालुकदार ने अनुमान कर लिया। देवतोष की चिट्ठी में भी उसका समर्थन मिलता है। डाक्टर के जेल छोड़ने के बाद से घटना स्रोत ने जिस पथ को पकड़ा है उसके साथ वह बहुत कुछ जुड़े हुए हैं। निर्लिप्त दर्शक बने बैठे रहने का अब समय न था। विलम्ब न करके दूसरे दिन ही वह कलकत्ता रवाना हुए। हेना से भेंट होने से पहले उन लोगों से मिलना भी दोनों पक्षों के लिए आवश्यक हो गया था।

इस चिट्ठी के कई दिन पहले की घटना है। अन्धेरी रात में सुलोचना की नींद टूट गयी। पास का कमरा देवतोष का था। बीच में दरवाज़ा बन्द था। लड़के के सोते रहने पर भी उसके खर्राटे सुने जा सकते थे। सुलोचना ने आहट ली। कोई शब्द नहीं सुनाई पड़ा। तुरन्त ही उठ गईं। दरवाज़े को खोलकर उन्होंने देखा बिस्तर खाली पड़ा था, दिल काँप उठा। बाहर निकलते ही अन्धकार में बरामदे के कोने की ओर आराम कुर्सी पर चुपचाप देवतोष को पड़े देखा। माँ के पास जाते ही वह चौंक उठा 'कौन?'

"मैं।"

'तुम अभी तक सोई नहीं?"

सुलोचना ने उस बात का कोई भी उत्तर न दिया। सस्नेह मृदु-कण्ठ से वह बोलीं, "तुझे हुआ क्या है, देबू? मुझसे साफ-साफ बता।"

"कुछ तो नहीं माँ योंही नींद नहीं आ रही थी न, तभी।"

"देवतोष माँ के सामने झूठ नहीं बोलते।" गम्भीर स्वर में सुलो-

चन ने कहा। किन्तु दूसरे ही क्षण उनकी दोनों आँखें डबडबा आईं! भरे हुए स्वर में वह बोलीं, "तू तो यह जानता है बेटा कि तुझको छोड़कर मेरा और कोई नहीं है। जो बात हो वह कह मुझसे लज्जा न कर के साफ-साफ बता।"

देवतोष कुछ क्षणों तक मौन बैठे रहे फिर बोले, "उन बातों को जानने से कोई लाभ नहीं, माँ। फिर मैं तुम्हें ठीक से समझा भी नहीं पाऊँगा। फिर तुमको कष्ट भी होगा।"

माँ ने और जोर न दिया और बोलीं, "मुझे न बता तो महेश को तो सब बता सकता है?"

"वह सब जानते हैं।"

देवतोष घर पर नहीं थे। सुलोचना के ही कमरे में बैठ कर उनके मुख से ही यह कहानी तालुकदार मन लगा कर सुन रहे थे। सुनने के बाद बोले, "हाँ माँ! मैं सब जानता हूँ, और बताने के लिये पूरी तैयारी भी कर आया हूँ। फिर भी—"

सुलोचना ने खिन्न स्वर में कहा, "इस विषय में मेरी इच्छा तो तुम जानते ही हो महेश। फिर विलम्ब क्यों?"

"नहीं माँ। कुछ दिन पहले हो सकता है द्विधा करता। किन्तु आज आप के सामने मेरी कोई कुण्ठा नहीं है। उस लड़की को मैं बहुत अच्छी तरह से जानता हूँ।"

सुलोचना साथ ही साथ बोल उठीं, "तो मुझे वहीं ले चलो बेटा, मैं भी देखकर आशीर्वाद दे दूँ।"

महेश उनके आग्रहपूर्ण चेहरे की ओर कुछ क्षण देख कर बोले, "वहाँ आप नहीं जा सकतीं माँ।"

"क्यों? बहुत दूर है क्या? फिर भी—"

"नहीं बहुत दूर नहीं, हमारे पास ही अर्थात् हमारे जेलखाने में।"

सुलोचना के चेहरे पर एक उदासी छा गयी। कुछ क्षणों तक मौन वह ज़मीन की ओर देखती रहीं। फिर सिर उठा कर बोलीं,

"जेल में रहने पर फिर उसे घर पर नहीं लाया जा सकता आज मैं इस भूल में नहीं महेश। तुमने उसे साफ कर दिया है। फिर भी पुरखों के संस्कार तो हैं ही। न जाने कितनी जगहों पर इसे भी सोचना पड़ता है। फिर मैं अकेली भी नहीं हूँ। देवतोष केवल मेरा ही बेटा नहीं, वनेदी ज़मीदार वंश की सन्तान है यद्यपि आज कुछ भी नहीं है फिर भी वंश-मर्यादा का दम्भ तो अभी भी नहीं छोड़ सकी हूँ। यही सोचती हूँ—

"इसी बात को ही सोच कर मैं भी आगा पीछा कर रहा था आपकी बात तो मैं जानता हूँ। आपको तो मैं पहिचानता हूँ। पहिचानने के कारण ही मैं उस आश्चर्यमयी लड़की की सारी कहानी आपको सुनाने आया हूँ। वह भी यही चाहती है कि उसकी पूरी बात को सभी जान लें। इसी बात के लिए तो उसने देवतोष को लौटा दिया था।"

"लौटा दिया था !" विस्मय के साथ सुलोचना ने पूछा।

"हाँ माँ ! किन्तु क्यों इन्कार किया, कौन सी बाधा उसके सामने थी वह भी मैं आपको बताऊँगा।"

जाड़े का छोटा दिन खत्म होकर संध्या का अन्धकार गहरा होने लगा था। सहसा बाहर की ओर दृष्टि पड़ते ही सुलोचना हड़बड़ा कर उठ पड़ी। तुम कुछ देर बैठो बेटा। जरा संध्या तो दे आऊँ। कह कर ठाकुरजी के कमरे की ओर बाहर निकल गयीं।

गृह देवता के आसन के पास ही घी का प्रदीप जला कर शंख बजाया फिर गले में आँचल लपेट कर, भूमि पर बैठते हुए सुलोचना ने प्रणाम किया अन्य दिनों की तरह आज भी उनके अन्तर से एक ही प्रार्थना निकली "हमारे देवतोष का मंगल हो। जिससे उसे कोई कष्ट न हो।"

कुछ देर में ही वह वापस आ गयीं। महेश ने देखा माँ के मुख पर उद्वेग की जो रेखाएँ फूट पड़ी थीं वह अब मिट चुकी हैं। स्निग्ध आँखों में एक परम निर्भरता की ज्योति तैर रही थी उसी के साथ ही

गभीर उत्सुकता की छाया भी मिली।

तालुकदार ने बताना शुरू किया किस तरह से उस रात में जब एक प्रथम अपरिचिता लड़की उसके पास आकर खड़ी हुई थी और यक्ष्मा रोगिणी की सेवा के लिए प्रार्थना कर रही थी; डाक्टर देवतोष की आपत्ति भी वहाँ नहीं टिक सकी थी। फिर आगे बढ़ कर कैसे दोनों एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आए और अन्त में देवतोष ने विदा, ली। फिर उन्होंने बताया कि, 'यह कहानी उसने जो लिखा है वह आत्म-प्रचार के लिए नहीं आत्म-प्रकाश के लिए है।' महेश की बातें खत्म हो जाने के बाद भी सुलोचना सम्मोहित सी शांत बैठी रहीं। थोड़ी देर में घड़ी के घंटों की आवाज़ सुन कर चौंक कर बोलीं—"कितने बजे हैं?"

"ग्यारह।"

"वाह। इतनी रात हो गयी। देबू अभी भी नहीं आया।"

महेश ने हँस कर कहा, "देबू, बहुत पहले ही आ गया है। हम लोगों के सामने से ही अपने कमरे में गया है।"

सुलोचना मन ही मन लज्जित हुईं। चटपट उठती हुई वह बोलीं, "तुम दोनों हाथ मुँह धो लो बेटा, मेरा खाना तैयार है। केवल उसे गरम कर देना है।"

दूसरे दिन उठते ही बेलघरिया जाने का प्रोग्राम तालुकदार ने बनाया। सुलोचना ने बाहर से ही पुकारा, "महेश!"

माँ! के जवाब में तुरन्त ही वह बाहर निकल आए।

"हेना को तुम लोग छोड़ोगे कब?"

"उसकी रिहाई के लिए हम लोगों ने सिफारिश की है। किसी दिन भी मंजूरी आ सकती है।"

"उसी दिन मुझे टेलीग्राम करना। तुम्हारे यहाँ ही आकर अपना आशीर्वाद उसे दे आऊँगी।"

तालुकदार विस्मय के साथ निःशब्द माँ की ओर देखते रहे।

जवाब देने की कोई बात भी समझ में नहीं आ रही थी। सुलोचना कुछ क्षणों तक मौन रहने के बाद मृदुल हास्य के साथ बोलीं, "तुमको लगता है आश्चर्य हुआ ? आश्चर्य की बात भी है।"

धीरे-धीरे करके उनके मुख की हँसी लुप्त हो गयी। अनुनय भरे स्वर में वह बोलीं, "कल उस लड़की के बारे में कुछ नहीं जानने से मेरे मन में जो द्विधा द्वंद उठा था उसके लिए मुझे क्षमा करना बेटा।"

"छिः-छिः यह आप क्या कह रही हैं माँ। इसमें भी तो मेरा ही अपराध है"—कह कर तालुकदार ने आगे बढ़ कर माँ के चरणों को स्पर्श किया। फिर बोले, "यह मैं जानता था माँ कि लड़की का कितना बड़ा भी अपराध क्यों न हो पर आपके आशीर्वाद से वह वंचित न रह सकेगी। किन्तु इसके लिए आपको मेरे घर पर आना पड़ेगा क्यों ? मैं स्वयं ही उसे आप के चरणों में ले आऊँगा।"

"नहीं बेटा ! उसका भले ही और कोई भी न हो पर तुम तो हो ही। विवाह से पहले वह श्वसुर की ड्योढ़ी पर पैर रखे वह इतनी अनाथ क्यों रहेगी ?"

"अब कुछ कहने की जरूरत नहीं माँ। मैं समझ गया। सब व्यवस्था मैं ही करूंगा।"

१२

जेलर साहेब के हाथ से अपनी कापी लेकर जब हेना अपने सेल में वापस लौटी तो उसे लगा कि हृदय का कोई भारी बोझ हल्का हो गया है। बहुत दिनों बाद वह अपने को हल्का महसूस कर रही थी। संसार में उसे न्याय नहीं मिला। एक तरफ उसे असंगत लांछना और अन्याय प्रवंचना मिला तो दूसरी तरफ अन्ध स्नेह और अनावश्यक अनुग्रह! दोनों में ही उसके साथ न्याय नहीं किया गया। अदालत के सामने भी उसने न्याय चाहा था पर उसे मिली केवल दया। इस कारा जीवन में भी उसके जो भी अन्तर के सन्निकट आया वह भी उस पर अपना स्नेह तो दिया पर उसे पहिचानना न चाहा। केवल एक ही व्यक्ति ने उसे न तो नीचा समझा और न उसे मिथ्या मूल्य ही दिया। इस कटघरे की संकरी सीमा में ही उसे न देख कर उसके समस्त जीवन को भी देखना चाहा। यह केवल उसकी ही अकेली बात भी नहीं। यहाँ के प्रत्येक रहने वालों को भी वे इसी दृष्टि से देखता है—जिसमें एक तरफ गंभीर संवेदना और दूसरी तरफ सूक्ष्म विचार बोध दोनों ही हों। अपराधी को क्षमा दृष्टि से देखने पर भी अपराध को वह क्षमा नहीं करता। कर्त्तव्य में दृढ़ किन्तु ममता में कोमल ऐसे व्यक्ति के प्रति हेना के श्रद्धा का कोई अन्त नहीं। तभी तो एक बात पर ही अपनी सम्पूर्ण सत्ता को उसने निःसंकोच निछावर कर दिया था।

ही आफ़िस में फिर चलना है।"

"आफिस में क्यों ?" हेना ने पूछा—

"जेलर साहेब ने बुलाया है।"

हेना का चेहरा प्रफुल्लित हो उठा।

"वह लौट आए ?"

"आज ही तो लौटे हैं।"

सुशीला के जाने के बाद हेना के मन में फिर तरह-तरह आशंकाएँ छाने लगीं। न जाने क्या कहेंगे वह। किताब को बन्द कर के वह लेटना ही चाहती थी कि सेल के सामने ही कमला को देख कर बोल उठी, "आओ, अभी मैं तुम्हीं को याद कर रही थी।"

कमला का स्वास्थ्य बहुत कुछ ठीक हो चुका था। आँखों में और चेहरे पर नए स्वास्थ्य की झलक स्पष्ट थी। उस पर से वह मुस्कराती हुई बोली, "सचमुच ? भाग्य से मैं लड़का न हुई ? नहीं तो इस समय मैं गल कर पानी हो जाती !"

"ठीक तो होता, तब मैं भी झाड़ू मार कर नाली में बहा देती।"

"दीदी उल्टी बात कहती हो। झाड़ू खा-खा कर ही तो नाली में पड़ कर यहाँ तक बह कर आई हूँ। तुम्हीं ने सहारा देकर उठाया है।

"मैंने ?"

"और नहीं तो किसने ! जाने दो इन सब बातों को। तुम्हें एक नयी चीज़ दिखाने लायी हूँ।"

"क्या, देखें !"

"यह लो।" कह कर उसने सीने में हाथ डाल कर एक लिफाफा निकाल कर दिया।

हेना ने हाथ बढ़ा कर पूछा "किसकी चिट्ठी है ?"

"मेरी !"

"किसने भेजी है ?"

"पढ़ कर ही देख लो न !"

लिफाफे को खोल कर सब से पहले चिट्ठी में नीचे नाम पढ़ कर हेना प्रफुल्लित सी होकर बोली, "कौन सनत् ने लिखा है ?"

"हूँ; किन्तु जो सोच कर इतनी खुश हो रही हो वह बात नहीं है।"

कुछ लाइनों में ही पूरी चिट्ठी लिखी गयी थी। ऊपर कलकत्ते का एक पता लिखा था। उसमें लिखा था—

कमल,

इतने दिनों तक तुम्हें चिट्ठी न भेज सका। किस मुँह से लिखता ? बहुत दूर था। जब लौटा तब, और कुछ भी करने को न था। जेलर आफिस में चिट्ठी भेज कर इत्तला किया था तो मालूम हुआ अभी तुमको बाहर आने में पाँच छः महीने की देर है। ठीक तारीख तो मुक्त होने से एक महीने पहले मालूम हो सकेगी। तुमको भी तभी बताया जायगा। वह दिन और समय हमें बताना न भूलना। सरकार महाशय जेल-गेट पर उपस्थित रहेंगे। उसके बाद जो भी व्यवस्था करनी है उसका भार उन्हें सहेज दूँगा।

तुम्हारा ही

सनत्

पत्र को पढ़ कर हेना ने धीरे-धीरे कागज़ को मोड़ कर लिफाफे भर कर बिछौने पर पास में रख दिया और मौन कमला की ओर देखने लगी।

"मैं तो किसी से अनुग्रह की भिक्षा चाहती नहीं।" कुछ झुँझलाहट भरे स्वर में कमला ने कहा, "फिर उनकी जिम्मेदारी ही क्या है ?"

'प्रेम की जिम्मेदारी' मुँह बंद कर के हँसती हुई हेना बोली।

"अब ज्यादा मुझे मत जलाओ।"

हेना कुछ देर तक कुछ सोचती रही। फिर बोली, "यदि एक बार भी मैं उसे देख लेती तो ? बड़ा ही भीरु लड़का है।"

कमला ने जिज्ञासु नेत्रों से देखा 'भीरु माने ?'

"देख नहीं रही है, कि किस तरह छटपटा रहा है ? नहीं तो यह

साफ-साफ नहीं लिख देता कि 'कमल, तुम मेरे पास आ जाओ। अपने हृदय में तुच्छ संस्कारों की बाधाओं को वह पाले हुए है—उसे झाड़ फेंकने का साहस भी नहीं है उसमें।"

"तुम जिसे तुच्छ संस्कार कहती हो, हो सकता है वही उसके लिए सब से बड़ी बात हो।"

"ऐसा नहीं हो सकता, कमला! प्रेम से बढ़ कर और कुछ भी नहीं होता।"

"यह बात तुम्हारे मुख में शोभा देती है, हेना दीदी?"

हेना चौंक सी उठी—वह भी इतनी साफ कि कमला की आँखों से भी बच न सकी। कमला उसकी तरफ देखती हुई बोली, "ऐसी बाधा को तो तुम भी नहीं काट सकीं।"

"मैं तो स्त्री हूँ रे! वे तो पुरुष हैं। हम जो नहीं कर पातीं वह उसे सहज ही कर सकते हैं। मुझसे भेंट होती तो यही बात उसे समझा देती। उसकी चिट्ठी का क्या जवाब देना चाहती है?"

"अब उत्तर क्या दूँगी।"

"ऐसा नहीं होता, कमला।"

"ठीक है, तो एक धन्यवाद का पत्र भेज कर लिख दूँगी कि अपना रास्ता मैं आप ही खोज लूँगी।"

"वह रास्ता कौन सा होगा, वह भी तो सुनूँ?"

"इस तरह के जीजा जी के रहते हुए फिर मुझे रास्ता चुनने में क्या सोचना है? तुम नहीं जानतीं, उस भले आदमी ने तीन-चार बार इसी जेल गेट पर मुझसे भेंट करने की चेष्टा की, इसी से लगता है कि लौटने पर दीदी की सौत बन कर घर परिवार बाँध सकूँगी। माँ भी निश्चिन्त हो जायगीं, और दीदी भी हर साल की मुसीबत से छुट्टी पा जायगीं।"

"तुम्हारी ज़बान में कोई लगाम नहीं है क्यों कमला?" व्यथित कण्ठ से हेना ने कहा।

"तो क्या करूँ दीदी ! इस प्रेम की जिम्मेदारी, केवल अनुग्रह और सुन्दर-सुन्दर बातों के भुलावे में डाल कर दूर से ही छाया से भी बच कर चलने से हमारा यह नरक ही सौ गुना अच्छा है। मैं वहीं लौट जाऊँगी।"

"नहीं, वह सब कुछ नहीं होगा। मैं तुझे वहाँ न जाने दूँगी।"

"तुम ! यह जोर तो तुम्हारा हो सकता था दीदी, किन्तु तुमने तो जानबूझ कर उसे खो दिया है। तुम भी तो मेरी ही तरह असहाय हो।"

"हम कोई भी असहाय नहीं हैं, कमला। यह तुम्हारी भूल है। स्त्री होकर भी मैं मनुष्य हूँ। हमें भी हाथ-पैर हैं। हम उनके सहारे ही खड़ी हो सकती हैं, चल सकती हैं, यह सिर्फ किताबी बातें ही नहीं हैं जिस व्यक्ति को हम सब श्रद्धा करती हैं यह बात उसी की कही हुई है और उसने हमें पूरा भरोसा भी दिया है।"

"वह श्रद्धा अपने पास ही रखने को मैं कहूँगी, उन्होंने स्त्रियों में केवल मनुष्यता देखी होगी किन्तु स्त्री स्त्री है यह न देखा होगा। वह कदाचित जानते भी नहीं कि इनके हाथ पैर का जोर बस एक ही जगह है। उसे एक खूँटी की जरूरत है, वह न मिलने पर खुले मैदान में चरने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, जहाँ न तो पथ है और न आश्रय।"

सेल के बाहर सुशीला की आवाज़ सुनाई पड़ी, "दोनों क्या बकबक कर रही हो ?"

फिर सामने आकर हेना से कहा, "अब आधे घन्टे में ही चलना होगा किन्तु देर करने से बाबूओं की भीड़ जमा हो जाएगी।"

"कुछ देर न होगी मासी माँ ! देखिए मैं पाँच मिनट में ही तैयार हो जाती हूँ।"

"तुम्हें तैयार होने में क्या रक्खा है मैं नहीं जानती क्या ? लेकिन इस तरह बाल बिखेरे चलोगी तो मैं कभी भी अपने साथ न ले चलूँगी। कमला ! उसकी चोटी तो ठीक से कर दे।" कह कर सन-

सुनाती हुई जमादारनी चली आयी।

"वैसा हुआ है!" कह कर कमला सिर गूँथने बैठी। और विशेष कुछ बातें नहीं हुयीं। बाद में जब वह जाने लगी तो चिट्ठी उसके हाथ में देकर हेना ने कहा, "जवाब अभी रहने दो, मुझसे बगैर पूछे कुछ न लिखना।"

"अच्छा, अच्छा, वैसा ही होगा।"

रविवार होने पर भी चार बजने से पहले ही जेलर बाबू आफिस में आ गए और कुछ मिनट बाद ही सुशीला के पीछे हेना भी दरवाज़े के सामने आकर खड़ी हुई। सुशीला यथारीति सलाम करके चली गयी। एक स्टूल की ओर इशारा कर के तालुकदार ने हेना को बैठने के लिए कहा। हाथ के सभी कामों को निपटा कर बोले, "सुशीला ने बताया था कि तुम मुझे पूछ रही थीं? क्या बात है बताओ?"

हेना ने सलज्ज कण्ठ से कहा, "कुछ नहीं, यूँ ही। आप शायद सरकारी काम से बाहर गए थे?"

"हाँ; काम सरकारी नहीं, मेरा निजी ही था। माँ से मिलने गया था।"

जेलर साहेब की माँ हैं हेना ने कभी भी नहीं सुना था। साग्रह नेत्रों से उसने देखा। उसे देख कर तालुकदार ने कहा, "मेरी ठीक माँ तो नहीं देवतोष की माँ से। फिर भी मैं उनको माँ ही मानता हूँ।"

हेना ने निःशब्द रह कर आँखों को झुका लिया। तालुकदार बोले, "वह बातें तो फिर बताऊँगा। उससे पहले मैं तुमको एक जरूरी खबर दूँगा। कलकत्ते के अपने हेड आफिस से मुझे पता चला है कि सरकार ने तुमको रिहा कर देना मंजूर कर लिया है। हो सकता है दो चार रोज में ही हम तुमको छोड़ दें।"

सहसा हेना का हृदय काँप सा उठा। आँखों में शंकित और संप्रश्न दृष्टि जैसे फूटी, "रिहा होने के बाद वह कहाँ जायगी?" तालुकदार उसके नेत्रों की भाषा को जैसे समझ गए। मधुर हास्य के साथ वह बोले, "छोड़ दिए जाने पर भी तुम छुट्टी नहीं पाओगी। उसके बाद का प्लान भी मैंने स्थिर कर लिया है।"

हेना के कण्ठ में साहस का संचार हुआ। वह बोली, "मुझे किसी काम से लगा देने के लिए आपने कहा भी तो था?"

"वह तो अब हो नहीं सकेगा। सब उलट-पलट हो गया वह काम अब तुम्हें नहीं सम्हालना पड़ेगा।"

"नहीं होगा?" हेना ने निराश स्वर में पूछा।

"नहीं, किन्तु तुमने जो सोचा है उसलिए नहीं, दूसरे कारण से।"

"क्या कारण?" रुधें कण्ठ से हेना ने प्रश्न किया।

"उसका कारण है", हेना के मुख की ओर एक बार दृष्टि डाल तालुकदार बोले, "देवतोष आज भी तुम्हारी प्रतीक्षा में है।"

हेना के मुख पर वेदना की म्लान छाया उभर आयी। सिर झुका कर वह जमीन को देखने लगी।

तालुकदार ने गम्भीर स्वर में कहा, "और केवल वही नहीं, उससे बढ़ कर तो उसकी माँ तुमको चाहती हैं।"

जैसे बिजली का एक झटका सा लगा हो उसने सिर उठा कर कहा, "किन्तु वह तो मेरी कोई बात जानती नहीं!"

"जानती हैं। मैंने ही उन्हें सब बताया है।" ड्राअर खोल कर एक मुड़ा हुआ कागज़ बाहर निकाल कर वह बोले, "हमारे हाथों ही तुमको आशीर्वाद भेजा है। यह लो उनकी चिट्ठी।"

काँपते हुए हाथ से उसने चिट्ठी को खोला। कुछ लाइनें थीं।

सुचरितासु,

बेटी हेना, तुम्हें कभी नहीं देखा फिर भी तुम्हारा पवित्र सुन्दर मुख जैसे मेरी आँखों के सामने स्पष्ट है। मैंने सब सुन लिया है।

तुम मेरे देवतोष का भार लो,—जिससे मैं सुखी और निश्चिन्त हो सकूँ। इसी शुभ दिन की मैं प्रतीक्षा में हूँ। मेरा महेश सब व्यवस्था करेगा।

नित्य आशीर्वादिका
तुम्हारी माँ

चिट्ठी समाप्त हुई। उसके बाद भी कुछ क्षणों तक मौन का साम्राज्य रहा। दोनों नेत्रों से पता नहीं कहाँ की छिपी हुई आँसुओं की अविरल धारा बह निकली। उसके बाद उसने आगे बढ़ कर अपने सिर को महेश के चरणों में डाल दिया।

उन्होंने न तो रोका और न अपने पैरों को ही हटाया। परम स्नेह से उसके सिर पर दाहिना हाथ फेर कर बोले, "मन ही मन मेरी भी यही कामना थी। एक कैद से छूट कर दूसरी कैद में तुम जाओगी। मैं भी निश्चिन्त रहूँगा। यह नई कैद तुम्हारे लिए अक्षय हो। तुम दोनों सुखी बनो। इससे बढ़ कर आशीर्वाद मेरे पास और कुछ नहीं है।"

कुछ क्षणों के बाद हेना जब अपने सेल में लौट कर आई तो सारी पृथ्वी का रंग ही बदल गया था। इन दीर्घ परिचित घरों और दीवारों से घिरे मैदान और उनके किनारों के पेड़-पौधों के लिए उसके हृदय में गहरी ममता सी भर उठी। कुछ इस पर अस्पताल के पास इसी नेबू की झाड़ियों पर दृष्टि पड़ते ही बहुत दिनों पहले की बात याद आ गयी। मधुर आवेश से दोनों नेत्र ढक से गए। सहसा बूढ़ी का क्षीण चेहरा भी याद आया। वह फिर लौटकर नहीं आई। वहीं से वह रिहा होकर घर चली गयी। पता नहीं आज कहाँ हैं कैसी है।" वह कब तक तन्मय रही जान न सकी। आँख खुलते ही उसने देखा, कमला विस्मय के साथ उसकी ओर देख रही है। वह धक्का देकर बोली, "ऐसी भौचक्की जैसी क्या देख रही है?"

"तुम्हीं को देख रही थी। सचमुच दीदी इतनी सुन्दर तुमको कभी भी नहीं देखा। क्या हुआ तुम्हारा?"

"होगा क्या?"

"बगैर बताए छोड़ूँगी नहीं। क्या देख-सुन आइ बताओ ?"

हेना कुछ भी न बोली। ब्लाउज के नीचे से माँ की चिट्ठी निकाल कर कमला के हाथों में दे दी। इसी समय पता नहीं कहाँ से लज्जा से उसका सारा शरीर जकड़-सा गया।

"दीदी" कह कर तीव्र उल्लास से कमला बोल उठी साथ ही साथ विपुल आवेग से उसे छाती से लगा कर रोने लगी।

तीन दिन के बाद सुबह नारी-कण्ठ का तीक्ष्ण कलरव जनाने फाटक में उमड़ पड़ा। मसक्कत घर से लड़कियाँ भाग-भाग कर हेना को चारों तरफ से घेरने लगीं। सभी की आँखों में जल था। जिन्होंने किसी दिन उस पर तरह-तरह से आघात किया था उनकी आँखों में भी एक तरफ हँसी थी और दूसरी तरफ आँसू। निटिंग क्लास की लड़कियाँ फूट-फूट कर रो रही थीं। हेना उन्हें सान्त्वना देने गई तो उस की भी आँखें नम हो गईं। सुशीला बीच-बीच में आकर पुकारती जाती थी। सभी से विदा लेकर हेना फाटक की ओर आगे बढ़ी। कोई प्रणाम करने लगा, कोई दोनों हाथ जोड़ता और किसी-किसी ने सिर पर हाथ फेरकर आखरी आशीर्वाद दिया। सहसा उसकी दृष्टि सबसे दूर चुपचाप खड़ी फूलबानू पर पड़ी। उसका हुक्म अभी नहीं आया था। सरकार ने उसकी रिहाई नामंजूर कर दी थी। हेना ने धीरे-धीरे आगे बढ़कर हाथों को जैसे ही उसके कंधों पर रक्खा तो वह अपने को सम्हाल न सकी। वह तुरंत मुँह फेर कर अपनी आँखों को आँचल से पोंछने लगी। हेना कुछ बोल न सकी। कहने के लिए था भी क्या ? कमला भी सबसे अलग खड़ी थी। दोनों नेत्र भर आए थे और उसके पास आकर हेना मृदु कण्ठ से बोली, 'सब बातें याद हैं न ? सनत् की चिट्ठी मेरे पास ही है। तुझे अब जवाब नहीं देना पड़ेगा। जो कुछ होगा मैं ही करूँगी। छूटते ही तू सीधे हमारे पास आ जाना। मामी माँ को और जेलर साहेब को सब कह जाती हूँ।"

कमला कुछ भी बोल न सकी। अपने को सम्हालते हुए उसने केवल सिर हिला कर अपनी सहमति प्रकट की।

१३

मेल स्टीमर 'फलकन' विशाल लहरों के साथ गोयालन्द घाट पर आकर जब लगा उससे कुछ पहले ही पद्मा की छाती पर सन्ध्या उतर आयी थी। दोतल्ले के डेक रेलिंग के पास खड़े होने पर पेड़-पौधों से शून्य विस्तीर्ण बालू का मैदान और उसके आगे असंख्य टीन के छाए मकान दिखाई पड़ रहे थे। कुहासा-मलीन अस्पष्ट ज्योत्स्ना बिखरी हुई थी। थोड़ी दूर पर खड़ा रेल का इंजन हाँफ-सा रहा था। दो घन्टे बाद ही बहुत से यात्रियों को लेकर वह कलकत्ते की ओर चल देगा। सुशीला एवं हेना को भी उसी से जाना है। बेलघरिया के मकान में ही वह दोनों ठहरेंगी। तीन-चार दिन बाद जेलर साहेब भी आ जावेंगे। उसके बाद आशीर्वाद एवं साथ ही साथ विवाह का आयोजन होगा। सभी कुछ इसी मकान से होगा। शान्ति है, उमा हैं, और भी स्त्रियाँ हैं। वे ही सब काम करेंगी। उत्सव, आलोक, हँसी और कलरव से उनका उदासी से भरा घर-आँगन भर उठेगा। जिन्हें घर नहीं है और संसार ने जिनको एक जंजाल समझकर बाहर फेंक दिया है वह भी क्षण भर के लिए गृह जीवन का स्वाद पा सकेंगी। यही तो तालुकदार ने चाहा था। यही उनकी आशा भी थी कि और भी जो उनके आश्रम में पड़ी हैं और जिनके जीवन का सूर्य मध्य-गगन से ऊपर नहीं उठा है वे भी किसी दिन मनोनुकूल घर-वर पाकर खुशी और सार्थक हो सकें। हेना की ही

तरह उनके मुख पर भी सलज्ज आनंद की आभा फूट पड़ेगी। यही उनका चिरकाल से स्वप्न है। आज वह अकेले नहीं हैं। उनके एक तरफ खड़े थे देवतोष और दूसरी तरफ थी हेना। सबसे ऊपर था माँ का अकुण्ठ आशीर्वाद। जीवन की अपराह्न बेला में खड़े दीर्घ प्रसारी दृष्टि के सामने एक नए प्रभात का अस्पष्ट आभास तालुकदार ने पाया। मीरा की बात स्मरण हो आयी। उसकी अन्तिम कामना उनके कानों में गूँज उठी। नए उत्साह से महेश बाबू उठ खड़े हुए। यह सब तो प्रारंभ है बाकी और भी पथ पड़ा है। किन्तु उसे सफल होना होगा। मीरा का आत्मत्याग व्यर्थ नहीं होगा।

स्टेशन पर एक तरफ़ भीड़ से कुछ दूर पर जेलर साहेब द्वारा दिए हुए नए ट्रंक पर मौन बैठी हुई हेना देख रही थी। बहादुरनगर के वे दिन याद आ रहे थे। दादा के साथ वह अड़ियाल खाँ के निर्जन घाट पर कितनी ही बार बैठी रहती थी। यह उसी दिन की तो बात है। उसके बाद कितने मेघ और कितनी आँधियों ने आकर उसके क्षुद्र जीवन में धूल और अवर्जना से उसे ढक दिया था। आज क्या सचमुच वह सब दिन कट गए? क्या आकाश साफ हो चुका है? कौन जाने क्या लेकर उसका अनागत भविष्य आ रहा हो? सहसा हृदय के भीतर एक कम्पन-सा हुआ। आज इस आनन्द के दिन भी उसके मन के कोने में यह भय और आशंका की कैसी छाया पड़ रही है!

सुशीला सब तरफ एक बार घूम कर आयी और बोली, "वेटिंग रूम भी क्या तमाशा है। ओ माँ, टूटा-फूटा टीन का घर है जिसके चारों ओर चटाई की दीवारें हैं। हाँ, स्टेशन यदि देखना हो तो, समझीं हेना, हमारे बारीसाल के घाट को देखो क्या बढ़िया वेटिंग रूम है। उसमें घुसते ही बस यही इच्छा होती है कि बिस्तर लगाकर सो जाऊँ और कहीं भी जाने की जरूरत नहीं।"

हेना निःशब्द हँसने लगी। इस गरीब स्त्री के मुख से वह

बारीसाल के उच्छ्वास आगे भी सुन चुकी थी। बारीसाल के चावल, सुपारी और वहाँ के कछुओं का नाम लेते ही मासी माँ की रसना, सजल हो उठने का परिचय उसे बहुत पहले ही मिल चुका था। सुशीला बोली, "जनाना कमरा देखो तो बिल्कुल खाली पड़ा है। रात-बिरात वहाँ रहना भी ठीक नहीं। चलो पुरुषों के ही कमरे में बैठा जाय।"

"चलो," कह कर हेना भी उठ खड़ी हुई।

वहाँ भी अधिक लोग न थे। एक सज्जन अपनी स्त्री और कई बच्चों के साथ वहाँ थे जो अभी-अभी चले गए थे। हेना उसी खाली बेंच को झाड़कर उस पर बैठ गयी। सुशीला कुछ खाने की चीज़ लेने गयी थी। कमरे के दूसरी तरफ दो बेंचों को जोड़कर कोई सो रहा था। सारा शरीर सफेद चादर से ढका था। बाहर केवल नाक और आँख का कुछ अंश था। देखने से ही पता चल रहा था कि वह बीमार है। एक बार उसकी ओर देखकर हेना ने अपनी आँखों को फेर लिया था। कुछ क्षणों के बाद फिर जब उधर दृष्टि पड़ी तो उसने देखा कि वे दोनों नेत्र अपलक दृष्टि से उसकी ओर देख रहे थे। उसे बहुत बेचैनी-सी लगी। वह उठकर एक तरफ खिड़की पर खड़ी होकर जँगले के बाहर देखने लगी। कुछ देर बाद फिर पलटकर देखा तो वे दोनों नेत्र अभी भी उसे एकाग्र दृष्टि से देख रहे थे। इस तरह यह आदमी क्यों देख रहा है? बाहर निकले या न निकले कि इतने में ही कमरे में एक लड़का घुसा। कुछ उसकी ही उम्र का होगा। वह कुछ परेशान-सा उस बीमार व्यक्ति के पास जाकर बोला "इनवैलिड चेयर नहीं मिली। एक स्ट्रेचर की व्यवस्था हो सकती है। वही मिल जाय तो ठीक है न हो तो भी कोई नुकसान नहीं। हम दोनों ही आप को कन्धे पर लेकर चढ़ा देंगे।"

"वही करना भाई," क्षीण कण्ठ से वह व्यक्ति बोला, "कन्धे पर चढ़ कर जाने के दिन तो अब आ ही गए हैं। रिहर्सल यहीं हो

जाय।...." कह कर उसने ज्यों ही हँसने की चेष्टा की कि तेजी से खाँसी आने लगी और वह रुकने का नाम ही न लेती थी। ऐसा लगा कि अभी ही उसका प्राणांत हो जायगा। लड़का क्या करे क्या न करे इसके लिए वह परेशान-सा इधर-उधर देखने लगा — इतने में ही ठीक पीछे नारी-कण्ठ सुन कर चौंक उठा—"जरा सरकें तो।" उसके हटते ही हेना घुटने के बल ज़मीन पर बेंच के पास बैठ गई और साथ ही साथ रोगी के वस्त्र को हटा कर निपुण हाथों से धीरे-धीरे उसकी छाती को मलने लगी। उसके मुख से थोड़ा सा, कफ और कुछ रक्त निकला। आँचल के कोने से उसने उसके मुख को पोंछा तो वह व्यक्ति प्रतिवाद कर उठा, "यह क्या कर रही हो! बड़े छूत का रोग है—नहीं जानतीं?"

"जानती हूँ। आप चुप रहिए तो।"

रोगी ने और बातें नहीं कीं; निःशब्द आँखें बन्द किए पड़ा रहा। अभी भी उसके स्पन्दित हृदय पर हेना की कोमल अँगुलियों का मधुर स्पर्श हो रहा था। लड़का आश्चर्यचकित-सा देखता रहा। उसने देखा कि वह रोगम्लान शीर्ण चेहरे पर एक चमक सी दौड़ गई है। उस पर परम तृप्तिमय एक प्रसन्नता स्पष्ट थी।

कुछ समय बीत जाने पर विकास ने फिर कहा, "जाओ, अब कपड़े को बदल डालो। और देरी न करो। जो जगह गंदी हो गयी है उसे भी फेनाइल के पानी से साफ कर दो।"

लड़के की ओर आँख फेरते हुए बोला, "सुरेन इनको नदी के किनारे ले जाओ। फिनाइल की शीशी सूटकेश को खोलते ही मिलेगी।'

"आप पहले ठीक हो जायँ; फिर सब ठीक हो जायगा।" हेना ने मृदुकण्ठ से कहा। आवाज जैसे पहिचानी-सी मालूम हुई और विकास कुछ परेशान-सा हो गया "नहीं, नहीं, अब उठ जाओ! मैं बहुत ठीक हो गया हूँ।"

धूमिल चाँद के प्रकाश, में बालू के मैदान को पार करते हुए पद्मा की ओर जाते-जाते सुरेन ने सहसा प्रश्न किया, "क्या वे आपके कोई आत्मीय हैं ?"

"नहीं ।"

लड़का बहुत सीधा सरल सा था। इसके बाद भी उसने प्रश्न किया, "लगता है आपकी जान पहिचान है ?"

"हाँ ।"

दो मिनट मौन चलने के बाद मृदु निःश्वास फेंक कर आहिस्ते-आहिस्ते सुरेन ने कहा "उनका अपना कोई नहीं है। आप क्या उनकी सब बातें जानती हैं? "

"नहीं ।"

"जानेंगी भी कैसे ? बहुत दिनों से वह अकेले ही हैं। बचपन में ही किसी विप्लवी दल में सहयोग किया था, फिर प्रायः समस्त जीवन वन, जंगल, जेल और इन्टारनी कैम्प में ही काटा। जब छोड़े गए तब स्वास्थ्य ने जवाब दे दिया; मन में भी जोर नहीं रहा। सोचा सांसारिक जीवन में आवेंगे। उन्हें एक लड़की पसंद थी। शायद उसे वचन भी दे चुके थे। किन्तु विवाह किसी दूसरे से ही हो गया। कभी-कभी मुसीबत से इनको उसने बचाया था। यही उसकी दलील थी। पार्टी लीडरों ने राय दी कि उससे ही विवाह करना होगा। टेरिरिस्टों में इन लीडरों की बात ही सबसे बड़ी बात होती है। यह सब बता रहा हूँ आपको अन्यथा तो नहीं लग रहा है ?"

"नहीं, नहीं, आप कहिए, इसमें अन्यथा सोचने की क्या बात है ?"

"आप अभी उनकी सेवा जिस सहानुभूति के साथ कर रही थीं उसीसे मैंने सोचा आपको उनकी बातें बता देने में कोई हर्ज़ नहीं है। विकास दा के समान महान व्यक्ति मैंने कभी भी नहीं देखा, जीवन में इतनी श्रद्धा भी किसी को नहीं की। हटाओ इन बातों को। मैं कह रहा था, विवाह कर के वह सुखी नहीं हुए, और वह भी लड़की न होकर पूरी

शेरनी थी। फिर भी प्राणपन से उसे सुखी रखने की चेष्टा करते। वह जो भी चाहती उसे कभी भी इन्कार नहीं किया। आखिर में लगता है, कि उससे नहीं बनी तो एक मामूली नौकरी पकड़ कर पटना चले गए। और कुछ दिन बाद उनकी स्त्री अस्पताल में गयी। वह जब वहाँ थी तभी एक दिन विष खा कर मर गयी।"

हेना यह सब बातें सुन कर चौक उठी; पर सुरेन उसे देख न सका, वह आगे कहता ही गया, "कोई-कोई कहते हैं कि उसने विष स्वयं नहीं खाया था और उसके दुर्व्यवहार के कारण किसी दूसरे ने खिलाया था। किन्तु विकास दा कहते हैं कि, 'उसने आत्महत्या की थी। हटाइए। उसी दिन से वह कहीं लापता हो गए। दो साल-तक उनका पता ही न लगा। जान-पहिचान के सभी लोगों से खोज खबर ली पर कोई भी कुछ न बता सका। फिर जिस दिन वह लौट कर आए इनको देख कर पहिचानना भी मुश्किल था। शरीर में कुछ भी न रह गया था। रोज बुखार आता है, उसके साथ ही खाँसी के साथ खून निकलता है। पूछने पर वह नाराज़ हो जाते हैं। हम कई लोग जोर देकर उन्हें डाक्टर के पास ले गए। डाक्टर की ही कोशिश से जादवपुर में एक फ्री बेड मिली। वहाँ भी क्या जाने को तैयार हैं? जीवन तो जैसे खेल-तमाशा है! हँस कर वह कहते हैं, अच्छा, होकर क्या करूँगा? ज़िन्दा रहने का कोई अर्थ मैं समझता ही नहीं।" किसी तरह जोर देकर उनको भर्ती भी कर दिया गया। दवादारू सब ठीक ही चल रही थी कि सहसा न जाने क्या ख्याल आया कि, "अब अपने देश जाऊँगा।" देश माने नारायणगंज से कोई दस मील दूर एक उजाड़ गाँव में। तीन मील के भीतर वहाँ किसी डाक्टर की भी गंध नहीं है। किन्तु किया क्या जाए? बहुत दिनों से देखता आ रहा हूँ कि विकास घोष एक बार जिस बात की जिद्द पकड़ लेते हैं उसे बस जैसे भी हो होना ही चाहिए।"

"वहाँ उनका कौन है?" हेना ने इतने में ही प्रश्न किया।

"है कौन ! केवल एक बूढ़ी मासी हैं। उनकी देख भाल कौन करता है यह भी ठीक नहीं। यह भी कहा था। उत्तर सुन कर सन्न रह गया। माँ बचपन में ही मर गयी थीं, मासी ने ही उन्हें पाल कर बड़ा किया था। मरने से पहले भी वह उनके पास ही लौट जाना चाहते हैं।"

स्टेशन से काफी दूर पद्मा नदी के तीर एक निर्जन स्थान देख कर सुरेन ने कहा, "यह अपना कपड़ा और यह शीशी लें। मैं बालू के उस ढूहे की दूसरी तरफ रहूँगा। आप निपट लें तब बुला लेगीं।"

वहाँ खड़ी मलीन ज्योत्स्ना से ढकी पद्मा की आदिगन्त जलराशि की ओर देख कर किसी अव्यक्त वेदना से हेना के दोनों नेत्र जल से भर उठे। उसे लगा, उसके सामने जो जीवन पड़ा है, वह भी ऐसा ही अस्पष्ट, ऐसा ही रहस्य से भरा है।

कपड़ों को बदलने की इच्छा नहीं हुई। रक्त के दाग को धो कर सुरेन के साथ जब वह वेटिंग रूम में वापस लौटी तब तक सुशीला नहीं आई थी। सुरेन का साथी आ गया था और सभी सामानों को बाँध कर जाने की तैयारी कर रहा था। उसके पहुँचते ही वह जैसे टिकट लेने के लिए बाहर चला गया। कमरे में बस वह ही थे। सहसा अपना नाम सुन कर हेना चौंक उठी। यह उसी कण्ठ की आवाज़ थी पर बहुत क्षीण हो चुकी थी—जैसे वही पुरानी आवाज़ न जाने कहाँ से उभर कर आ गयी हो। धीरे-धीरे पास जाकर खड़े होते ही प्रशान्त मृदु स्वर में विश्वास ने कहा, "मेरे लिए बहुत दुःख और बहुत लांछना तुमको सहना पड़ा, किन्तु मैंने जानबूझ कर तुमको कष्ट नहीं देना चाहा। कर सको तो मुझे क्षमा कर दो। लगता है विधाता ने क्षमा माँगने के लिए ही हमारी तुम्हारी भेंट फिर करा दी है। नहीं तो ऐसी कोई संभावना भी न थी। कभी स्वप्न में भी न सोचा था। आज मेरे हृदय का बोझ हल्का हो गया है। लगता है अब मैं निश्चिन्त होकर संसार छोड़ सकूँगा।"

एक अदृश्य क्रंदन का ज्वार हेना के हृदय में उठ कर जैसे उसके कण्ठ को पकड़ लिया हो। कोई भी आवाज़ न निकल सकी। ठीक उसी समय सुरेन अपने साथ एक स्ट्रेचर लेकर भीतर आ गया। हेना फिर जँगले के पास जाकर खड़ी हो गयी। कुछ मिनटों में ही उसे एक नमस्कार कह कर सुरेन और उसके साथी मिलकर विकास के क्षीण शरीर को स्ट्रेचर पर लिटा कर ले गए। वह इसी सूने वेटिंग रूम में पत्थर की तरह अकेली खड़ी रही। इसी तरह कुछ क्षण गुज़र गए। सहसा किसी अज्ञात शक्ति ने उसे खींच कर कमरे के बाहर कर दिया। वह चीख पड़ी, "ठहरो, मैं भी चलूँगी।" वे उस समय तक बहुत आगे बढ़ चुके थे। क्षण भर के लिए विह्वल दृष्टि से हेना ने चारों तरफ एक बार देखा। उसे लगा भीड़ में परछाईं की तरह विकास शरीर को छोड़ कर दूर बहुत दूर चला जा रहा है। वह उसी को देख कर दम छोड़ कर भाग पड़ी।

दूसरी तरफ से टिफिन कैरियर लिए हाँफती हुई सुशीला वापस आ रही थी। सहसा उसे देख कर चिल्ला पड़ी, "यह क्या! कहाँ भागी जा रही है! हमारा रास्ता उधर नहीं है।"

हेना एक बार ठिठकी और आर्त कण्ठ से बोली, "हाँ, मासी माँ! मेरा यही रास्ता है। हमारा बुलावा आ गया है।"

"क्या पागलों की तरह बक रही है। लौट आ। गाड़ी का समय हो गया है।"

"अब मेरे लौटने का समय नहीं रहा। उन लोगों से कह देना मैं चली गयी।" इतना कह कर वह फिर तेजी से जाने लगी।

"कहाँ जा रही है? किसके साथ जा रही है? सुन—"

"देखा नहीं? मुझे यही लिए जा रहा है। मेरा शत्रु, मेरा पुराना शत्रु!" कह-कह कर वह भीड़ में खो गई।

स्ट्रेचर को सुशीला ने देखा। किन्तु और कुछ न समझ कर वह पुकारती हुई उसके पीछे लपकी।

जहाज़ की सीढ़ी उठाई जा रही थी। केवल तख्ता बाकी था। पार खड़े लोग डर के साथ देख रहे थे कि उसके उठते ही उठते उस पर तेजी के साथ एक दुःसाहसी लड़की चढ़ गयी। पद्मा के किनारे की तेज हवा में उसके केश उड़ रहे थे। और आँचल झूल रहा था। सभी एक टक देख रहे थे। खलासी लोग किसी दुर्बोध्य भाषा में चिल्ला पड़े। तब तक वह नीचे के डेक के ऊपर पहुँच चुकी थी।

सुशीला जैसे ही घाट पर पहुँची खलासियों ने आखिरी सीढ़ी को भी खींच लिया था। पद्मा की छाती पर जहाज के चक्के चलने पर एक मंथन सा हुआ और फेन ही फेन से किनारा भर उठा। जमादारनी के दोनों नेत्र सहसा जल से भर उठे। हृदय को बेध कर केवल एक असहाय पुकार सुनायी पड़ी—'हेना....!' फलकन के तेज गर्जन से वह पुकार किसी के कानों में न पहुँच सकी।

——*——